साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२२ अंक-९ ❖ पृष्ठ ८८ | चैत्र-वैशाख, संवत्-२०७४ | अप्रैल २०१७

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

मोदी की दिग्विजय : पाँच राज्यों के चुनाव ४

प्रतिस्मृति

बालमुकुंद गुप्त/ *गोपालराम गहमरी* ९

कहानी

मँझले/ *बटुक चतुर्वेदी* १२
कहाँ जाऊँ/ *अभिराज राजेंद्र मिश्र* २०
अंततः/ *तुलसी देवी तिवारी* ३६
मौत के बाद/ *राकेश भ्रमर* ५०
एक कहानी मेरी भी/ *श्रद्धा थवाईत* ५६
तिनका-तिनका घरौंदा/ *मंजुरानी जैन* ७४

आलेख

अंग्रेजी के सामने हिंदी : रावण रथी विरथ रघुवीरा/ *जयकुमार जलज* १६
सपनों का प्रतीकात्मक अर्थ/ *राहुल* २५
कबीर वाणी की प्रासंगिकता/ *व्यास कुमार वाजपेयी* ३५
विश्व का सबसे सहिष्णु देश—भारतवर्ष/ *योगेंद्र शर्मा* ४७
संत पीपाजी की सामाजिक चेतना/ *ललित शर्मा* ६७

लघुकथा

प्रोफेशन/ *बिर्ख खडका डुवर्सेली* ११
प्रायश्चित्त/ *राजेश माहेश्वरी* ४२
जीत की हार/ *बिर्ख खडका डुवर्सेली* ७३

कविता

धनाक्षरी/ *सीमा हरि शर्मा* १५
उषा गीत/ *महेश शर्मा* ५३
उमड़ता है खयालों में समंदर/ *विनय मिश्र* ५९
बाढ़ में नाव/ *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* ६६
जीवों से नेह लगाएँ/ *बसंता* ७७

पुस्तक-अंश

नवदुर्गा/ *पं. के.के. त्रिपाठी* ३०

राम झरोखे बैठ के

बाबू की बीमारी/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४०

व्यंग्य

चलो, चलें लालकिला मैदान/ *हरीश नवल* ५४

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

पिंजर/ *साहिब सिंह गिल* ६०

ललित निबंध

जियबो मीत पुनीत बिनु/ *श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी* ६४

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

संगीतकार जेनको/ *हेनरिक सेनकीविच* ७०

यात्रा-वृत्तांत

एक तीर्थयात्रा सुवर्णपुर (पर्सा) व जनकपुर/ *रुक्मणी संगल* ७८

लोक-साहित्य

महाराष्ट्र का नवसंवत्-उत्सव : गुड़ी पड़वा/ *मालती शर्मा* ८२

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८४
वर्ग-पहेली ८५
साहित्यिक गतिविधियाँ ८६

संपादकीय

मोदी की दिग्विजय : पाँच राज्यों के चुनाव

हाल ही में पाँच राज्यों उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर की विधानसभाओं के चुनाव संपन्न हो गए। एक राज्य के चुनाव-नतीजे दूसरे राज्यों के चुनावों को प्रभावित न करें, इसलिए एक साथ ही ११ मार्च को सभी राज्यों के नतीजे घोषित हुए। ९ मार्च को चुनाव का रुझान बतानेवाली एजेंसियों को इजाजत मिल गई थी कि वे अपने चुनावी आकलन प्रकाशित कर सकती हैं। उत्तर प्रदेश क्षेत्रफल और आबादी की दृष्टि से एक बड़ा राज्य है। सात चरणों में चुनाव कराने की कुछ लोगों ने आलोचना की, क्योंकि उत्तराखंड, पंजाब और गोवा के नतीजों के लिए वहाँ की जनता को करीब एक महीने इंतजार करना पड़ा। चुनाव आयुक्त ने उसके उत्तर में स्पष्ट किया कि चूँकि केंद्रीय पुलिस बलों के ऊपर ही राजनीतिक पार्टियों का विश्वास है, अतएव यदि उनके द्वारा बंदोबस्त कराना है तो ऐसी व्यवस्था अनिवार्य है। चुनावी मैदान में आए राजनीतिक दलों को राज्य की पुलिस पर विश्वास नहीं रह गया है कि वह स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करा सकती है। वह किसी-न-किसी प्रकार से सत्तारूढ़ दल के दबाव में रहती है। हमारी राजनीतिक, शासकीय व्यवस्था और उसकी नैतिकता तथा विश्वसनीयता पर यह एक कलंक है। चुनाव आयोग बधाई का पात्र है। कुछ छुटपुट घटनाओं को छोड़कर पाँचों राज्यों में चुनाव शांतिपूर्ण रहा। कुल मिलाकर जनता की भागीदारी भी अच्छी रही।

उत्तर प्रदेश के नतीजों ने, विशेषतया भाजपा की अभूतपूर्व सफलता ने पूरे देश को स्तब्ध कर दिया। विधानसभा की ४०३ सीटों में से भाजपा के ३२४ प्रत्याशी सफल रहे। राजनीतिक पर्यवेक्षकों और सर्वे करनेवाली एजेंसियों के पूर्व अनुमान कुछ हद तक सही रहे, पर भाजपा की उत्तर प्रदेश में इतनी बड़ी जीत होगी, यह अनुमान एक-दो टी.वी. चैनल ही कर सके। सपा-कांग्रेस गठबंधन को ५९, बसपा को १८ और अजीत सिंह के राष्ट्रीय लोक दल को एक सीट प्राप्त हुई। विरोधी दल हतप्रभ रह गए। उनकी समझ में नहीं आ रहा कि यह कैसे हो गया! चुनाव के पहले कांग्रेस और सपा अलग-अलग चुनाव लड़नेवाले थे, पर दोनों को समझ आई कि यदि गठबंधन हो जाए तो शायद गठबंधन आगे रहेगा। कांग्रेस ने लड़-झगड़कर अपने लिए १०३ सीटें अखिलेश से ले लीं। पर जीत केवल सात सीटों पर हुई। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का जमीनी संगठन लुप्तप्राय है। केवल नेता-ही-नेता हैं, जो एक-दूसरे को फूटी आँख नहीं देख सकते। राहुल गांधी का नेतृत्व न उच्च वर्गों को और न तथाकथित नीचे तबकों को ही प्रभावित कर सका। दिल्ली की पूर्व मुख्यमंत्री शीला दीक्षित को उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की ओर से मुख्यमंत्री के रूप में पेश किया, ताकि ब्राह्मण और अन्य उच्च जातियों के मत मिल सकें। गठबंधन होते ही कांग्रेस उन्हें भूल गई। वे भी दिल्ली आकर बैठ गईं।

सपा और कांग्रेस गठबंधन की जनसभाओं में एक बात अच्छी हुई कि कन्नौज की सांसद और अखिलेश की पत्नी डिंपल यादव के व्यक्तित्व को कुछ खुलने का अवसर मिला। उनके क्षेत्र के लोग उन्हें गूँगी गुड़िया ही समझते थे। कुछ सभाओं में चाहे सहमते-झिझकते हुए ही सही, मुँह खोला और गठबंधन के लिए वोट माँगते हुए कुछ कहा भी। पिछले कुछ समय से अखिलेश सपा की यादववादी छवि से अपने को अलग करने की कोशिश कर रहे थे। विकास के मुद्दे को उठाकर उन्होंने कुछ अच्छे काम शुरू भी किए, हालाँकि फाउंडेशन स्टोन और अपूर्ण कार्यों के उद्घाटन ही अधिक रहे, क्योंकि चुनाव का समय नजदीक आ रहा था। अखिलेश को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में पिता की विरासत जब मिल गई तो उन्होंने कोशिश करनी चाही कि वे परिवारवाद और यादवों एवं मुसलिम वोट बैंक से ऊपर उठकर राज्य के सभी वर्गों के नेता के रूप में अपने को पेश करें। आजम खाँ और शिवपाल के रहते यह संभव हो ही नहीं सकता था, और फिर जनसभाओं में मुलायम सिंह की प्रताड़ना ने उनके पद और व्यक्तित्व को उभरने नहीं दिया। उनमें कुछ खूबियाँ हैं, संभावनाएँ हैं। मुद्दों को सामने रखकर और केवल यादवी राज्य के रक्षक व मुसलिम मतों के हकदार न होकर सभी के हित को ध्यान में रखकर सपा को पुनर्गठित और विकसित करने का प्रयास करें तो संभवतया भविष्य में उत्तर प्रदेश के एक सुविचारित जननेता के रूप में उनकी मान्यता स्वयमेव हो सकती है।

उत्तर प्रदेश की पुलिस और प्रशासन में जनता का विश्वास डाँवाँडोल था। आततायी कोई भी हो, गुंडागीरी किसी भी समुदाय की हो, चाहे वह अपना समर्थक ही क्यों न हो, प्रशासन उसका संरक्षण नहीं कर सकता। दबाव में प्रजापति जैसे भ्रष्ट मंत्री को पुन: मंत्री बना देना, इसका संदेश जनता में अच्छा नहीं गया। जिस प्रजापति के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय के कहने पर बलात्कार की प्राथमिकी पुलिस द्वारा दर्ज हो और उसके बाद भी वह मंत्री बना रहे, सरकारी सुविधाएँ लेता रहे, यह कहाँ तक उचित है? इतना ही नहीं, उत्तर प्रदेश की पुलिस जहाँ आजम खाँ की भैंसों की पहचान कर दो दिनों में वापस ला सकती है, वही पुलिस प्रजापति को जब अमेठी में प्रत्याशी के तौर पर वोट डालने गया, फोटो छपी, तो भी उसको पकड़ नहीं सकी। सत्ता-परिवर्तन के डर से प्रजापति इतने समय बाद लखनऊ में ही पकड़ा गया। सपा और कांग्रेस का गठबंधन होते हुए भी अमेठी में दोनों का दोस्ताना युद्ध हो रहा था। मुख्यमंत्री अखिलेश चुनाव प्रचार के लिए अमेठी गए, पर प्रजापति का नाम नहीं लिया, क्योंकि वे जनता का रुझान जान गए थे। आखिर किस मुँह से प्रजापति का नाम लेकर वोट माँगते, जब कुछ महीने पहले उसको मंत्रिमंडल से हटा दिया था, पर उसके संरक्षक मुलायम सिंह के कहने-सुनने पर फिर मंत्री बना दिया था। २०१४ के लोकसभा चुनाव में

सपा केवल सैफई यादव परिवार के अपने पाँच प्रत्याशियों को जिता सकी, पर विधानसभा में छोटी बहू अपर्णा के साथ-साथ लालू यादव के दामाद और मुलायम सिंह के भतीजे सिकंदराबाद से हार गए—लालू यादव के प्रचार के बावजूद। अखिलेश ने चुनाव नहीं लड़ा, वह विधान परिषद् के सदस्य हैं। वहाँ कार्यकाल समाप्त होने तक बने रहेंगे। २०१९ में सपा की स्थिति क्या होगी, यह भविष्य के गर्भ में है। चाहे प्रत्यक्ष चाहे परोक्ष रूप में असामाजिक तत्त्वों को संरक्षण मिलने से सत्ताधिकारियों की नीयत और चरित्र से जनता आश्वस्त नहीं हो सकती है। ऐसी ही बातों का खामियाजा अखिलेश को भुगतना पड़ा। अपनी नई छवि बनाने की कोशिश में भी साधारण जनता को यही लगा कि इनके अनुयायी अभी तक वही हैं, जो कल तक असामाजिक कार्यों में लिप्त थे। एक नेता का कर्तव्य है कि वह अपने सहयोगियों और अनुयायियों को अनुशासित करने की क्षमता रखता हो।

सपा और कांग्रेस का प्यारा सपना तो टूटा ही, बहुजन समाज पार्टी की भी दुर्गति हुई। वर्ष २०१४ के लोकसभा चुनाव में बसपा को एक भी सीट नहीं मिली थी। कहा जा रहा था कि बसपा की अध्यक्ष मायावती ने, जिन्हें उनके अनुयायी 'बहनजी' पुकारते हैं, उसके तुरंत बाद विधानसभा-२०१७ के चुनावों के लिए तैयारी शुरू कर दी थी—बहुत ही सुविचारित और वैज्ञानिक ढंग से। पूरी पार्टी में भारी रद्दो-बदल की गई। मुसलिम मतदाताओं को साधने के लिए अनेक योजनाएँ बनीं। सतीशचंद्र मिश्र तो निरंतर जगह-जगह ब्राह्मण मतदाताओं से संपर्क बनाए हुए थे। मायावती भी एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार कहीं-कहीं उनको संबोधित करने भी जाती थीं। उन्होंने साल भर पहले से ही सभी चुनाव क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रत्याशी भी निश्चित कर दिए थे, ताकि वे अपने-अपने क्षेत्र में जनसंपर्क प्रारंभ कर दें और अपनी रणनीति बना लें कि किस प्रकार से मतदाताओं का वोट डालने आना आसान हो सके। प्रत्याशियों का परिवर्तन समय-समय पर मायावती ने किया। बसपा के कुछ शीर्ष नेताओं से उनका विरोध हुआ और कई पुराने, विश्वासपात्र एवं कद्दावर नेता अन्य दलों में चले गए, खासकर भाजपा में। उन्हें शायद जमीनी हकीकत की भनक लग रही थी। बसपा छोड़नेवाले नेताओं ने जनसभाओं में यह आरोप लगाया कि मायावती करोड़ों रुपए इकट्ठा कर रही हैं, टिकट देने के पहले रुपए की माँग होती है। मायावती ने इसे नकारा और कहा कि वे पार्टी को नुकसान पहुँचा रहे थे या अपने रिश्तेदारों के लिए टिकट माँग रहे थे, इसलिए निकाला, पर उनके समर्थकों को भी इस पर विश्वास नहीं हो सका। जो भी हो, इससे कुछ-न-कुछ भ्रम उनके समर्थकों में अवश्य पैदा हुआ।

भाजपा के प्रत्याशी बनकर कई पूर्व बसपा नेता विजयी हुए हैं। मायावती को पूरी उम्मीद थी कि जाटव तो उनकी सहजाति के होने के कारण एकमुश्त वोट देंगे ही। इसके साथ-साथ उन्हें आशा थी कि मुसलिम वोट भी इसी प्रकार उनके साथ ही आएगा। इसकी एक वजह थी कि मुलायम सिंह ने स्वयं एक बार कहा था कि अखिलेश ने मुसलिमों की अनदेखी की है। दूसरा कदम उन्होंने यह उठाया कि बसपा ने करीब सौ मुसलमानों को पार्टी का प्रत्याशी बनाया और इसका खूब प्रचार भी किया मुसलिम मतदाताओं को रिझाने के लिए। उनका तथाकथित सेकुलरिज्म (अल्पसंख्यकवाद) मुसलिम तुष्टीकरण में परिवर्तित हो गया। जनता यह देख और समझ रही थी। मीडिया में भी यह भ्रम था कि उत्तर प्रदेश में टक्कर इस बार बसपा और भाजपा में होगी। इसलिए चुनावी नतीजे आने पर मायावती भी सपा और कांग्रेस के साथ हतप्रभ हो गई। बसपा के केवल १९ प्रत्याशी ही विजयी हुए। २०१२ की हार के बाद मायावती उत्तर प्रदेश विधानसभा में मुख्य विरोधी दल के रूप में न बैठकर राज्यसभा में दिल्ली आ गईं। अब एक कठिनाई यह भी है कि २०१८ में राज्यसभा में उनका कार्यकाल समाप्त हो रहा है। १९ वोटों के आधार पर वे राज्यसभा में भी पुन: नहीं जा सकतीं। उसके लिए करीब ४० मतों की आवश्यकता होगी। पंजाब में जहाँ सबसे अधिक संख्या दलितों की है, वहाँ भी बसपा को कुछ सफलता नहीं मिली। चुनावी नतीजों के दौरान जब भाजपा की बढ़त दिखाई देने लगी, तब अखिलेश ने बी.बी.सी. से एक साक्षात्कार में कह दिया कि भाजपा को रोकने के लिए वह बसपा से गठबंधन करने को तैयार हैं और उनके दिल में 'बुआजी' यानी मायावती के लिए बहुत आदर है। मायावती ने भी कहा कि समय आने पर इस पर विचार करेंगी। हालाँकि जिस प्रकार मायावती को लखनऊ में सपावालों ने प्रताड़ित किया था, उनके लिए इसे भूलना आसान नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय में मुलायम सिंह आदि के खिलाफ इस विषय में एक मामला लंबित है।

बहरहाल इस समय भाजपा की अप्रत्याशित जीत से किसी प्रकार का गठबंधन बेमानी है। आशा और आकांक्षाओं के विपरीत उन्होंने अपनी इतनी बड़ी हार की जिम्मेदारी ईवीएम मशीनों पर डाल दी है। २००७ में इन्ही ईवीएम के द्वारा वे चुनाव जीतकर मुख्यमंत्री बनी थीं, तब उनको कोई शिकायत नहीं थी। मुख्य चुनाव आयुक्त ने उनकी बात का जोरदार खंडन किया और कहा कि मशीनों में कोई खराबी नहीं है और नतीजे बिल्कुल सही हैं। मायावती ने भाजपा को चैलेंज किया है कि वह बैलटपेपर के द्वारा पुन: चुनाव कराए। चुनाव बच्चों का खेल नहीं है। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय में जाने की धमकी दी है कि उत्तर प्रदेश के चुनावी नतीजे निरस्त किए जाएँ। आम आदमी पार्टी के अध्यक्ष केजरीवाल भी उनके सुर में सुर मिलाकर कह रहे हैं कि पंजाब में उनके करीब २५ प्रतिशत वोट ईवीएम के कारण शिरोमणि अकाली दल और भाजपा के गठबंधन को चले गए। जब दिल्ली के विधानसभा चुनाव में भाजपा को केवल तीन सीटें मिलीं, सत्तादल कांग्रेस का सफाया हो गया और आम आदमी पार्टी ने ६७ सीटें जीतीं तो उन्हें ईवीएम में कोई खराबी नहीं दिखाई दी। उन्होंने राज्य के मुख्य चुनाव आयुक्त से कहा है कि दिल्ली के नगर निगम के चुनाव मतपत्र द्वारा कराए जाएँ। इसके लिए उपराज्यपाल को नियमों में बदलाव करना होगा। उनके अनुसार अब समय नहीं है। ईवीएम के द्वारा चुनाव की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं। मजे की बात यह है कि दिल्ली कांग्रेस के अध्यक्ष माकन ने भी यही माँग रखी है। जब दिल्ली विधानसभा चुनाव में कांग्रेस का सफाया हो गया तो भी उन्होंने यह प्रश्न नहीं उठाया था कि बैलटपेपर द्वारा चुनाव होना चाहिए। पंजाब विधानसभा के चुनाव में, जहाँ कांग्रेस जीती है, कैप्टेन अमरेंद्र सिंह मुख्यमंत्री बने हैं, आम आदमी पार्टी हारी, क्या वहाँ ईवीएम सही थे। अमरेंद्र सिंह ने स्वयं कहा है कि ईवीएम

मशीनों में कोई खराबी नहीं है। मायावती का रोना लालू यादव का भी रोना हो गया है। वह भी बाँग लगा रहे हैं चुनावी मशीनें खराब हैं, मतपत्र द्वारा चुनाव होना चाहिए। जब बिहार में नीतीश से गठबंधन कर वे जीते तब उन्हें ईवीएम मशीनों से कोई शिकायत नहीं थी। जहाँ अपनी जीत, वहाँ मशीन द्वारा चुनाव ठीक, जहाँ हार हो तो मशीनें दोषी। यह बौखलाहट की निशानी है। बसपा, सपा और कांग्रेस को कुछ समझ ही नहीं आ रहा है कि क्या करें, तो यह नया शगूफा छोड़ दिया। इसे कहते हैं खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे।

उत्तर प्रदेश के चुनाव में हार के बाद कांग्रेस के अंदर तलवारें खिंच गई हैं। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता चिदंबरम ने यह माना है कि मोदी भारत के एक 'प्रभावी व्यक्तित्व' हैं और उनकी मान्यता पूरे भारत में है। बहत्तर घंटे की चुप्पी के बाद राहुल गांधी ने कहा कि चुनाव में थोड़ा नुकसान हुआ है, यह होता रहता है, पर हार की जिम्मेदारी लेने से इनकार कर दिया। यह पार्टी की सामूहिक जिम्मेदारी है। कमलनाथ, जो लोकसभा में कांग्रेस के सबसे वरिष्ठ सदस्य हैं, उन्होंने पार्टी की सर्जरी की आवश्यकता बताई। कांग्रेस के राज्यसभा के वरिष्ठ सदस्य सत्यव्रत चतुर्वेदी ने कहा कि कार्डियक सर्जरी की आवश्यकता है। मणि शंकर कहते हैं, २०१९ में कांग्रेस अकेले मोदी का मुकाबला नहीं कर सकती है। कांग्रेस में आंतरिक असंतोष है। सोनिया और राहुल के नेतृत्व से विश्वास उठ गया है, पर उपाय और है क्या! बहुत से टिप्पणीकारों ने लिखा है कि नेहरू-गांधी परिवार के बाहर ही कांग्रेस को सक्रिय करने के लिए विकल्प खोजना पड़ेगा। दिक्कत यह है कि कांग्रेस में सभी अपने को श्रेष्ठ नेता मानते हैं। गांधी-नेहरू परिवार का नाम उनको जोड़े हुए है। राहुल गांधी का एक अपना गुट है। वरिष्ठ सलाहकार तो राहुल की निर्णयात्मक क्षमता के अभाव को हार का कारण ठहराते हैं। २०१४ के लोकसभा चुनाव के बाद आशा थी, बात भी चली थी कि कांग्रेस में एक बड़े स्तर पर ढाँचा एवं कार्यप्रणाली में मौलिक सुधार होंगे। पर इसमें आत्ममंथन की प्रक्रिया न कभी पूरी हुई, और न होगी। सोनिया अपने स्वास्थ्य के कारण सक्रिय नहीं हैं, वह अमेरिका में हैं। राहुल पर पूरा दायित्व छोड़ दिया है। पंजाब में शपथ ग्रहण समारोह के बाद राहुल गांधी अमेरिका चले गए। कांग्रेसी नेता बयानबाजी में लगे हैं या गुपचुप एक-दूसरे के खिलाफ संवाददाताओं को कहते रहते हैं। गांधी परिवार सर्वोपरि है, म्याऊँ के गले में घंटी बाँधने की हिम्मत किसमें हैं?

पंजाब के मंत्रिमंडल के गठन में अमरिंदर सिंह ने नवजोत सिंह सिद्धू को उनकी हैसियत बता दी। वे चुनाव के समय बहुत फिरकते थे, सोनिया और राहुल की बात-बात में दुहाई देते थे और आश्वस्त थे कि कम-से-कम उपमुख्यमंत्री अवश्य बनाए जाएँगे। मंत्रियों की वरिष्ठता की सूची में क्रमानुसार वे तीसरे नंबर पर हैं। उपमुख्यमंत्री का पद तो आकाश के तारे सा हो गया। सिद्धू कहते हैं कि वे अपना कॉमेडी शो टी.वी. पर जारी रखेंगे। मंत्री का दायित्व पूर्णकालिक होता है। कई विभाग उनके पास हैं। दिन में मंत्री और रात में मसखरे की भूमिका, क्या यह उचित है? केजरीवाल और कांग्रेस में सम्मिलित होने की उनकी सौदाबाजी अपने में ही एक कॉमेडी थी। मंत्री बनकर क्या लोकतंत्र का मखौल उड़ाना चाहते हैं।

पंजाब के चुनाव में कांग्रेस विजयी रही। वास्तव में पंजाब के चुनाव का श्रेय अमरिंदर सिंह को ही है। लोकसभा से इस्तीफा देकर वे पंजाब में जम गए। कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी ने बहुत बाद में कहा कि वही मुख्यमंत्री के पद के दावेदार हैं। पंजाब का चुनाव अमरिंदर सिंह के बल पर जीते हैं। शिरोमणि अकाली दल और भाजपा के हारने के आसार काफी समय से दिखाई पड़ रहे थे। पंजाब में भाजपा छुटभैया की हैसियत रखती थी। भ्रष्टाचार, ड्रग स्मगलिंग, प्रशासन पर व्यापारीकरण व निष्क्रियता के आरोप बहुत पहले से लग रहे थे, पर मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल और उनके पुत्र उप मुख्यमंत्री सुखबीर सिंह ने उनकी तीव्रता और गहराई को नहीं समझा। वे नकारते रहे। इसके साथ १० वर्ष सत्ता में रहने का असंतोष का वातावरण तो था ही। बेरोजगारी की समस्या सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती जा रही थी। आँकड़ों के द्वारा या कुछ बड़े-बड़े आयोजन करके जनता को अब भरमाया नहीं जा सकता है। प्रश्न है अनुभूति का, जनता को क्या जँच गया है। उसको समझने और उसको बदलने के कोई प्रभावी प्रयास किए ही नहीं गए। अकाली दल-भाजपा गठबंधन को १८ सीटें मिल गईं, यही एक बड़ी उपलब्धि है, टीवी के आकलन तो ५-७ से ऊपर जा ही नहीं रहे थे।

यदि वे पुरानी सार्थकता को पाना चाहते हैं तो शिरोमणि अकाली दल को अपने को पूरी तरह से नवीनीकरण से गुजारना होगा। भाजपा को भी पंजाब में अपनी भूमिका पर पुनर्विचार करना होगा। उसकी अस्मिता स्वतंत्र रूप में भी प्रदर्शित होनी चाहिए। विरोध पक्ष में रहकर शिरोमणि अकाली दल और भाजपा का गठबंधन कितना सक्रिय और मुखर रहता है, यह देखना है। दूसरे नंबर पर आम आदमी पार्टी है, उसका व्यवहार कैसा होगा, यह कहा नहीं जा सकता। केजरीवाल और उनके सहयोगियों ने ऐसा वातावरण बना दिया था कि उन्हीं की पार्टी सरकार बनाएगी। जबकि उनका जमीनी संगठन कोई था ही नहीं। आपसी मतभेद भी चुनाव के पहले से ही उभरने लगे थे। कनाडा से उनके समर्थक आने से आम आदमी पार्टी की हवा और भी बन गई। पंजाब और गोवा में उनका सरकार बनाने का दावा था। पंजाब में अमरिंदर सिंह ने उनकी उम्मीदें चकनाचूर कर दीं। जब दिल्ली बीमारियों से ग्रस्त थी, आम आदमी पार्टी के मंत्री गोवा में प्रचार में व्यस्त थे। वहाँ तो केजरीवाल को अड्डा मिला। उनके मुख्यमंत्री के प्रत्याशी के साथ-साथ ३९ प्रत्याशियों की जमानत जब्त हो गई। चुनावी घोषणा के दिन तक केजरीवाल दोनों राज्यों में जीत के प्रति आश्वस्त थे। ११ मार्च के दिन जब नतीजे आने थे, मुख्यमंत्री केजरीवाल के आवास पर जश्न का माहौल था। गुब्बारों, पटाखों और मिठाइयों का पूरा इंतजाम था, नतीजे आने के बाद बाजे-गाजे सब बंद होने लगे। शामियाना और गुब्बारे उतार लिये गए। वहाँ उपस्थित नेताओं के चेहरे भी उतर गए। आजकल अनाप-शनाप बातें करने, अराजकता फैलाने और अभद्र शब्दों के प्रयोग तथा नरेंद्र मोदी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दिन-रात गाली देने से वोट नहीं मिलते। आम आदमी के नाम का दोहन करनेवाले नेताओं को अपनी हैसियत का एहसास हो गया। काठ की हाँड़ी दुबारा आग पर नहीं चढ़ती है। दिल्ली में अपने को सीमित न रखकर वह अभी कुछ अन्य राज्यों में चुनाव

लड़ने के ख्वाब सँजोए हुए हैं। केजरीवाल २०१९ में प्रधानमंत्री की अपनी दावेदारी नहीं छोड़ना चाहते हैं। हम तो भगवान् से उनकी सद्बुद्धि की ही कामना कर सकते हैं।

उत्तराखंड

उत्तराखंड के नतीजे संकेत देते हैं कि उत्तराखंड में भी कांग्रेस का अस्तित्व केवल नाममात्र का रह गया है। पिछले साल हरीश रावत की सरकार बजट सत्र के समय जब उनके दल के सदस्यों ने, जिनमें कुछ मंत्री शामिल थे, सरकार के विरोध में मत दिया, तब सरकार के बहुमत पर प्रश्नचिह्न लग गया, किंतु विधानसभा अध्यक्ष की कृपा से वे बच गए। जल्दबाजी में राष्ट्रपति शासन से उनको निजात मिली। उत्तराखंड उच्च न्यायालय और उसके उपरांत सर्वोच्च न्यायालय से, उसी समय वे एक स्टिंग ऑपरेशन में फँस गए, जिसकी सी.बी.आई. जाँच चल रही है। अंटी इनकंबेंसी और हरीश रावत सरकार से असंतुष्ट स्वरों की भनक आ रही थी। हरीश रावत विरले मुख्यमंत्री हैं, जो दो सीटों से चुनाव लड़े और हार गए। अब की बार बसपा कहीं पिक्चर में नहीं थी। चुनावी युद्ध कांग्रेस और भाजपा के बीच था। भाजपा के ५७ प्रत्याशी विजयी हुए, कांग्रेस के केवल ११ और अन्य दो। जब उत्तराखंड उत्तर प्रदेश का भाग था, तब भी वहाँ विकास और समस्याओं पर उत्तर प्रदेश सरकार का पूरा ध्यान नहीं गया, यद्यपि उस समय संयुक्त प्रांत के पहले प्रधानमंत्री (जो अब मुख्यमंत्री कहलाते हैं) पं. गोविंद वल्लभ पंत अल्मोड़ा से मुख्यमंत्री रहे, पर इस क्षेत्र की समस्याओं का निदान नहीं निकाला। तिवारीजी अब भाजपा में हैं और उनका पुत्र भाजपा का प्रत्याशी होकर विजयी हुआ है। उत्तराखंड बनने के बाद भी जो सरकारें बनीं, चाहे भाजपा की और चाहे कांग्रेस की, दोनों में मुख्यमंत्रियों की जल्दी-जल्दी अदल-बदल होती रही। फल यही रहा—वहाँ की मूल समस्याओं की अनदेखी और योजनाओं का असंतोषजनक कार्यान्वयन। अब त्रिवेंद्र सिंह रावत ने भाजपा सरकार के मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली है। आशा है कि उनकी सरकार स्थिर होगी। उत्तराखंड कूटनीतिक दृष्टि से बहुत संवेदनशील है, क्योंकि उसकी सीमा तिब्बत से मिलती है। भाजपा का शीर्ष नेतृत्व राजनैतिक दृष्टि से, सुशासन और विकास की दृष्टि से निगरानी भी रखे और मार्गदर्शन भी प्रदान करे, ताकि नरेंद्र मोदी और भाजपा को जो जनादेश मिला है, वह पूरा हो सके।

मणिपुर

मणिपुर में भाजपा को २१ सीटें मिलीं। यह आश्चर्यजनक था, क्योंकि अभी तक भाजपा का एक भी सदस्य विधानसभा में नहीं था। कांग्रेस के २८ प्रत्याशी जीते और पूर्व मंत्री इबोबी सिंह उम्मीद कर रहे थे कि दो-तीन और सदस्यों को लेकर वे चौथी बार कांग्रेस की सरकार बनाएँगे। नागा पीपुल्स फ्रंट से तो भाजपा के साथ पहले से अनौपचारिक समझौता था। नेशनल पीपुल्स पार्टी, जिसे स्व. पी.ए. संगमा ने स्थापित किया था, पहले से ही नॉर्थ-ईस्ट डेमोक्रेटिक एलायंस भी भाजपा को समर्थन देने को तैयार था। तृणमूल के एक लजेपी के एक और एक निर्दलीय को अपनी ओर कर लिया। यही नहीं, कांग्रेस के एक सदस्य श्याम कुमार भी भाजपा का साथ देने को तैयार हो गए। अब ३३ का स्पष्ट बहुमत भाजपा के पक्ष में था और राज्यपाल नजमा हेपतुल्ला ने भाजपा संसदीय दल के नवनिर्वाचित नेता एन. विरेन सिंह को सरकार बनाने को आमंत्रित किया और उन्होंने शपथ ग्रहण कर विश्वास मत भी प्राप्त कर लिया। विवाद कांग्रेस ने उठाया कि उनके ज्यादा सदस्य थे, उनको पहले बुलाया जाना चाहिए था। इस पर बाद को विचार करेंगे कि गवर्नर को अपने विवेक का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए। हमारी यह मान्यता है कि मणिपुर के राज्यपाल ने इन परिस्थितियों में सही कदम उठाया। मणिपुर और उत्तरी-पूर्वी राज्यों की जातीय या ethnic समस्याएँ बहुत हैं। मेती और नागाओं में मतभेद है। भ्रष्टाचार बहुत है। सीमा के राज्य होने से आतंकवादी और उग्रवादी दल सक्रिय हैं; क्योंकि वे म्याँमार, चीन और कभी भूटान में छिपते हैं; विकास बाधित होता है। भजपा को यहाँ भी राजनैतिक और विकास की दृष्टि से विशेष देखभाल करनी होगी, ताकि स्थिर होकर भाजपा सरकार कार्य कर सके। कम-से-कम चार महीने का मणिपुर बंद तो अब हट ही रहा है, जैसा प्रधानमंत्री ने कहा था।

गोवा

गोवा में २०१२ में पर्रिकर के नेतृत्व में विधानसभा की ४० सीटों में से २१ पर विजय प्राप्त कर सरकार बना ली थी। पर्रिकर के केंद्र में रक्षा मंत्री के पद पर जाने के कारण भाजपा सरकार में शिथिलता आ गई। उनके बाद बने मुख्यमंत्री जनता से वांछनीय संबंध नहीं बना सके, विकास के कार्यों में सुस्ती आई, गोवा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक इकाई सरकार की कुछ नीतियों के कारण अलग हो गई और उसने अपने प्रत्याशी खड़े किए। इससे भाजपा को नुकसान हुआ। कुछ मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप थे और कुछ को अहंकार ने ग्रस्त कर लिया था। चुनाव के पहले पर्रिकर ने अच्छी कन्वेंसिंग की, पर वे जनता का पुराना विश्वास प्राप्त न कर सके। कांग्रेस को १७ और भाजपा को तेरह सीटों पर विजय प्राप्त हुई। पर्रिकर ने मुख्यमंत्री की शपथ ले ली। नितिन गडकरी ने महाराष्ट्र गोमांतक पार्टी, गोवा फॉरवर्ड और तीन निर्दलियों से सफल संपर्क साधा। वे समर्थन देने को तैयार तभी हुए जब भाजपा हाई कमांड ने स्वीकार किया कि रक्षामंत्री पद से इस्तीफा देकर पर्रिकर गोवा के मुख्यमंत्री बनेंगे। कांग्रेस में दिग्विजय सिंह के खिलाफ असंतोष हुआ कि उनकी ढील की वजह से कांग्रेस समय से दावेदारी पेश न कर सकी। कांग्रेस के नेता सर्वोच्च न्यायालय गए, पर न्यायालय ने कहा कि उनको अपना बहुमत समय से राज्यपाल के सामने प्रस्तुत करना था। सर्वोच्च न्यायालय ने १५ दिन में बहुमत सिद्ध करने की जगह केवल दो दिन का समय दिया और पर्रिकर ने बहुमत सिद्ध कर हारी बाजी जीत ली।

भाजपा की उत्तर प्रदेश की विजय को कुछ पत्रकारों ने मोदी या भगवा की सुनामी की संज्ञा दी है। इसमें शक नहीं कि भाजपा अध्यक्ष अमित शाह और उनके सहयोगियों ने अथक परिश्रम किया और उनकी रणनीति सफल रही। यह भी सिद्ध हुआ कि नरेंद्र मोदी का करिश्मा बरकरार है। वे जनता का विश्वास प्राप्त करने में सफल रहे हैं। नोटबंदी की कुछ कठिनाइयों को झेलते हुए मीडिया के प्रचार के बावजूद भी जनता ने उसे उचित माना। राहुल की तथाकथित आक्रोश रैली अनर्थक रही। ममता और मायावती का अपना आक्रोश भी धीरे-धीरे छूमंतर हो गया। खोदा पहाड़, निकली चुहिया। अब

प्रचार किया जा रहा कि भाजपा ने एक भी मुसलिम को प्रत्याशी नहीं बनाया, उनकी बात कौन कहेगा। भाजपा का उत्तर है—'सबका विकास, सबके साथ'। हाँ, एक सकारात्मक बात भी हुई है, जहाँ तथाकथित उदारवादी, बुद्धिवादी अल्पमत के हितों का झंडा उठानेवाले बनते हैं—कांग्रेस, सपा और बसपा, वहाँ मुसलिम बुद्धिवादियों में विचार आलोड़न हुआ है। उनका और युवाओं का कहना है—आपने बहुत दिनों हमें अपना वोट बैंक बनाया, अब आप रहम कीजिए और हमें अपने भाग्य पर छोड़ दीजिए। हमारे लिए क्या भला और बुरा है, हम स्वयं देख लेंगे। यह विजय मोदी की है या भाजपा की? ऐसे प्रश्न उठा रहे हैं। किसी दल की विजय पार्टी कार्यकर्ताओं के आपसी विश्वास और समन्वय पर निर्भर करती है। २०१४ में मोदी सरकार के आने पर डराया जा रहा था। इन तीन सालों में आकाश टूट नहीं पड़ा। उत्तर प्रदेश में आदित्यनाथ योगी की सरकार बनने पर फिर भ्रम पैदा करने की कोशिश हो रही है कि सैफ्रॉन फायर ब्रांड (भगवा अग्निपुंज) आ गया है। न जाने क्या होगा। ये लोग भूल जाते हैं कि भाजपा का कोई भी मुख्यमंत्री संविधान के अंतर्गत, अपने दल के घोषणा-पत्र और सर्वोपरि नीति सबका साथ, सबका विकास के आदर्श के अनुसार ही नीतियाँ और कार्यक्रम बनाएगा। आदित्यनाथ योगी ने मुख्यमंत्री की शपथ लेने के बाद अपनी प्राथमिकता में उनकी कार्यप्रणाली क्या ठहरेगी, इसको प्रमुखता से प्रस्तुत कर दिया है। अनगिनत समस्या ग्रस्त उत्तर प्रदेश के लिए आदित्यनाथ योगी जैसा मुख्यमंत्री ही प्रभावी हो सकता है। उत्तर प्रदेश के नतीजों ने नरेंद्र मोदी के विरोधियों में एक हताशा का माहौल पैदा किया है, जिसकी वजह से भाँति-भाँति के दिमागी भूत सामने आ रहे हैं। प्रधानमंत्री ने एक सभा में कहा है कि वे एक 'नया भारत' उदय होते देख रहे हैं, ऐसा भारत, जो प्रोत्साहित कर गरीब युवाओं को अवसर दे, ताकि वे देश पर गर्व कर सकें। यह उनकी आगे की कल्पना है। यह ध्यातव्य है कि प्रधानमंत्री मोदी का पूरा जोर युवाओं, महिलाओं, गाँवों और गरीबों पर रहा। भाजपा के संसद् सदस्यों की बैठक में मोदी ने कहा कि न वे स्वयं चैन से नहीं बैठेंगे और न दूसरों को बैठने देंगे। वे स्वामी विवेकानंद के चरैवेति, चरैवेति के उद्बोधन में विश्वास करते हैं। प्रधानमंत्री की यह एक महान् कल्पना और संकल्प है।

सुषमा स्वराज

हम सुषमा स्वराज के संसद् में उपस्थिति होने का स्वागत करते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से पिछले कई महीनों से वे एक गंभीर संघर्ष से गुजरी हैं। अपने आत्मिक बल और परमात्मा में अटूट विश्वास के सहारे ही उन्होंने कंटाकाकीर्ण मार्ग को पार किया है। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में भरती होने पर उन्होंने सोशल मीडिया द्वारा जनसाधारण को सूचित कर दिया कि उनका डायलेसिस चल रहा है, उनको गुरदे की निष्क्रियता की शिकायत है, चिकित्सक दल गुरदा प्रत्यारोपण की आवश्कयता महसूस कर रहा है। उससे संबंधित प्रक्रियाओं की जाँच-पड़ताल में चिकित्सक दल व्यस्त है। उन्होंने अंत में कहा कि भगवान् कृष्ण सब ठीक करेंगे। यह उनके आत्मबल और परमशक्ति में श्रद्धा और विश्वास का परिचायक है। यह उनके व्यक्तित्व का एक पक्ष है। कितने राजनेताओं में इतना साहस है कि वे स्वयं अपने रोग की जानकारी दूसरों को इस प्रकार दें। सबका प्रयास तो अपनी बीमारी छिपाने का रहता है। एक महत्त्वपूर्ण पद पर रहने के कारण उन्होंने यह उचित समझा कि जनता को विश्वास में लें। यह उल्लेखनीय है कि बहुत से व्यक्तियों, जिनसे वे परिचित भी न थीं, ने अपनी किडनी देने को कहा, उन सबके प्रति अपना धन्यवाद प्रकट किया। सुषमाजी की किडनी का प्रत्यारोपण सफल हुआ, जिसके लिए चिकित्सक धन्यवाद के पात्र हैं। इस परिस्थिति में भी वे अपने मंत्रालय एवं पद के महती दायित्व के प्रति सजग थीं। विदेश मंत्रालय संबंधित किसी को कोई भी कठिनाई हुई और उनसे संपर्क किया तो उन्होंने उसके समाधान के लिए तुरंत आवश्यक कदम उठाए तथा परिवार के व्यक्ति विशेष को सूचित भी कर दिया। स्वस्थ होने के बाद जब वे संसद् में पहुँची, सब पक्ष के सदस्यों ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया और बधाई दी। इसी प्रकार का स्वागत राज्यसभा में भी हुआ, विरोधी पक्ष के नेता खड़गे ने प्रश्न उठाया कि अमेरिका में भारतीयों पर होनेवाले हमलों में विदेश मंत्रालय क्या कर रहा है? इसका उन्होंने सिलसिलेवार और विस्तार से उत्तर दिया। आगे पूछने को कुछ रहा ही नहीं। वे न केवल अच्छी वक्ता हैं, बल्कि पूरी तैयारी से अपनी बात रखती हैं। सुषमाजी ने आपातकाल में जॉर्ज फर्नांडीज का मुकदमा बड़ी शिद्दत से लड़ा। वे हरियाणा में आपातकाल के बाद जनता पार्टी की सबसे कम उम्र की मंत्री बनीं। उनकी सदाशयता, ईमानदारी, संवेदनशीलता और कार्यकुशता को लेकर लोग सराहना करते थे। हमें उन्हें नजदीक से जानने का अवसर कुछ समय के बाद राज्यसभा में मिला। हम सुषमा स्वराज के अच्छे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करते हैं, ताकि वे इसी प्रकार देश और समाज की सेवा करती रहें।

२०१७ का वर्ष

२०१७ का वर्ष कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। बिहार में चंपारन सत्याग्रह का यह शती वर्ष है। गांधीजी का यहीं से सीधा और सक्रिय संपर्क भारत की जनता से हुआ। आचार्य कृपलानी, बाबू राजेंद्र प्रसाद आदि से इसी समय गांधीजी का मिलना हुआ। वहीं से गांधीजी के सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन के बीज पड़े। मई के मास में अमरीकी प्रेसीडेंट जॉन एफ केनेडी की सौवीं वर्षगाँठ है, उनके ये शब्द कि ''आशा न करो कि देश हमारे लिए करेगा, हमें सोचना है कि हम देश के लिए क्या कर सकते हैं!'' वास्तव में प्रबुद्ध और जाग्रत् नागरिकता के मूलमंत्र हैं। साम्यवाद के पितामह ५ मई को कार्लमार्क्स का जन्म २०० वर्ष पहले हुआ था। उनकी विचारधारा और व्यक्तित्व ने पूरे विश्व को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया। सोवियत यूनियन समाप्त हो गया, पर कई देश हैं, जो उनके नाम की दुहाई देते हैं। संयोग था कि जब उनको दफनाया गया, उस समय गांधीजी वहाँ उपस्थित थे। मार्क्स के दर्शन से सहमत होते हुए भी हम यह मानते हैं कि उनके व्यक्तित्व और उनकी विचारसरणी को समझना आज के विश्व में अपेक्षित है। इन सब विषयों पर कुछ-न-कुछ उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करने का हमारा प्रयास रहेगा।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी)

बालमुकुंद गुप्त

● गोपालराम गहमरी

अपने पहले लेख में मैंने कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह के संस्मरणों को लिखा था, इस लेख में अपने परम मित्र बाबू बालमुकुंद गुप्तजी के संस्मरण जितने याद हैं, लिख रहा हूँ।

बाबू बालमुकुंद गुप्त

बाबू बालमुकुंद गुप्त रोहतक जिला के गुरियानी के रहनेवाले अग्रवाल वैश्य थे। आप हिंदी-फारसी के अच्छे जानकार आस्तिक हिंदू थे। नए रोशनीवालों की धाँधली पर बहुत चिढ़ते थे। पहले लाहौर से निकलनेवाले 'कोहेनूर' के संपादक थे। पीछे से उसको उन्होंने दैनिक भी कर दिया था। लेकिन हिंदी लिखने की रुचि उनको बहुत थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिंदी साहित्य में जब उतर आए, तब उन्होंने उर्दू में लेख लिखना ही छोड़ दिया था। उर्दू में 'कोहेनूर' का संपादन करते समय भी लखनऊ के 'अवध पंच' में 'मिस्टर हिंदी' के नाम से बड़े चुटीले लेख लिखा करते थे।

गुप्तजी हिंदी की दुनिया में जब आए, तब पहले-पहल कालाकाँकर के दैनिक 'हिंदोस्थान' के ही संपादक हुए। उससे पहले उन्होंने 'रत्नावली' नाटिका लिखी थी। कालाकाँकर में आने पर उनकी ओजस्विनी लेखनी का जौहर हिंदी के पाठकों को देखने का अच्छा अवसर मिला।

जिस समय वे 'हिंदोस्थान' के संपादक होकर आए, संपादन विभाग से पंडित मदनमोहन मालवीय विदा हो रहे थे। राजा साहब से स्नेह होने के कारण मालवीयजी कभी-कभी कालाकाँकर पधारते थे, लेकिन 'हिंदोस्थान' के संपादन का कार्य बाबू बालमुकुंद के हाथ में आ चुका था।

गुप्तजी के संपादकत्व में 'हिंदोस्थान' अच्छा चमका। राजा रामपाल सिंह उनके प्रभावशाली लेखों से बहुत प्रसन्न रहते थे।

बालमुकुंद गुप्तजी संपादकीय सिद्धांतों में बड़े पक्के थे। किसी की सिफारिश से किसी की प्रशंसा करना या किसी की द्वेष-बुद्धि में आकर किसी की निंदा छापना उनके स्वभाव में नहीं था, लेकिन वे कहा करते थे कि जिसको सरसों भर बुद्धि है, उसका सरसों भर तक अभिमान क्षन्तव्य है, लेकिन जो सरसों भर बुद्धि लेकर मटर भर घमंड रखता है, वह जब तक सर्वसाधारण में अपना घमंड प्रकट न करे, तभी तक क्षमा योग्य है। अगर उसने ऐसा सर्वसाधारण में जाहिर किया तो अपना परिचित होने पर जरूर उसका प्रतिवाद करके मुखमर्दन करना चाहिए। गुप्तजी अच्छे अखबारनवीस थे। संपादक के कर्तव्य-पालन में उनमें हमने कभी कच्चाई नहीं देखी। जब वे 'हिंदोस्थान' के संपादक थे, उस समय वहाँ पंडित प्रतापनारायण मिश्र, चोबे राधारमण बी.ए. (दपवा), चौबे गुलाबचंद, और मैं भी सहायकों में था। मिश्रजी अच्छे प्रभावशाली कवि थे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के समकक्ष कड़ियों में उनकी गणना थी। 'हिंदोस्थान' में अकसर कविता लिखा करते थे। 'तृष्यंता' नाम की एक कविता उन्होंने एक साल पितृपक्ष में वहीं लिखी थी। फसल पर गुप्तजी उनके लेख भी लिया करते थे।

गुप्तजी को एक बार हमने व्यक्तिगत आक्षेपों का लेख 'हिंदोस्थान' में लिखते देखा था। बात यह हुई कि साहित्याचार्य पंडित अंबिकादत्त व्यास उन दिनों भागलपुर हाई स्कूल में हेड पंडित थे। वहीं से उन्होंने 'पीयूष प्रवाह' नाम का एक मासिक पत्र हिंदी में निकाला था। राजा रामपाल सिंह सुधारकों में अग्रगण्य थे। हिंदी का प्रचार, विधवा विवाह और गोरक्षा के विषयों के लेख 'हिंदोस्थान' में बहुत छपा करते थे। गुप्तजी में यह गुण था कि सुधारकों की उचित बात का विरोध कभी नहीं करते थे। 'पीयूष प्रवाह' में पंडित अंबिकादत्त व्यास ने 'काजीजी दुबले क्यों' नाम का लेख छापा, जिसमें राजा रामपाल सिंह पर यह आक्षेप था कि अत्रभवान तो चाहते हैं कि सारा भारत इंग्लैंड हो जाए, लेकिन जो मर्दुमशुमारी दस-दस साल पर पाँच-पाँच करोड़ बढ़ रही है, उसी से यहाँ के लोगों को दोनों जून भरपेट खाने को नहीं मिलता और अब यदि अत्रभवान के सिद्धांत पर विधवा विवाह का भंडा फूटेगा तो भारत की मेदिनी और भूखों मरने लगेगी।

वह लेख राजा साहब के सामने आया। उन्होंने कहा कि कोई इसका मुँहतोड़ उत्तर नहीं दे सकता। गुप्तजी ने उसी समय कहा, ''कल मैं इसका उत्तर 'हिंदोस्थान' में निकाल दूँगा।''

उसी अवसर पर गुप्तजी ने 'हिंदोस्थान' में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'मैं सुकवि हूँ।' पंडित अंबिकादत्तजी व्यास अपनी कविता में अपना उपनाम 'सुकवि' लिखा करते थे। उस लेख में सुकविजी की खूब खबर ली गई। व्यक्तिगत आक्षेप का वही एक लेख उनको हमने लिखते देखा था और वो भी 'डिफेमेशन' में नहीं आता था।

कालाकाँकर से अपने स्वतंत्र स्वभाव के कारण गुप्तजी नौकरी छोड़कर घर चले गए।

राजा साहब से उनका साधारण व्यवहार था। उनका मन वहाँ नहीं लगता था। वे वैष्णव थे। रोज स्नान करके माथे पर श्री लगाते थे। आचरण के बड़े शुद्ध और सात्त्विक थे। लेकिन जो आदमी खान-पान में अखाद्य भोजी होता, उससे उनकी नहीं पटती थी। नहीं पटने का केवल इतना ही मतलब कि हृदय का मिलान नहीं होता था। राजा साहब खान-

पान में बड़े स्वतंत्र थे। वे अपने खाने-पीने के मामले में स्वास्थ्य या भारतीय रिवाज की कुछ भी परवा नहीं करते थे। इस कारण राजा साहब के यहाँ बिन बुलाए वे कभी नहीं जाते थे। जब बुलाने पर जाते, तब जितना समय वहाँ बारादरी में उनका बीतता, उसको वे भार समझते थे। बल्कि कहा करते थे कि वह समय किसी अर्थ में नहीं लगा। लेख स्वयं लिखने के बजाय डिक्टेट कराना अधिक पसंद करते थे। अंग्रेजी अखबारों को देखकर उनका स्वाद लेने की योग्यता उनमें काफी थी। किसी दूसरी भाषा से लेकर हिंदी में कुछ बातें लिखते थे तो केवल फैक्ट लेकर अपनी ओर से मौलिक की तरह लिखा करते थे। किसी की लकुटिया लेकर टेकते चलना अर्थात् शब्दानुवाद करना उनको नहीं भाता था। बिलायती रहन-सहन और सभ्यता को बिल्कुल नापसंद करते थे, लेकिन उसमें जो गुण पाते, उनसे कभी घृणा नहीं करते थे। आर्य समाज में घास पार्टी और मांस पार्टी उस समय हुई थी, जब महाराज जोधपुर ने विज्ञापन देकर वेदों से मांसाहार सिद्ध करने का प्रयास किया था। पंडित भीमसेन शर्मा ने बड़े नि:शंक भाव से उस कार्य का विरोध किया और पंडित भास्करानंद सरस्वती (काशी के प्रसिद्ध महात्मा भास्करानंद नहीं) ने वेदों से मांसाहार विधेय बतलाने का बीड़ा उठाया था। उस समय उन्होंने कहा कि आर्य समाज अब पतनोन्मुख हुआ है।

जब गुप्तजी वहाँ से अलग हुए, कलकत्ते के सदुद्योगी बाबू जगन्नाथदास ने उसी समय 'भारतमित्र' का संपादन भार गुप्तजी को सौंपना चाहा, लेकिन गुप्तजी ने इस तरह एक साप्ताहिक हिंदी को छोड़कर दूसरे को हाथ में लेना अपनी मर्यादा के बाहर समझकर अनुचित बतलाया और कहा कि घर जाते हैं, वहाँ से आपकी बुलाहट होगी तो मैं आ जाऊँगा। वही बात हुई। घर पहुँचते ही गुप्तजी को 'भारत मित्र' के मालिकों की बुलाहट गई। गुप्तजी 'भारत मित्र' का संपादन-भार लेकर फिर कलकत्ते लौटे।

आर्य-सिद्धांत का युग समाप्त करके जब पंडित भीमसेन शर्मा ने 'ब्राह्मण सर्वस्व' का मार्गावलंबन किया, तब गुप्तजी ने कहा कि सवेरे के भूले हुए संध्या को घर आ गए। लेकिन इस तरह उजरत पर सिद्धांत बदलना वजह नहीं रखता।

अंग्रेजी-बँगला दोनों के अखबार पढ़ा करते थे, लेकन उर्दू के अखबारों को बड़े चाव से पढ़ते थे। 'कोहेनूर', 'शमशुल अखबार' अमृतसर का 'सद्धर्म-प्रचारक' केवल उनकी लंतरानियों का जवाब देने के लिए पढ़ा करते थे।

'पायनियर', 'मॉर्निंगपोस्ट' और 'सिविल मिलिटरी गजट' में खबरें न पढ़कर अग्रलेख और स्फुट सम्मतियों को बड़े चाव से पढ़कर उनका उत्तर 'हिंदोस्थान' में तथा कलकत्ते के प्रवासकाल में 'भारतमित्र' में दिया करते थे। लखनऊ के बाबू गंगाप्रसाद वर्मा द्वारा संपादित उर्दू का साप्ताहिक 'हिंदुस्तानी' बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पढ़ा करते थे।

बंगवासी के मालिक श्रीयुत योगेंद्रचंद्र बसु ने बंगभाषा में 'मडेलभागिनी' नाम का एक बड़ा उपन्यास लिखा। उसमें सुधारकों की बड़ी खिल्ली उड़ाई गई है। गुप्तजी को वह पुस्तक हिंदी में लिखने के लिए दी गई। गुप्तजी ने अपने धार गुरियानी से ही उसको पढ़कर 'शिक्षिता हिंदूबाला' के नाम से 'हिंदी बंगवासी' में छपने को भेजना शुरू किया था, जो 'हिंदी बंगवासी' में धूमधाम से बहुत दिनों तक छपता रहा। उस समय 'हिंदी बंगवासी' के संपादक पंडित अमृतलाल चक्रवर्ती थे। गुप्तजी उसी समय 'हिंदी बंगवासी' के संपादन कार्य के सिलसिले में कलकत्ते बुलाए गए। लेकिन वहाँ अंधपरंपरा का राज था। इस कारण उस कार्यालय में गुप्तजी नहीं ठहर सके। बात यह हुई कि उन दिनों व्याख्यान-वाचस्पति पंडित दीनदयाल शर्मा हिंदी के अद्वितीय वक्ता थे। जब वे कलकत्ते पधारे तब गुप्तजी 'हिंदी बंगवासी' के संपादक थे। पंडित दीनदयाल शर्मा के व्याख्यानों से कलकत्ते के धनीमानी मारवाड़ी सज्जनों का आसन डोला और सनातन धर्म की उन्नति में जी खोलकर तन, मन, धन से बड़े-बड़े धनी मारवाड़ी उतारू हो गए। 'बंगवासी' के मालिक उन दिनों कलकत्ते में 'धर्मभवन' बनवाने पर तुले हुए थे। व्याख्यान-वाचस्पति में धर्म भवनवालों की पटरी नहीं बैठी। गुप्तजी ने पंडित दीनदयालजी का विरोध करने से इनकार कर दिया, इसी से उनको बंगवासी कार्यालय छोड़ देना पड़ा।

जब गुप्तजी वहाँ से अलग हुए, कलकत्ते के सदुद्योगी बाबू जगन्नाथदास ने उसी समय 'भारतमित्र' का संपादन भार गुप्तजी को सौंपना चाहा, लेकिन गुप्तजी ने इस तरह एक साप्ताहिक हिंदी को छोड़कर दूसरे को हाथ में लेना अपनी मर्यादा के बाहर समझकर अनुचित बतलाया और कहा कि घर जाते हैं, वहाँ से आपकी बुलाहट होगी तो मैं आ जाऊँगा।

वही बात हुई। घर पहुँचते ही गुप्तजी को 'भारत मित्र' के मालिकों की बुलाहट गई। गुप्तजी 'भारत मित्र' का संपादन-भार लेकर फिर कलकत्ते लौटे।

गुप्तजी ने 'भारत मित्र' को ऐसा उन्नत किया, जैसा वह अपनी चालीस वर्ष की जिंदगी में कभी लोकप्रिय नहीं हुआ था। 'भारत मित्र' एक सुधारक पत्र था, लेकिन सनातनी सिद्धांत का शत्रु नहीं था। गुप्तजी ने उसकी नीति किसी पक्ष पर नहीं, सत्य पर रखी और दो टूक न्याय की बात कहना उन्होंने अपना सिद्धांत रखा। इस कारण सब पक्ष के लोगों से 'भारत मित्र' की बड़ी मर्यादा बढ़ी। गुप्तजी व्यंग्यभरी कविता भी 'भारत मित्र' में समय-समय पर लिखते थे। उनकी बहुत सी कविताओं का संग्रह 'स्फुट कविता' के नाम से भारत मित्र प्रेस में निकला था। उनके भारत मित्र में आने से पहले पंडित रुद्रदत्त शर्मा 'भारत मित्र' के संपादक थे। उनके लेखों से 'भारत मित्र' के सनातनधर्मी पाठक बहुत हट गए थे। गुप्तजी की निर्भीक और निष्पक्ष लेखनी से सब प्रसन्न हो गए और 'भारत मित्र' का प्रचार खूब बढ़ा। गुप्तजी हमारे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे। वे अपने लड़के बाबू नवल किशोर की शादी में जब घर गए, तब

'भारत मित्र' का संपादन भार कुछ महीनों के लिए हमको ही देकर गए थे। हमारे ऊपर जैसा उनका स्नेह था, वैसा ही हमारा विश्वास भी वे करते थे।

गुप्तजी हँसोड़ इतने थे कि बात-बात में दिल्लगी किया करते थे। उर्दू लिखावट की बड़ी खिल्ली उड़ाया करते थे। जब 'अभ्युदय' निकला, तब उन्होंने कहा था कि उर्दू वह लिखा जाए तो 'ओबेहूदे' पढ़ा जाएगा। उन दिनों 'भारत मित्र' ऑफिस में अच्छे-अच्छे सुलेखकों का जमाव था। 'उचित वक्ता' के संपादक पंडित दुर्गा प्रसाद मित्र सारस्वत हिंदी लेखकों के सिरताज तथा सबके श्रद्धाभाजन थे। वे भी वहाँ पधारकर दो घड़ी की मौज दे देते थे। गुप्तजी और पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीजी में बड़ी आवाजकशी होती थी। चतुर्वेदीजी हास-परिहास के प्रेमी थे, गुप्तजी भी उसी तरह के परिहास-प्रिय थे।

गुप्तजी कभी-कभी ऐसी गहरी दिल्लगी करते थे कि उसका मतलब समझ में नहीं आता था। तब उनको स्पष्ट कहकर समझाना भी पड़ता था। हमसे ऐसा कई बार हुआ था। गुप्तजी होली में दिल खोलकर अखबारों से दिल्लगी करते थे और दशहरे के अवसर पर भी 'टेसू आए' लिखकर हिंदी पत्रों में टेसू की दिल्लगी किया करते थे। उनके पहले किसी ने कभी हिंदी में टेसू पर दिल्लगी नहीं की थी। समालोचना भी दशहरा और होली के समय गुप्तजी बड़ी बेढ़ब लिखते थे।

गुप्तजी की दिल्लगी व्यक्तिगत होकर भी एक श्लेष भरी होती थी कि व्यक्तिगत नहीं होने पाती थी। जिसके ऊपर बोली बोलते और दिल्लगी बनाते थे, वह भी हँसने लगता था। वस्तुत: दिल्लगी का अर्थ यही है कि जिससे दिल्लगी की जाए, उसको भी हँसी आवे। ऐसी दिल्लगी जिससे हँसने के स्थान पर रुलाई आवे या अदालत में मानहानि की नौबत हो, वह दिल्लगी काहे की, वह तो राह चलते भले मानस की पगड़ी उतारने के समान होती है।

गुप्तजी की लेखनी में बड़ा बल था। जिस विषय को लेते थे, उसको जिस तेजी से आरंभ करते थे, अंत तक उसी ओज से ले आते थे। कलकत्ते के ठाकुर घराने की धनी, शिक्षित और शिष्टजनों में बडी मान-मर्यादा है। एक माननीय ठाकुर ने 'अश्रुमती' नाम का एक नाटक लिखा था, जिसमें राजपूत महिलाओं पर गर्हित आक्षेप था। उसका अनुवाद भारत जीवन के बाबू रामकृष्ण वर्मा ने छापा। उसको देखकर गुप्तजी बहुत बिगड़े और उसकी बहुत कड़ी आलोचना की। अंत में बाबू रामकृष्ण वर्मा को उस पुस्तक को गंगा प्रवाह करके प्रायश्चित्त करना पड़ा। एक घटना हिंदी साहित्य में उसके सिवा और कोई सुनने को नहीं आई। भूल सबसे होती है, लेकिन भूल कबूल करके प्रायश्चित्त करना बहुत बड़े हृदय का काम है। और वस्तुत: भूल का दंड भी यही है कि भूल कबूल कर ली जाए। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने उस भूल को कबूल करके उचित सफाई दी थी।

जो नेता लोग दिखोआ ठाठ रखते और नाम पैदा करने के लोभ में ही देशहित के कार्यों की ओर मन नहीं देते थे, उनपर अपने पत्र में समय-समय पर आक्षेप किया करते थे। वे धर्म के ढकोसले कुछ नहीं करते थे। धर्म के नाम पर ढोंग करनेवालों की चालें वे खूब समझते और उनपर दशहरे एवं होली के अवसर पर गद्य तथा पद्य में व्यंग्य लिखकर मन का गुबार निकाला करते थे। यह भी कहा करते थे कि मनु ने जो मेंड़ें तैयार की हैं, उनको तोड़नेवाली बाढ़ कभी आवेगी?

गुप्तजी हरियाणे के रहनेवाले थे। इस देश की गायों को देखकर बहुत दुखी हुआ करते थे। इसका बड़ा पश्चात्ताप करते थे कि जहाँ से यह रत्न दुहा करते हैं, उस भंडार के कल्याण का कुछ ध्यान रखते तो यह मैयारूपिणी गैया इस तरह दीन-दशा में जीवन न बिताती।

अफसोस! गुप्तजी बहुत जल्दी अकाल में ही संसार से उठ गए। उनको प्रमेह रोग था, जो सन् १९०८ में इतना प्रबल हुआ कि बहुत उपचार करने पर भी शांत नहीं हुआ। उसी पीड़ा में गुप्तजी को लाचार होकर घर जाना पड़ा और घर पहुँचने के बाद उनका देहावसान हो गया।

साअ

लघुकथा

प्रोफेशन

● बिर्ख खडका डुवर्सेली

कोलकाता जाने के लिए न्यू जलपाइगुड़ी जंक्शन पर पहुँचा था। एक भद्रजन मेरे पास आया और बोला, ''आफत में फँस गया हूँ, पाँच-दस रुपए की मदद करेंगे?'' मेरे पास खड़े व्यक्ति ने उसे तत्क्षण पाँच रुपए का नोट दिया। फिर वह मेरी ओर मुड़ गया। मैंने उसे दस रुपए दिए। उसे पैर से सिर तक जब मैंने उसे देखा तो लगा, यह भिखारी जैसा तो नहीं है, जरूर मुसीबत में फँसा होगा।

जब दार्जिलिंग मेल प्लेटफार्म नंबर एक में आकर खड़ी हुई तो मैं बैग वगैरहा लेकर थ्री टायर ए.सी. की बोगी बी टू की पचास नंबर सीट पर जा बैठा। ट्रेन छूटने से पहले सब यात्री चढ़ चुके थे। जब मैंने अपने सामने बैठे व्यक्ति को ध्यान से देखा तो अचरज में पड़ गया। वह वही आदमी था, जो आधा घंटा पहले पैसे माँग रहा था। मुझसे रहा न गया, पूछ बैठा, ''तुम ही हो न वह आदमी, जो भीख माँग रहा था?''

वह बोला, ''जरा मुँह सँभालकर बोलिए। यह थ्री टायर ए.सी. का डिब्बा है, सभी भद्रजन होते हैं।''

साअ

आमा खडकालय
दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर
दार्जिलिंग-७३४००३
दूरभाष : ०९७४९०५२८५७

कहानी

मँझले

● बटुक चतुर्वेदी

''इस कपूत ने तो मेरा जीना हराम कर दिया। मरै न माचौ लेय। जब देखों तब कोई-न-कोई इसकी शिकायत लिए खड़ा है दरवाजे पर।'' मँझले की मताई आगन में खड़े होकर जोर-जोर से उसे भली-बुरी सुना रही थी तो पड़ोसन रामरती ने पूछ धरा, ''लुड़को काकी, आज का भओ?''

''अरी बाई, आज अबई राम दुलारे की बहू खेत से लौटत मँझले की कारस्तानी सुना गई। कह रही थी—काकी, नाशमिटे कौ ब्याऔ करा दो, रोजई रोज किसी-न-किसी की बहन-बेटियों को छेड़ता है खेत में। खूब गरिया दओ, जुतया दओ, मनो लतर कुटैला है, मानतई नइयाँ।''

बूढ़ी लुड़को काकी एक हाथ कमर पर धरे और दूसरा हाथ हवा में लहरा-लहराकर कभी रुआँसी होती, कभी उदास और कभी पूछती, ''तुमई बताऔ, अगर हाथ-पाँव सही-सटाक होते, दिमाग को थोड़ो-बहुत तेज होतो, चार दरजा पढ़ लओ होतो तो काहे बैठो रहतो अबलो कँवारो? भला बताओ, मैं का पागल थी जो छोटे को ब्याह कर देती और जौ कुँवारो बैठो रहतो? बड़ौ और छोटो दोई गबरू जवान हते सों देख लो, उनके घर बस गए, उनकी लच्छमियाँ घर-द्वार, खेत-खलियान ढोर-डंगर सँभाल रही हैं। रामजी की किरपा से 'दूधों नहा रईं पूतों फल रही', मेरी सेवा कर रही हैं। मनो करमजलो मँझलो 'न काम कौ न काज को, ढाई सेर अनाज को' और ऊपर से रोज-रोज के उलाहने।''

रमरतिया कब की घर के भीतर घुस गई थी, मगर लुड़को कलप रही थी खड़े-खड़े। माथे पर हाथ रखकर पत्थर की अथाई पर बैठ गई। बोली, ''आ जाने दे बड़े-छोटे को, ससुरे के हड्डा तुड़वा दे हों, रोज-रोज के उरान्हे सुन-सुन के तो मेरे कान पक गए। मोतीझरा में ही मर जातो तो चार दिन रो-रा कै रह जाती। रोज-रोज कौ रोना तो न होतो।'' सब जानते हैं, लुड़को का क्षणिक गुस्सा शाम तक उतर जाएगा और वह उसे लाड़-प्यार से समझाने-पुचकारने लगेगी।

लुड़को भर जवानी में विधवा हो गई थी। उसका पति रामदीन दस बीधा का किसान, चार भैंस, आठ गायों और पाँच बैलों का मालिक था। लुड़को राजा के राज कर रही थी। बड़ा बेटा पाँचवीं जमात में पढ़ रहा था कि तभी आठ साल के मँझले को मोतीझरा निकल आया। कस्बे के बैद, झड़िया-गुनिया से लेकर शहर के अस्पताल तक के पापड़ बेले, तब जाकर मँझला बचा था। पाँच महीने बाद ठीक हुआ तो पता चला, उसका दिमाग ठस हो गया है। एक पाँव से लँगड़ाने भी लगा। उसके दद्दा रामदीन ने कहा, ''चलो, बेटा बच तो गया। हाथ-पैरों का क्या, एक गाय का दूध इसी के नाम।'' जिसने जो बताया, वह उसे खिलाया—बादाम, खसखस का हलुआ, दिनभर में सेर भर दूध, खुली छुट्टी, पढ़ना-लिखना बाद में। इस खिलाई-पिलाई का असर यह हुआ कि मँझला गबरू ज्वान निकल आया साल भर में। हट्टा-कट्टा, मगर पैर से लँगड़ाना और दिमाग का ठसपना नहीं गया। स्कूल भी भेजा, मगर पहले दरजे से आगे ही नहीं बढ़ा तीन साल में। निराश होकर दद्दा ने खेती-बाड़ी में लगाना चाहा। अपने साथ खेत ले जाते, खेती का काम, जोतना, बोना, खाद, बीज, कुएँ में रहट चलाकर सिंचाई करना, मगर उसकी समझ में कुछ आता ही नहीं। दद्दा कहे, खेत की, वह सुने खलिहान की। दद्दा काम में जुटा तो वह किसी पेड़ पर किसी तरह चढ़ जाता। घंटों दद्दा ढूँढ़ते और साँझ ढलते घर लौटने लगते तो ये भी पेड़ से उतरकर पीछे-पीछे हँसता, मुसकराता चला आता।

सुपरिचित कवि-लेखक। बुंदेली और हिंदी की अब तक तेईस पुस्तकें प्रकाशित। उ.प्र. हिंदी संस्थान व म.प्र. साहित्य अकादमी, गोयनका व्यंग्य सम्मान सहित देश-प्रदेश की शताधिक साहित्यिक संस्थाओं से सम्मानित व पुरस्कृत। आकाशवाणी इंदौर व भोपाल से रचनाएँ प्रसारित।

कहते हैं, माँ-बाप को कमजोर बेटा सबसे ज्यादा प्यारा होता है। क्योंकि वे उसके भविष्य के लिए चिंतित रहते हैं। चाहते मन से हैं कि वह भी औरों की तरह काबिल बने, पुश्तैनी धंधा करे, नहीं तो और काम-धंधा करे। उसका भी घर बसे, बाल-बच्चे हों। मगर हर कुछ हमारे चाहने से नहीं होता। होता वही है, जो होना होता है।

बड़ा और छोटा इतना पढ़ गए कि खेती-बाड़ी लगाना, खाद-पानी का हिसाब-किताब समझ लेते, पटवारी पटेल साहब के फंदों-फाँसों को समझने लगे तो माँ-बाप ने एक-एक करके दोनों को एक साल खेती-बाड़ी में लगाया। कहते हैं, चलता घोड़ा दाना खुद ही माँगता है। शादी-ब्याह वाले रिश्ता लेकर आने लगे और लुड़को और रामदीन ने अच्छा घर-द्वार देखकर बड़े की शादी कर लक्ष्मी सी बहू घर में ला दी। मगर छोटे के ब्याह में मँझले मचल गए। मचल क्या गए, लोगों ने उचका दिया। पूरा मोहल्ला सिर पर उठा लिया, मेरा भी ब्याह कराओ, नहीं तो छोटे का भी ब्याह नहीं होने दूँगा। मुझमें क्या कमी है, बड़े-छोटे दोनों से

ज्यादा गबरू जवान हूँ, बोलो? सब पड़ोसी हँसते, सब उसकी बातों का मजा लेते। उससे कम उम्र के संगी-साथी, जिनके साथ वह गिल्ली-डंडा, कबड्डी, छुपन-छुपइया खेलता, वे उसे और उकसाते, मँझले यही मौका है, अड़ जा ब्याह पर, और वह अड़ गया।

लुड़को ने बहुत समझाया—''देख बेटा, जब तक तू काम-धंधा नहीं करेगा, तो अपना और बहू का पेट कैसे पालेगा? जब कुछ करेगा तभी तो कोई रिश्ता लेकर आएगा? महीना भर तू रोज ढोर लेकर जंगल जाया कर, ढोर-बैलों को चरा, फिर तुझे खेती में लगा देंगे, जब तेरे दद्दाजी समझ जाएँगे कि तू कमाने-खाने लायक हो गया तो तेरा ब्याह मैं करूँगी।''

उसने माँ से कहा, ''सच्ची कह रही है मताई, मेरी सौगंध खा।'' माँ ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, ''बेटा सौगंध खाती हूँ, जब तू खेती-बाड़ी, ढोर-बैल सम्हाल लेगा, तेरा ब्याह कराऊँगी।'' पकड़कर खींचता हुआ ले आया, बोला, ''भौजी, तुम गवाह रहना, मताई ने मेरे सिर पै हाथ रखकर सौगंध खाई है कि मैं कल से खेती-बाड़ी, खेत-खलिहान का काम करूँगा और फिर ये मेरा ब्याह करा देगी, तुम्हारे जैसी प्यारी-प्यारी गोरी सी तुम्हारी देवरानी ला देगी।''

भौजी मँझले देवर के रोज-रोज के खेल-तमाशे देखती चली आ रही थी, होंठों में हँसी और आँखों में शरारत छुपाकर बोली, ''हाँ लल्ला, मैं गवाह हूँ, पक्की गवाही दूँगी।'' खुशी से मँझले भाभी से लिपट गए। तुम कितनी प्यारी भाभी हो मेरी और भावुक होकर वहीं जमीन पर धम्म से बैठकर रोने लगा। बड़ी बहू पास आकर बोली, ''अब काहे को रोते हो, अब तो सब बात पक्की हो गई न। उठो रोटी खाओ।''

माँ ने अपनी मैली धोती से उसके आँसू पोंछे और उसे छाती से लगा खुद भी रोने लगी।

मँझले रोटी खाकर घर से निकल गए और अपने साथियों को अपने ब्याह की खुशखबरी सुना-सुनाकर खूब उछलने-कूदने लगा। मोहल्ले की औरतें चुहल करते हुए पूछतीं, ''अरे, क्या हुआ मँझले, किस बात की खुशिहाली मना रहे हो। हमें भी तो बताओ?'' मँझले दोस्तों के साथ कूदते-फाँदते आकर पूरी कहानी मजा ले-लेकर सुनाते—''मताई ने सौगंध खाई है कि मेरा ब्याह कराएगी, मुझे सजाएगी, मैं घोड़े पर बैठ बरात लेकर जाऊँगा और भौजी की माफिक प्यारी-प्यारी दुल्हनिया डोली में बिठाकर लाऊँगा।'' फिर लाज से खुद ही सिमट जाते और उठकर भाग जाते। मँझले न हुए, मोहल्ले भर के खिलौना हो गए थे।

पंद्रह दिन मँझले सुबह उठकर बड़े के साथ हँसी-खुशी ढोर-डंगर, हल-बैल लेकर खेत पर जाते। रास्ते भर मँझले बड़े से अपने ब्याह की बातें पूछते, ''अच्छा बड़े, तुम्हें तो मताई की सौगंध पर भरोसा है न? मैं तुम्हारे साथ रोज खेत-खलिहान पर काम करने जाऊँगा, मेहनत करके कमा के लाऊँगा तो वह मेरा भी ब्याह करा देगी न?'' बड़े भी उन्हें भरोसा दिलाते, ''बिल्कुल, तू मन लगाकर काम कर, मैं खुद मताई से कहूँगा कि हाँ अब तेरा ब्याह कर देना चाहिए। बस तेरा ब्याह होगा, फिकर मत कर, मगर मन लगा के काम कर। तेरे सिर पर मोहर बँधवाऊँगा, बाजे बजेंगे, गीत होंगे, बराती सजेंगे, तू घोड़े पर बैठकर दुलहिन को लेने जाएगा, बहू मताई के पाँव छुएगी, भौजाई के पाँव छुएगी।'' ''और छोटे की बहू के?'' बड़े ने कहा, ''छोटे की बहू के पाँव नहीं पड़ेगी, वह तो उससे छोटी हुई। उल्टी छोटे की बहू तेरी बहू के पाँव छुएगी, समझा।'' मँझले उचककर ताली बजाने लगे तो गिर पड़े। बड़े ने बढ़कर उठाया और कहा, ''तेरे पाँव कमजोर हैं, कम उछला कर।'' बस इसी तरह बतियाते-बतियाते दोनों भाइयों का रास्ता कट जाता। ढोर-डंगर पास की चरोखर में छोड़ देते और दोनों भाई खेत में काम पर जुट जाते।

मताई और दद्दा छोटे के ब्याह की खरीद-फरोख्त, नाते-रिश्तेदारों को पीली चिट्ठी भेजने, नाऊ-बामन का इंतजाम करने में लग जाते। दोपहर में बड़े की बहू भोजन-पानी लेकर आ जाती। दोनों भाई मिलकर भोजन करते। भोजन करते मँझले भाभी से यह कहना कभी नहीं भूलते, भौजी, ''याद रखना, तुमने भी गवाही दी है मेरे ब्याह की। भैया ने भी वचन दिया है कि मेरा ब्याह जरूर कराएँगे।'' भाभी हँसी दबा कनखियों से बड़े की ओर देखकर कहती, ''बेफिकिर रहो लल्लाजी, ऐसेई मन लगा के काम करते रओ, बस तुमरो ब्याओ पक्को। बल्कि मैंने तो लड़की तलाश भी ली है।'' मँझले रोटी छोड़कर भाभी के पास खिसक आए, ''सच्ची कह रही, तमने देख ली न, तो बस मैं बेफिकर हुआ। मताई-दद्दा तो अब जोजरे हो गए, वे कां ढूँढ़ते फिरते। मनों तुमरी नाई गोरी-चिट्टी तो है न? पुरा परौसिन खों जरा जलानो भी तो है। बहुत कहत रहे, मँझले तेरा ब्याह हो चुका, बैठा रह जिंदगीभर कुँआरा। मैं अब छाती ठोक के कहूँगा, मेरी नैया मेरी प्यारी भौजी ने पार लगा दी। धन्य भौजाई, तुम जैसी भौजाई भगवान् सबको दे।'' कहकर मँझले ने भौजी के पैरों में सिर रख दिया और आँखों में आँसू भर लाए। भौजाई ने उनके आँसू पोंछे और उन्हें रोटी खाने को कहा। वे फिर हँसी-खुशी रोटी खाने बैठ गए। रोटी खा-पीकर बड़े बोले, ''मँझले लठिया उठाऔ और अपने ढोर देखो, काऊ के खेत में न पिल गए हों। फिर उन्हें कुएँ पर लाकर नाद में भरा पानी पिलाना और जब वे सब सुस्ताने लगें तो तुम भी किसी पेड़ की छाह में आराम करना। अब मैं भी कमर सीधी करूँगा और तुम्हारी भौजाई भी रोटी खाएगी।'' वे बोले, ''अच्छा भैया-भौजी, हम जाते हैं।''

दिन ढलते दोनों भाई ढोर-डंगर घेरकर घर की तरफ चल देते, पीछे-पीछे बड़े की बहू और बड़े सिर पर चारे का गट्ठा रखे चलते। मँझले लँगड़ाते-लँगड़ाते साथ चलनेवाले चरवाहों से बतियाते चले आते। मँझले सबको हँस-हँसकर अपने ब्याह की बातें सुनाते। मताई की सौगंध भौजाई की गवाही, बड़े का वचन सब बताते। हलवाहे-चरवाहे उनकी बातों का मजा लेते, अपने-अपने पशुओं को हाँकते, टिटकारते, पुचकारते, गरियाते चले आते और अपने-अपने घर का रास्ता पकड़ लेते।

छोटे घर पर तैयार बैठे उन्हीं की राह देखते—कब आवें, कब ढोर-डंगों को खूँटे से बाँधें, दुधारुओं को सानी तैयार करें। ढोर आते ही छोटी बहू आकर दूध दुहने में छोटे की मदद करती। मताई-दद्दा बाजार करके लौट आते, ब्याह का सामान जमाते, बड़ी बहू को समझाते, हिसाब बताते, थोड़ी देर सुस्ताते। छोटी-बड़ी मिलकर फिर रसोई में घुसतीं तो घंटा-डेढ़

घंटा में सबको ब्यारी करातीं। मताई छोटे बच्चों को दूध-रोटी, दाल-रोटी जो जैसा खाए, प्यार से खिलाती। खा-पीकर दद्दा अलाव या चौपाल पर आ डटते, बड़े और छोटे आराम से खा-पीकर अपने हमउम्रों में दूसरी जगह डट जाते, मँझले नियम से मंदिर में पहुँचकर आरती, गम्मत वगैरह में रम जाते।

धूमधाम के साथ छोटे की बरात सजी, बाजे-गाजे के साथ, हँसी-खुशी सात फेरे हुए और बड़ी के गाँव पासवाले गाँव की ही सुशील-सुंदर बहू बैठाकर ले आए। मँझले सज-धजकर बराती बनकर गए, खुशी में नाचे-गाए, हँसी-ठिठोली करते रहे, इसी आशा में कि उनका भी ब्याह होगा और जल्दी होगा, क्योंकि मताई और बड़े ने वचन दिया है तथा इसकी गवाह भौजाई है। अभी छोटे के ब्याह को तीन महीने भी नहीं हुए थे कि भरी बरसात में एक रात दद्दा के पेट में अचानक ऐसा दर्द उठा कि पूछो मत, रात काटना मुश्किल हो गई। बड़े भरी बरसात में घुट्टन-घुट्टन पानी में बरसाती ओढ़कर भागे वैद्यजी के घर। वैद्यजी का दरवाजा बड़ी देर में खुला, शायद गहरी नींद में थे वैद्यराज। भीतर से ही आवाज दी, कौन? बड़े ने उत्तर दिया, वैद्यजी मैं रामदीन अहीर का बेटा बड़े। वैद्यजी ने झटपट दरवाजा खोला और बड़े को भीतर बुलाकर पूरी बात पूछी। पानी ऐसा बरस रहा था कि लगता, आज प्रलय हो जाएगी। बूढ़े वैद्यजी ने आसमान की तरफ हाथ उठाकर देखा और कहा, ''प्रभु, मेरी लाज रखना।'' उन्होंने अपनी बरसाती ओढ़ी, बड़ी टॉर्च हाथ में उठाई और लबालब पानी भरे रास्ते को पार करते, राम-राम जपते रामदीन के घर पहुँचे। लुड़को वैद्यजी के पैरों में गिर पड़ी—''महाराज, आपई के हाथ है मेरी लाज, सुहाग जो कुछ भी है।'' वैद्यजी ने रामदीन की नब्ज पकड़ी, वह दर्द से तड़प रहा था। वैद्यजी बोले, ''घबराओ मत रामदीन, भगवान् पर भरोसा रखो। देखो बड़े, एक गोली देता हूँ, उसे तुरंत गाय के गरम दूध के साथ इन्हें पिला दो। रात आराम से कट जाएगी, मगर सबेरे इन्हें शहर के बड़े अस्पताल जरूर ले जाना।'' लुड़को ने फिर वैद्यजी के चरण पकड़ लिये, ''महाराज किरपा करके रातभर आपकी निगरानी रहे तो जनमभर अहसान न भूलूँगी।'' वैद्यजी पीढ़ियों से गाँव के सुख-दुःख के साथी थे। भला मरीज को ऐसा छोड़कर कैसे चले जाते। उन्हें पास ही साफ-सुथरी दरी, रजाई का बिस्तर लगवा दिया और पूरा घर रातभर रतजगा करता रहा। रामदीन की रात आराम से कट गई। सुबह वैद्यजी ने फिर नब्ज पकड़ी और कहा, ''बड़े, इन्हें शहर के बड़े अस्पताल ले जाओ, भगवान् सब ठीक ही करेंगे।'' पानी थम गया था, पड़ोसियों को पता चला, सब सहायता को दौड़ पड़े। आनन-फानन में पटेल ने अपनी घुड़बग्गी बुलवा ली और पूछा, ''बड़े, लुड़को भौजाई, रुपया टका की जरूरत हो तो बताओ, संकोच मत करो।'' बड़े ने कहा, ''पटेल साहब, सब आपकी किरपा है, जरूरत पड़ेगी तो माँग लूँगा।''

चार दिन रामदीन अस्पताल में रहे, तीनों बेटे, लुड़को और पुरा-पड़ोस के पाँच-छह लोग भी सहायता में रहे, मगर रामदीन को बचाया न जा सका। डॉक्टरों ने भी खूब दौड़-भाग की, मगर सब बेकार। गाँव में खबर पहुँची तो हाहाकार मच गया। अच्छा-खासा हट्टा-कट्टा आदमी ऐसे चला गया, जैसे हवा का झोंका। मँझले का बहुत बुरा हाल था। वह कभी मताई से लिपटता, कभी पुरा-पड़ोसियों से पूछता, ''कहाँ गए हमारे दद्दा।'' रात को ही तो कहकर सोये थे, मँझले, तू बहुत सुधर गया, मुझे खुशी है, मन लगाकर लगा रह भाइयों के साथ, तेरा बेड़ा पार हो जाएगा।'' मँझले हृदय विदारक चीत्कार करते, धरती पर लोटते, सिर पटकते, लोग उसे ढाढ़स बँधाते, मगर मँझले मँझले थे। उन्होंने अरथी उठाना मुश्किल कर दी। जैसे-तैसे उन्हें चार लोगों ने पकड़ा, तब जाकर अरथी उठी। पूरा गाँव रामनाम सत्य बोलता अरथी के पीछे और लुड़को के आँगन में गाँवभर की औरतों का हाड़फोड़ रुदन और कंदन।

अंतिम संस्कार तीजा, तेरहवीं, मासिक कढ़ाई बरसी। पूरा साल लुड़किया के घर में शोक। न तीज-त्योहार मने, न कभी किसी के मुँह पर किसी ने हँसी देखी। यहाँ तक कि सबकी हँसी-ठिठोली का केंद्र बना मँझले भी सुन्न-शांत, न किसी से बोलना, न बतियाना, मशीन की तरह लँगडाता-लँगड़ाता भाइयों के साथ काम में जुटा रहता। खेत-खलिहान ढोर-डंगर, घर-परिवार और वह बस। न कोई दोस्त, न साथी, न मंदिर, न चौपाल, न आँगन, न अलाव। काम निबटाकर हारा-थका मताई की गोदी में सिर रखकर समझाता—''मताई, तू फिकर मत कर, बड़े हैं, मैं, छोटे हैं, भौजाई, छोटी बहू चुन्नू-मुन्नू हूँ ललता सब तो है। तू दुःखी मत हो, तुझे राई-रत्तीभर तकलीफ नहीं होने देंगे, बस अकेले में तू रोया मत कर। नाती-नातिन के सिर पर हाथ फेर, आशीष दे, बहुओं पर हुकुम चला, पाँव दबवा, भगवान् को भजन कर।'' माँ उसे कलेजे से लगाकर आँसू ढरकाती—हाँ बेटा, दो दिन में ही तू कितना सयाना-समझदार हो गया रे! बस अब फिकर मत कर, अनरये का साल बीता और मैंने तेरा घर बसाया। इतना सबर किया, कुछ दिन और कर बेटा। तेरा घर बसाकर ही तेरे दद्दा के पास जाऊँगी।''

मँझले उठकर बैठ गए और मताई के मुँह पर हाथ रख दिया, ''न मताई, जाने की बात मत कर। एक तो दद्दा हवा के झोंका की तरह चल दिए, अब तू जाने की बातें कर रही है। न, न मुझे नहीं करना ब्याह। अब क्या करना। दद्दा होते तो बड़े हौंस से मेरी बहू को गहने-गुरिया खरीदते, तुझे लेकर सराफ के यहाँ जाते, बजार से बहू के कपड़े लाते, जगह-जगह रिश्तेदारों को पीली चिट्ठी भिजवाते, मुझे लाड़-प्यार से सजवाते, खुद सजते और ठसक से कहते, आज मेरे मँझले की बारात सजेगी, पुरा-पड़ोसी सब चलना बरात में। तू सजती, ढोलक ठमकती, मंजीरा बजते और बन्ना होते, सात दिन घर-द्वार खुशी से नाचते मेरे संगी-संगाती, बराती सजते, ससुराल में होड़ा हरसी, गारी गीत, बिदाई, हँसी ठिठोली होते। अब न दद्दा, न वे संगी-संगाती, न मेरे मन में ब्याह की हौंस ललक, अब काहे के ब्याह। उमर भी तो हो गई। छोटे के दो मोड़ा-मोड़ी हो गए, बड़े को मोड़ा और मोड़ी दोई हाईस्कूल जाने लगे, अब अच्छा

नहीं लगेगा। लोग कहेंगे, बूढ़ा घोड़ा लाल लगाम। न मताई, अब नहीं करूँगा ब्याह। अब तो तेरे चरणों की सेवा करके गंगा नहाऊँगा और भगवान् से प्रार्थना करूँगा कि हे भगवान्, अगले जन्म में मुझे लगड़ा, लूला, कम अकल मत बनाना और मेरी मताई भी इसे ही बनाना।''

लुड़को ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया, ''नहीं बेटा ऐसी बातें मत कर। अभी तेरी उमर ही क्या है, तूने दुनिया का मौज-मजा देखा कहाँ है, यों बूढ़ों जैसी बातें मत कर।'' कहकर दोनों माँ-बेटे एक-दूसरे के गले लगकर देर तक रोते-रोते सो गए। सबेरे उठकर मँझले ढोरों की सार में घुस गए और उनकी सेवा में लग गए। बड़े, छोटे, भाभी, बहू, बच्चे, मताई सब जाग गए। सूर्य देवता भी अपने नित्य नियम से आसमान में चहलकदमी करते-करते छप्परों से ताक-झाँक करने लगे।

मँझले कलेवा करके गाय भैंस, बैल-बछड़े सब को घेरकर चराने निकल पड़े। बड़े ने कहा, ''मँझले एक चक्कर खेतों पर भी लगा लेना, मुझे जरा देर होगी। आकर गेहूँ में पानी फेरूँगा, छोटे पटवारी साहब के घर काम से जाऊँगा। फिकर मत करना मैं दोपहर तक पहुँच जाऊँगा।'' मँझले 'हओ भैया' कहकर मवेशियों को टिकारते, पुकारते लट्ठ हाथ में ले लँगड़ाते घटे भर में चरोखर पहुँच गए। चरो बेटा मन माफिक चरो। दो-चार चरवाहे और आ गए। राम-राम, श्याम-श्याम हुई। मँझले अपने खेत का दक्षिण से पश्चिम तक चक्कर लगाकर थक गए तो बूढ़े बरगद के नीचे सुस्ताने लगे। थोड़ी दूर पर पहाड़ी क्वारन नदिया उनके पीछे अरकिर बहती। इस गाँव के लोग उस गाँव कम ही जाते थे। दोनों गाँव की सीमा बनाती थी क्वारन। अभी मँझले ने दम लिया ही था कि उनके पीछे क्वारन के किनारे से एक औरत की चीख-पुकार सुनाई दी—''अरे, कोई बचाओ, मेरा मोड़ा बह गया बचाओ।''

मँझले बिजली की तेजी से उठे और पूरा जोर लगाकर पलक झपकते ही नदी कनारे पहुँच गए। ''कहाँ गया लड़का, कहाँ?'' उसकी माँ ने लड़के की काली खोपड़ी डूबते-उतराते दिखा दी। मँझले ने आव देखा न ताव और छलाँग लगा दी उफनती नदिया में। कई चरवाहे किनारे खड़े देखते रहे, मगर क्वारन की तेज धार में कूदने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। आगे बर्री घाट के पहले एक गहरा कुंड था, जिसमें तेज भँवर पड़ती थी। बच्चा उसमें फँस गया था। सब आशा छोड़ चुके थे। मगर मँझले तेज धार में बहते-बहते कुंड में गिरने ही वाले थे कि बच्चे की टाँग उनके हाथ में आ गई। और उन्होंने एक हाथ से तेज धार को काटकर बच्चे को किनारे पर ठेल दिया। बर्री घाट पर लोगों की भीड़ थी। दो-चार नौजवानों ने हिम्मत कर नदी में कूद बच्चे को किनारे पर खींच लिया। मगर मँझले भँवर में ऐसे फँसे, ऐसे फँसे कि पता ही न चला कि कहाँ बिला गए।

लुड़को के घर-मोहल्ला, गाँव, पड़ोस में हाहाकार मच गया। सब दौड़े क्वारन की तरफ, खूब ढूँढ़ा मगर मँझले को न मिलना था, न मिले। जिस माँ का बच्चा डूबने से मँझले ने बचाया था, वह लुड़को के चरणों में गिरकर मँझले को देवता बताकर आशीष रही थी।

क्वारन नदी के किनारे दस-बीस गाँवों में लोग दौड़े, खबर कर दी कि उनके गाँव का लड़का मँझले क्वारन में बहा है, अगर इस गाँव में पार लगे या दिखे तो पठारी गाँव खबर करें। आठ दिन हो गए, मँझले का कहीं कोई पता न चला। लुड़किया के घर का तो पानी ही उतर गया। लोगों ने जैसे-तैसे समझा-बुझाकर लुड़को की बहुओं को तो काम-धंधे से लगा दिया, मगर बूढ़ी मताई पत्थर की अथाई पर सुबह से शाम तक बैठी मँझले की बाट देखती और छाती ठोंककर कहती, ''देख लेना, एक दिन मेरा मँझले जरूर सिर से ऊँचा लट्ठ उठाए, लँगड़ाता-लँगड़ाता दूर से मुझे पुकारता आएगा—मताई, ओ मताई, ले मैं आ गया।'' और वह मैली धोती के छोर से आँसू पोंछने लगती। सब कहते, ''सबर कर लुड़को काकी? सबर कर। मँझले का तो जीवन सफल हो गया, उसने एक घर का चिराग गुल होने से बचाया, एक माँ की गोद उजड़ने नहीं दी। तेरे दूध को नहीं लजाया। उसके साथ तू भी धन्य हो गई।''

१४/८, परी बाजार, शाहजहांनाबाद
भोपाल-४६२००१
दूरभाष : ९४२४४७६२८८

कविता

धनाक्षरी

● सीमा हरि शर्मा

तुम हो केदारनाथ, पूरी करते हो साध,
पाने तेरा आए साथ, अपने भी खो गए।
अनाथों के तुम नाथ, गिरतों के थामे हाथ,
आज कितने अनाथ, तेरे दर हो गए।
बाल, वृद्ध, नर, नारी, देख तेरी लीला न्यारी,
पीड़ा खुद थक हारी, आँसू भी सुखो गए।
तुमसे लिपटकर, हाय प्राण तजकर,
आस्थाओं के यक्ष प्रश्न, निरुत्तर सो गए।

बसता हूँ एकांत में, कैलाश में कैदार में,
मेरी तपस्या में कई, व्यवधान हो गए।
आस्थाओं के धाम सारे, व्यापारिकता से हारे,
तप के शिवाले नाम, धनवान् हो गए।
मन जब हो निष्काम, तभी आते तीर्थ धाम,
तीर्थ अब पर्यटन, का सामान हो गए।
नियम सृष्टि जो तोड़ो, आस्थाओं से मत जोड़ो,
मौन उत्तरों से कैसे, अनजान हो गए।

४०२, ७ डी, रीगल टाउन, अवधपुरी
पिपलानी, बी.एच.ई.एल,
भोपाल-४६२०२२ (म.प्र.)

आलेख

अंग्रेजी के सामने हिंदी : रावण रथी विरथ रघुवीरा

● **जयकुमार जलज**

यह सच्चाई कितनी ही अपमानजनक और पीड़ादायक क्यों न हो, पर अब इसे स्वीकार कर लेना चाहिए कि स्वतंत्र भारत में हिंदी अंग्रेजी से पराजित हो गई है। यही एक काम है, जो हमने अंग्रेजों से कम समय में कर दिखाया। वे इसे २०० साल में नहीं कर सके। हमें ५० साल से भी कम समय लगा। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को नहीं बनाया था। महानगरों के बच्चे भी मातृभाषा में शिक्षा पाते थे। यूनेस्को की मान्यता है कि बच्चा एक अनजान माध्यम की अपेक्षा मातृभाषा के माध्यम में अधिक तेज गति से सीखता है। लेकिन हमारी नीति और सरकार गाँवों की प्राथमिक शालाओं में अंग्रेजी माध्यम लादने की तैयारी में है।

आजादी के बाद देश में दो बड़ी समस्याओं—कश्मीर और राजभाषा को दृढ राजनीतिक इच्छाशक्ति से हल किया जाना था। हमने सकुचाते हुए और डर से हल करना चाहा। पाकिस्तान ने कश्मीर पर कबाइली हमला किया। हमले को नाकाम करती हमारी सेना पूरा कश्मीर खाली करवा पाती, इसके पहले ही हमने संघर्ष विराम कर लिया। संविधान ने हिंदी को राजभाषा घोषित तो १४ सितंबर, १९४९ को ही कर दिया था, लेकिन प्रावधान करवाया गया कि अंग्रेजी अनिश्चित काल तक बनी रहेगी। हिंदी की सक्षमता कौन, कब और कैसे नापेगा, इस बारे में कुछ भी नहीं बताया गया। लीपापोती ने कश्मीर व राजभाषा दोनों समस्याओं को नासूर बना दिया। कश्मीर की समस्या सतह पर है। बाह्य है। दिखती है। राजभाषा की समस्या अंदर की है। दिखती नहीं है। देश की ६५ प्रतिशत से अधिक आबादी की मौलिक प्रतिभा अंग्रेजी के कारण ही दीन व गूँगी बनी रहने को अभिशप्त है। नासूर को चीरा लगाना पड़ता है, पर यह काम काँपते हाथों से न हुआ है और न होगा।

१४ सितंबर, १९४९ को जैसे ही संविधान में हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया गया, देश की बहुत बड़ी आबादी जश्न में डूब गई। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने प्रसन्न भाव से टिप्पणी की, ''हमने जो किया है, उससे ज्यादा अक्लमंदी का फैसला हो ही नहीं सकता था।'' जश्न मनाते लोग यह समझ बैठे कि हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है। राष्ट्रभाषा (नेशनल लैंग्वेज) और राजभाषा (ऑफिशियल लैंग्वेज) के अंतर पर उनका ध्यान ही नहीं गया।

संविधान सभा ने जब यह प्रावधान किया कि अभी १५ साल तक अंग्रेजी ही राजभाषा, यानी सरकारी कामकाज की भाषा बनी रहेगी,

जाने-माने लेखक। अब तक दो कविता संकलन, दो भाषा विज्ञान पर पुस्तकें प्रकाशित एवं कई भारतीय भाषाओं में लेख एवं पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित। संप्रति सेवानिवृत्त प्राध्यापक।

ताकि हिंदी को समर्थ होने का वक्त मिल जाए, तब इसके निहितार्थ और फलितार्थ का अंदाजा भी सदस्यों को नहीं हुआ। इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। भाषा उपयोग से समर्थ बनती है। पैरों को भी चलाया न जाए तो वे कमजोर हो जाते हैं। वाहन को चलाने से ही तो उसे चलाने आता है। लंबे समय तक उसे चलाएँगे नहीं तो उसके चलाने का सामर्थ्य भी कम होता जाएगा और वाहन को भी जंग लग जाएगी। सत्ता के सिंहासन पर बैठा दी गई अंग्रेजी जहाँ ताकतवर होती गई, वहीं हिंदी को कमजोर होते जाना पड़ा। फिलवक्त अंग्रेजी के सामने हिंदी 'रावण रथी विरथ रघुवीरा' की तरह है।

अगर सरकारी कामकाज में अंग्रेजी का प्रयोग तत्काल बंद कर दिया जाता तो हिंदी १०-१५ साल तक जरूर लड़खड़ाती हुई चलती, लेकिन फिर अपनी सहज, स्वतंत्र और मौलिक चाल से चलने लगती। उसे अंग्रेजी का पिछलग्गू और अनुवाद की जड़ भाषा बनकर नहीं रहना पड़ता। वह अपने सधे और स्वाभाविक कदमों से चलते हुए एक प्रौढ़ परिपक्व राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती। उसके पास सिर्फ कागजी प्रमाण-पत्र नहीं, राजभाषा होने का ६५ साल का वास्तविक अनुभव होता।

१९६७ के राजभाषा कानून से तो अंग्रेजी के वास्तविक राजभाषा बनने पर मुहर लग गई। सिद्धांत और संविधान में हिंदी भारत की राजभाषा है, पर उसकी चलती नहीं। चलती अंग्रेजी की है। जिसे संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत की २२ भाषाओं में भी शामिल नहीं किया गया है, उस अंग्रेजी में सरकार के मूल दस्तावेज जारी होते हैं। उन्हें प्रामाणिक होने की मान्यता प्राप्त है। उनके साथ उनके हिंदी अनुवाद नत्थी रहते हैं, पर उनकी मान्यता न होने से उन्हें कोई नहीं पढ़ता। हिंदी अनुवाद लापरवाही और उपेक्षा के शिकार होते हैं। उन्हें बिना पढ़े फाइल कर दिया जाता है। अर्ध सरकारी और गैर-सरकारी

विभागों में भी यही होता है। टेलीफोन की डायरेक्टरी, रेलवे की समय-सारणी आदि पहले अंग्रेजी में आती हैं, बाद में उनका हिंदी संस्करण आता है। हिंदी संस्करण कब आएगा, इसका कोई निश्चित समय नहीं रहता। लोग अंग्रेजी संस्करण खरीद लेते हैं, बाद में आनेवाले हिंदी संस्करण के लिए भला कौन रुका रहेगा? सरकारी और गैर-सरकारी निष्कर्ष निकाल लिया जाता है कि हिंदी संस्करण की बिक्री नगण्य है।

आजादी के तुरंत बाद प्रकाशकों को लगने लगा था कि अब तो भविष्य हिंदी का है। अंग्रेजों ने भी छोटी कक्षाओं में पढ़ाई का माध्यम हिंदी को ही रहने दिया था। इसलिए प्रकाशकों ने जोर-शोर से हिंदी किताबें छापना शुरू किया। कुछ अच्छी किताबें बाजार में आने लगीं। ये सहज हिंदी में थीं। समझ में आती थीं। लेकिन इस बीच सरकारों ने अंग्रेजी में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान को, भले ही अच्छी नीयत से हो, हिंदी में लाने की योजना बना डाली। राशि आवंटित हुई। ग्रंथ अकादमियों ने अनुवाद करवाना शुरू किया। जिन्हें अनुवाद का काम दिया गया, वे अपने विषय के विशेषज्ञ तो थे, पर हिंदी और अनुवाद का अभ्यास उन्हें नहीं था। इस क्षेत्र में उनकी गति प्राय: शून्य थी।

अनुवाद करवानेवाली संस्थाएँ समय-सीमा में अनुवाद चाहती थीं। अनुवादकों में से कुछ ने पारिश्रमिक देते हुए या लिहाज में ही दूसरों से भी अनुवाद करवा लिया। यह भी हुआ कि एक किताब का अनुवाद करवाने में एक से अधिक व्यक्तियों को अलग-अलग पृष्ठ बाँट दिए गए। फिर जिसे जितने पृष्ठ मिले, उसने भी उन्हें दूसरों में वितरित किया। इस तरह अनुवाद का काम ठेके पर हुआ। सरकारें, अकादमियाँ, संस्थाएँ भूल गईं कि ठेके पर नहरें तो बन सकती हैं, नदियाँ नहीं। यहाँ तो नहरें भी नहीं बन पाईं।

अनुवादों की भाषा-शैली में एकरूपता के अभाव की चर्चा और आलोचना हुई तो विषय-विशेषज्ञों के साथ भाषा-विशेषज्ञों को संयुक्त किया गया। भाषा-विशेषज्ञों ने भी वही रास्ता अपनाया, जो अनुवादकों ने अपनाया था। कहीं-कहीं यह नियम भी रहा कि अनुवाद पर अनुवादक और भाषा-विशेषज्ञ का नाम नहीं दिया जाएगा। इससे उन्हें लापरवाही बरतने की पुख्ता छूट मिल गई। जवाबदेही नहीं रही। अपयश का डर नहीं रहा। ऐसे अनुवादों से न विषय की सेवा हुई, न हिंदी की।

पिछले दिनों यू.पी.एस.सी. के सी-सेट प्रश्न पत्र के विरोध की जड़ में उसका हिंदी अनुवाद भी था। टेबलेट कंप्यूटर और स्टील पौधा होगा तो समस्या तो आएगी ही। फिर भी कोई भाषा कठिन शब्दों या पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से उतनी कठिन नहीं होती, जितनी गलत वाक्य-रचना, परसर्गों के यथास्थान गैर-प्रयोग क्रियाओं के लापरवाह प्रयोग, स्रोत, भाषा की प्रकृति को अनुवाद की भाषा पर हावी होने देने से होती है। इन तमाम कारणों ने अनुवाद की जिस हिंदी को प्रस्तुत किया, दुर्भाग्य से उससे यह धारणा बनी कि हिंदी कठिन भाषा है और उसमें ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बनने का माद्दा नहीं है। हिंदी का रथ रोकने के लिए आजादी के पहले से ही प्रयत्न होने लगे थे, एक दुखद लेकिन ताकतवर प्रयत्न यह हुआ कि संस्कृत और उर्दू को हिंदी के बरअक्स खड़ा कर दिया गया। कहा गया कि संस्कृत समर्थ भाषा है। देश को जोड़ती है। देश की हर भाषा में बड़ी संख्या में उसके शब्द सम्मिलित हैं। वह हमारी संस्कृति की भाषा है। उसमें हर तरह का ज्ञान-विज्ञान है। वह एक बड़ी आबादी के धर्म की भाषा भी है। उसमें कालिदास जैसे कवियों का साहित्य है। वह एक पुरानी भाषा है। काश! संस्कृत की पैरवी करनेवालों ने कालिदास के इस कथन पर ध्यान दिया होता कि किसी वस्तु की अच्छाई उसके नए या पुराने होने पर निर्भर नहीं होती। भाषा का बोला जानेवाला रूप ही उसका मूल रूप होता है। वही उसे विकास यानी परिवर्तन की दिशा में आगे ले जाता है। लिखित रूप तो बोले जानेवाले रूप की नकल होता है। वह विकास नहीं करता, बल्कि विकास का विरोधी भी होता है। संस्कृत जब बोली जानेवाली भाषा थी, तब उसने भी विकास किया था। तब उसके विकास की गति बहुत तेज थी। लगभग ५०० साल की अवधि में वह इतनी विकसित अथवा परिवर्तित हुई कि उसके नए रूप को एक स्वतंत्र भाषा प्राकृत नाम दिया गया। फिर प्राकृत को अपभ्रंश और अपभ्रंश को हिंदी नाम दिया गया। यह परिवर्तन संस्कृत भाषा का क्रमिक विकास ही है। हिंदी अपभ्रंश की बेटी, प्राकृत की पोती और संस्कृत की पड़पोती है। संस्कृत आदर की पात्र है, पर विकास में वह पीछे छूट चुकी है।

भाषा का विकास कठिनता से सरलता की ओर होता है। वह जटिलता का केंचुल उतारकर उसे इतिहास के कूड़ेदान में फेंकती हुई आगे बढ़ती है। संस्कृत को अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए तीन लिंग, तीन वचन और आठ विभक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। हिंदी यह काम दो लिंग, दो वचन और तीन विभक्तियों से कर लेती है।

आठ कारकों का भाव प्रकट करने के लिए संस्कृत को कुछ शब्दों के ७२ रूपों तक का सहारा लेना पड़ता है। हिंदी सिर्फ छह रूपों से आठों कारकों का भाव प्रकट कर लेती है। हिंदी में तीन विभक्तियाँ हैं। एकवचन और बहुवचन इन दोनों वचनों में उसके रूप हैं—लड़का-लड़के, लड़के-लड़कों, हे लड़के-हे लड़को। संस्कृत रूपों को रटने का बच्चों का डर अनुचित और अस्वाभाविक नहीं है। हिंदी में परसर्गों का प्रयोग इस समस्या को पैदा ही नहीं होने देता। संस्कृत के विशेषणों को विशेष्य के लिंग और वचन का अनुसरण करना पड़ता है। हिंदी के सिर्फ आकारांत विशेषणों में ऐसा होता है। संस्कृत कृदंतों से विकसित होने के कारण हिंदी क्रियाओं में कर्ता के अनुसार लिंग परिवर्तन की समस्या जरूर है, पर अब उसे इससे भी निजात मिलने को है। लड़कियों की बातचीत में इसके संकेत एकदम साफ हैं—''दीदी, कल आप कॉलेज नहीं चले। आज चलोगे। मोहिनी दीदी तो आए थे।'' अब यह नहीं कहा जाता कि मोहिनी दीदी आई थीं। हम गए थे, हम आए थे, हम आपका इंतजार करते रहे, ऐसा कहा जा रहा है। हम आपका इंतजार करती रहीं, ऐसा नहीं कहा जाता।

संस्कृत द्वारा किया गया हिंदी का प्रतिरोध अधिक दिन नहीं चला। उसमें आक्रामकता भी नहीं थी, लेकिन उर्दू से जो प्रतिरोध करवाया गया, वह लंबे समय तक चला। उसमें आक्रामकता भी थी। इसका

कारण यह था कि इसे राजनीतिक शह मिली हुई थी। अंग्रेजों ने हर स्तर पर, हर क्षेत्र में देश में फूट डालने की कोशिश की थी। शुरू में जहन गिलक्राइस्ट और फोर्ट विलियम कॉलेज, कोलकाता के माध्यम से हिंदी, उर्दू को दो अलग-अलग भाषाएँ माना गया। प्राथमिक शिक्षा के लिए दोनों में अलग-अलग किताबें छापी गईं। उन्हें पढ़नेवाली जातियाँ कौन सी होंगी, यह भी बताया गया। यह एक ऐसा घिनौना खेल था, जो अंतत: इस देश के दो टुकड़े कर गया। हिंदी और उर्दू का डी.एन.ए. एक ही है। दोनों में संरचनात्मक एकता है। लिपि की भिन्नता और शब्द समूह की थोड़ी-बहुत भिन्नता भाषाओं की तुलना करने में निर्णायक नहीं होती। आजादी के पूर्व हिंदी और उर्दू को अलग-अलग बतानेवालों के उद्देश्य व प्रयत्न ही नहीं, समझ भी भाषा वैज्ञानिक नहीं थी। वे तो सिर्फ अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करना चाहते थे। उन्हें सफलता भी मिली। पाकिस्तान बना। वहाँ भी उन्होंने भाषा वैज्ञानिक समझ का परिचय नहीं दिया। उर्दू जो पाकिस्तान में बोली ही नहीं जाती थी, पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा बना दी गई। इसका खामियाजा उन्हें पूर्वी पाकिस्तान खोकर उठाना पड़ा।

उर्दू भारत की भाषा है। भारत की भाषाओं की आठवीं अनुसूची में शामिल है, जिसमें अंग्रेजी शामिल नहीं है। उर्दू की नाल भारत में ही गड़ी है। उसके रिसाले देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर लोकप्रिय हो रहे हैं। अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाश पंडित जैसे दूरदर्शी संपादकों ने बरसों पहले से हिंदी पाठकों को उर्दू से जोड़ रखा है।

हिंदी की संरचनात्मक एकता जितनी उर्दू के साथ है, उतनी उसकी अपनी कई बोलियों के साथ भी नहीं है। यह अकारण नहीं है। हिंदी के पाठक को मीर, फैज, फिराक की भाषा प्राय: जितनी जल्दी समझ में आती है, उतनी मैथिली के विद्यापति, अवधी के जायसी या तुलसी की नहीं। 'साये में धूप' के कवि दुष्यंत की गजलें जितनी हिंदी की हैं, क्या उतनी ही उर्दू की नहीं लगतीं?

बीती सदी के मध्य के कुछ दशकों में हिंदी-उर्दू के बीच जो तलवारें खिंची हुई थीं, वे अब म्यान से निकालकर दूर फेंकी जा चुकी हैं। हिंदी की एम.ए. कक्षाओं में उर्दू साहित्य और उर्दू की एम.ए. कक्षाओं में हिंदी साहित्य पढ़ाया जा रहा है। हिंदी के कवि त्रिलोचन की दृष्टि में तो उर्दू कवि गालिब अपनों से भी ज्यादा अपने हैं, ''गालिब गैर नहीं हैं, अपनों से अपने हैं।''

उर्दू भारत की भाषा है। भारत की भाषाओं की आठवीं अनुसूची में शामिल है, जिसमें अंग्रेजी शामिल नहीं है। उर्दू की नाल भारत में ही गड़ी है। उसके रिसाले देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर लोकप्रिय हो रहे हैं। अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाश पंडित जैसे दूरदर्शी संपादकों ने बरसों पहले से हिंदी पाठकों को उर्दू से जोड़ रखा है।

संस्कृत, उर्दू और तमिल से करवाया गया हिंदी विरोध शांत हुआ तो हिंदी को लगा होगा कि अब उसके अच्छे दिन आ गए। पर अच्छे दिन इतनी जल्दी कहाँ आते हैं? हिंदी के सामने अब अंग्रेजी की शातिर चुनौती है। चालें चुपचाप चली जा रही हैं। उच्च वर्ग और नौकरशाही नहीं चाहती कि सत्ता में जनता को वास्तविक हिस्सेदारी मिले। वह तो चाहती है, जनता मतदान करे और भ्रम में बनी रहे कि वही मालिक है। सत्ता को जनता से भिन्न होना और भिन्न दिखना ही पसंद होता है। सत्ता की भाषा जनता जैसी हुई तो वह काहे की सत्ता? जनता हिंदी बोलती थी। बोलती रही। पर सत्ता की भाषा संस्कृत, फिर फारसी, फिर अंग्रेजी हुई। कई छोटे रजवाड़ों में भी राजकाज की अलग भाषा थी। अंग्रेजी को १९६७ में ही हमने अभयदान दे दिया था कि वह अनिश्चित काल तक हमारे गणतंत्र में राज करती रहे। हमारी सरकारें नर्सरी से लेकर बड़ी कक्षाओं तक छात्रों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाना चाहती हैं। स्नातक कक्षाओं में हिंदी को वैकल्पिक बनाने का खेल शुरू हो चुका है। गाँवों में अंग्रेजी माध्यम के सरकारी स्कूल खोलने की तैयारी है। बच्चों की सारी ऊर्जा अंग्रेजी पढ़ने में खर्च हो रही है। उनके हाथ न अंग्रेजी आएगी और न अन्य विषय। भाषा ज्ञान नहीं होती, ज्ञान तक पहुँचने का माध्यम होती है। व्यक्ति का अधिकार एक भाषा पर होना चाहिए। थोड़ी-थोड़ी गति सब भाषाओं में होने से तो व्यक्ति दुभाषिया बन सकता है, ज्ञानवान नहीं। बिल गेट्स सिर्फ एक भाषा अंग्रेजी जानते हैं।

अंग्रेजी की गुलामी के हमारे संस्कार आज भी सिर उठाते रहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे अंग्रेजी बोलें। हमारी चमड़ी अंग्रेजों जैसी गोरी हो। अपनी इन दोनों इच्छाओं को पूरा करने पर हमारी गाढ़ी कमाई का पैसा पानी की तरह बह रहा है। हम न अंग्रेजी बोल पा रहे हैं और न हमारी चमड़ी गोरी हो पा रही है। पंजाब जैसे उन्नत राज्य में दसवीं में अस्सी हजार बच्चे अंग्रेजी में फेल हुए तो वहाँ शिक्षामंत्री ने शिक्षकों का अंग्रेजी में टेस्ट लिया। सिर्फ एक ही शिक्षक पास हो पाया (दैनिक भास्कर, २६ जून, २०१५)। हम अनुमान लगा सकते हैं कि राजस्थान, म.प्र., बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ आदि में अंग्रेजी की पढ़ाई की क्या स्थिति होगी?

यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि अगर देश की भाषा अंग्रेजी हो जाए तो देश में समृद्धि आ जाएगी। ध्यान देने की बात है कि दुनिया के सबसे समृद्ध देशों में शासन-प्रशासन और शिक्षा वहाँ की मातृभाषा में होती है; जैसे जर्मनी, चीन, फ्रांस आदि। केवल चार देशों की भाषा अंग्रेजी है। वह इसलिए कि अंग्रेजी ही उनकी मातृभाषा है। संसार के सबसे गरीब देशों में से १६ की भाषा उनकी मातृभाषा नहीं, बल्कि अंग्रेजी है। अफ्रीका के राष्ट्रों की भाषा उनकी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी या फ्रांसीसी है। इन राष्ट्रों की बदहाली सारी दुनिया जानती है।

चीन की मंदारिन के बाद हिंदी संसार की सबसे अधिक जनसंख्यावाली भाषा है। वह बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड की राजभाषा है। अंडमान-निकोबार, चंडीगढ़, दादर-नागर हवेली, दमन-

दीव और दिल्ली में उसकी हैसियत राजभाषा की है। भारत के बाहर फिजी में दो अन्य भाषाओं के साथ वह वहाँ की राजभाषा है। अंग्रेजी भक्तों को भला यह कैसे सुहा सकता है कि संख्या बल में ही सही अंग्रेजी, हिंदी से नीचे हो। इसलिए अवधी, बुंदेली, ब्रज, भोजपुरी आदि को वे हिंदी में शामिल नहीं करते। वे इन्हें हिंदी नहीं मानते। दरअसल खड़ीबोली, बुंदेली, भोजपुरी, मालवी, निमाड़ी, मेवाड़ी, ब्रज, अवधी आदि मिलकर ही तो हिंदी है। वे सब हिंदी के मोहल्ले हैं। इब्राहीमपुरा, एम.पी. नगर, अरेरा कॉलोनी, निराला नगर आदि मिलकर ही तो भोपाल है। इन मोहल्लों के बिना भोपाल कहीं होगा? शायद ही किसी देश ने अपनी भाषा को राजभाषा के संवैधानिक सिंहासन पर बैठाकर उसका निरंतर ऐसा अपमान किया हो। राम को १४ साल का वनवास मिला था। हिंदी को अनिश्चितकाल का वनवास दिया गया है। सामाजिक क्षेत्र में अंग्रेजी हमारे पढ़े-लिखे होने का सबूत और हैसियत की भाषा है। और हिंदी? उसे सब बोलते हैं। वह सबकी है। जो सबकी हो, वह विशेष कैसे हो सकती है? इधर एक नया मुहावरा प्रचलित हुआ है। काम बिगड़ने, बेइज्जत करने को हिंदी होना कहा जाने लगा है, 'मेरा तो सारा काम हिंदी हो गया।' 'उसने सबके सामने मेरी हिंदी कर दी।'

एक विषय के रूप में अंग्रेजी पढ़ना अच्छी बात है, पर देश के कामकाज पर, देश के बोलने पर उसे थोपने से काम बिगड़ता है। सन् १९८१ की जनगणना में देश में २ लाख २ हजार ४०० लोगों की प्रथम भाषा अंग्रेजी थी। २००१ में यह संख्या २ लाख २६ हजार ४४९ हो गई। बीस साल में सिर्फ २४ हजार लोग बढ़े। ऐसे में अंग्रेजी के सहारे 'सबका साथ, सबका विकास' कैसे सधेगा?

अंग्रेजी नियुक्ति, पदांकन, पदोन्नति का अघोषित आधार बनी हुई है। हमारा सिनेमा और हमारी किक्रेट खाते हिंदी का हैं और बजाते अंग्रेजी का हैं। हिंदी के धाराप्रवाह भाषण सारे देश में सुने, समझे, सराहे जाते हैं। चुनावों में जीत दिलाते हैं, फिर भी हमारी रट है कि अंग्रेजी देश को जोड़ती है। जब तक दीया तले अँधेरा है, संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता मिलना मुश्किल है। विदेशी राजनयिक भारत में अपनी पद-स्थापना के पूर्व यथासंभव हिंदी सीखकर भारत आते हैं। भारत में उन्हें हिंदी का माहौल गायब मिलता है तो वे हिंदी भूल जाते हैं। विदेशियों को शिकायत है कि वे हिंदी में मेल भेजते हैं, भारत उन्हें अंग्रेजी में उत्तर देता है।

अंग्रेजी नियुक्ति, पदांकन, पदोन्नति का अघोषित आधार बनी हुई है। हमारा सिनेमा और हमारी किक्रेट खाते हिंदी का हैं और बजाते अंग्रेजी का हैं। हिंदी के धाराप्रवाह भाषण सारे देश में सुने, समझे, सराहे जाते हैं। चुनावों में जीत दिलाते हैं, फिर भी हमारी रट है कि अंग्रेजी देश को जोड़ती है। जब तक दीया तले अँधेरा है, संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता मिलना मुश्किल है। विदेशी राजनयिक भारत में अपनी पद-स्थापना के पूर्व यथासंभव हिंदी सीखकर भारत आते हैं। भारत में उन्हें हिंदी का माहौल गायब मिलता है तो वे हिंदी भूल जाते हैं। विदेशियों को शिकायत है कि वे हिंदी में मेल भेजते हैं, भारत उन्हें अंग्रेजी में उत्तर देता है।

हिंदी के साथ उसकी लिपि देवनागरी को भी आलोचना का शिकार होना पड़ा है। भाषा स्वाभाविक होती है, लिपि कृत्रिम। बोलने को बच्चा खुद सीखता है, पर लिखना उसे हाथ पकड़कर सिखाया जाता है। इसलिए भाषा में तो प्रयत्नपूर्वक परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, लिपि में किया जा सकता है। नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन आदि के प्रयत्नों के बाद १९५३ में उत्तर प्रदेश शासन ने भी देवनागरी सुधार का काम किया। उसके कई सुधार स्थायी साबित हुए। वे आज भी प्रचलन में हैं। जैसे अ, ण को ही मान्य किया गया है। इनके दूसरे रूपों को नहीं। कुछ लिपि-चिह्नों की बनावट को बदलकर उन्हें असंदिग्ध बनाया गया है। अब ख, ध, भ ही प्रचलन में हैं। इनके अन्य पुराने रूप अब भुला दिए गए हैं।

देवनागरी में कमियाँ हैं। वह ध्वन्यात्मक नहीं, अक्षरात्मक है। कहीं-कहीं तीन मंजिला इमारत जैसी है। इसकी मात्रा कभी-कभी अपने उच्चारण क्रम में जैसे चंद्रिका में बहुत पहले लगाई जाती है। लेकिन कमियाँ तो संसार की हर लिपि में हैं। रोमन में लिखने के हमारे प्रयत्नों ने हमें कम नुकसान नहीं पहुँचाया है। हमारे शब्दों के न सिर्फ उच्चारण भ्रष्ट हुए हैं, बल्कि अर्थ का अनर्थ भी हुआ है। बुद्ध, कृष्ण, योग, गुप्त, मिश्र, शुक्ल जैसे अकारांत शब्द आकारांत कर दिए गए हैं। मैथिलीशरण गुप्त, द्वारिकाप्रसाद मिश्र, रामचंद्र शुक्ल जैसे कुछ व्यक्ति ही गुप्त, मिश्र, शुक्ल बने रह पाए हैं। कृष्णा का अर्थ कृष्ण नहीं, द्रौपदी होता है। उपन्यासकार चेतन भगत का तर्क है कि रोमन को अपनाने से हिंदी को आधुनिक तकनीक का फायदा मिल जाएगा। यह तो देह को कपड़े के नाप का बनाने का सुझाव है। आधुनिक तकनीक का जन्म पश्चिम में हुआ। स्वभावत: उसकी पहली अभिव्यक्ति रोमन लिपि में हुई। अब इंटरनेट पर अन्य लिपियों और भाषाओं का प्रयोग भी बढ़ रहा है। सन् २००० में इंटरनेट पर ८० प्रतिशत जानकारी अंग्रेजी और रोमन में उपलब्ध होती थी। अब वह प्रतिशत ४० से भी कम है। देवनागरी में टंकण की कई समस्याओं को कंपनियाँ तेजी से सुलझाती जा रही हैं। देवनागरी फोंट्स पर लाखों लोगों के हाथ तेज गति से दौड़ रहे हैं। माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ने माना है कि भारतीय व्यापार का ९५ प्रतिशत अब भी भारतीय भाषाओं और भारतीय लिपियों में हो रहा है। स्पष्ट है कि अंग्रेजी और रोमन लिपि के वर्चस्व की संभावनाएँ सिकुड़ रही हैं। हिंदी के संदर्भ में निराशा धीरे-धीरे छँट रही है। हम जानते हैं कि अंतत: राम की ही विजय हुई थी।

३० इंदिरा नगर, रतलाम-४५७००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४०७१०८७२९

कहानी

कहाँ जाऊँ ?

● अभिराज राजेंद्र मिश्र

‘‘दीदी! अब रहने भी दो। बाकी उलझे बाल रात में ठीक कर देना। चलूँ, पुरवटे के लिए देर हो जाएगी।’’ कसमसाते हुए चंपा बोली।

‘‘ठीक है, ठीक है। रहने देती हूँ। क्या से क्या हो गई है तू? कानपुर में कैसी थी तू?’’ वेदना भरे स्वर में दौलत्ती बोली।

‘‘और तू? मुहल्ले की अंगरेजिन? गोरी होने के तानों और व्यंग्य-बाणों से कान छिल गए थे? दीदी! क्या गाँव में आकर तू नहीं काली पड़ गई है?’’ चंपा दौलत्ती का गाल सहलाते हुए बोली। फिर अचानक उठी और चल पड़ी खेतों की ओर!

चंपा के जाते ही दौलत्ती रोने लगी। जैसे-जैसे अतीत याद आता, दु:ख प्रगाढ़ होता जाता। अंतत: एकांत को निरापद एवं सुरक्षित देख वह फूट-फूटकर रोने लगी। जी भरकर रोई। आज का रोना जाने क्यों उसे अच्छा लगा, क्योंकि अचानक जी हल्का हो गया। छाती पर पत्थर सा बँधा रहता था, मानो किसी ने उसे उतारकर कहीं दूर रख दिया। चारपाई पर पड़ी दौलत्ती को अचानक कानपुर याद आने लगा।

झुल्लाराम इसी गाँव का रहनेवाला था। तब देश में अंग्रेजी राज था। परंतु स्वाधीनता-संग्राम शिखर पर था और १९४२ की क्रांति के बाद तो लगने लगा था कि अब गोरे भारत में टिक नहीं पाएँगे। उन्हीं दिनों बारह साल का झुल्लाराम मिल में काम करनेवाले एक पड़ोसी के साथ कानपुर चला गया था। पढ़ाई के नाम पर वह काँख-काँख कर साफ लिखावट पढ़ तो लेता था, परंतु लिख नहीं सकता था। घर में झुल्ला का छोटा भाई दुखीराम और बहन सुनरी माँ के साथ रह रहे थे। ये लोग गाँव की दलित बस्ती के ही समान मेहनत-मजूरी से गुजर-बसर करते थे।

झुल्लाराम का गाँव छोड़ना उसे सह गया। पहले तो वह दो-चार दुकानों पर छोटा-मोटा काम करता रहा। बाद में उसी कृपालु पड़ोसी के एक मित्र ने उसे अपने ऑफिस में चपरासी बनवा दिया। यहाँ झुल्लाराम को सिखाया हुआ झूठ बोलना पड़ा कि वह पढ़ना-लिखना जानता है। गो कि इस सच्चाई की परीक्षा की नौबत नहीं आई। तथापि भयभीत झुल्लाराम ने अगले ही छह महीनों में लिखना भी सीख लिया। दिन-प्रतिदित उसका ज्ञान और अनुभव परिपक्व होने लगा।

झुल्लाराम तीन साल बाद गाँव लौटा तो बस्ती में हलचल मच गई। अब वह पंद्रह साल का था। दलित बस्ती में पहली बार कोई लड़का साफ-सुथरी वेषभूषा में दिखाई पड़ा। माँ बेटे को देख निहाल हो उठी। चेचक के गहरे दागों से भरे गालवाली सुनरी को भी मानो पर लग गए।

सुपरिचित रचनाकार। संस्कृत में दो विशाल महाकाव्य, सोलह खंडकाव्य, चार गजल-संग्रह, छह कथा-संग्रह, दस एकांकी-संग्रह, चार नवनीत-संग्रह एवं चार नाटक तथा हिंदी में भी पाँच गीत-संग्रह, दो कहानी-संग्रह, एक उपन्यास तथा दर्जनों बालसाहित्य-ग्रंथ प्रकाशित। ‘वाचस्पति’, ‘कालिदास’, ‘कल्पवल्ली’ तथा सर्वश्रेष्ठ महामहिम राष्ट्रपति सम्मान से अलंकृत।

झुल्लाराम सबके लिए छोटी-मोटी चीजें लाया था। सब उसी में अचक-पचक हो रहे थे।

बिरादरी को भी भनक लग गई थी झुल्लाराम के आने की। इसका पहला परिणाम तो यह हुआ कि मामा ने अपने ही गाँव में उसके सात फेरे करवा दिए। झुल्ला का घर बस गया। कुछ दिन घर-गाँव में रहकर वह पत्नी के साथ कानपुर लौटा तो छोटे भाई दुखीराम को भी साथ ले आया। तब से लेकर कथालेखन के कालखंड तक मिल के चपरासी की नौकरी को पैंतीस साल बीत चुके थे। इसी अवधि में झुल्लाराम तीन लड़कियों तथा एक लड़के का बाप बन गया था। दुखीराम को भी उसने एक नौकरी पकड़ा दी थी।

दौलत्ती तथा चंपा पहिलौंठी तथा दूसरे नंबर पर आईं। तीसरे नंबर पर बेटा था—रामदत्त। चौथी पेटपोंछनी बेला रानी से झुल्ला का सृष्टि विस्तार समाप्त हो गया—माता-पिता दोनों को रोगी बनाकर। झुल्ला दमे का शिकार था तो उसकी पत्नी गठिया की। दोनों कच्ची सुर्ती के आदी थे।

झुल्लाराम की गहरी दोस्ती थी मगनलाल पाल से। मगन गड़रिया परिवार का था, परंतु वह हाईस्कूल पास था। अत: वह सीधे क्लर्क नियुक्त हुआ उसी मिल-कार्यालय में, जहाँ झुल्ला चपरासी था। दोनों में धीरे-धीरे परिचय बढ़ा, एक ही कार्यालय में रहने के कारण। साथ आना-जाना, साथ चाय पीना, दोपहरी में मिल-बैठकर टिफिन-बॉक्स खाली करना यह रोज का काम था। जब दोस्ती बढ़ी तो घर आना-जाना भी शुरू हुआ।

मगनलाल ने दौलत्ती को अपने बेटे के लिए पसंद कर लिया। अब झुल्ला के घर में उसका आगमन दौलत्ती के ससुर तथा झुल्ला-दंपती के समधी के तौर पर होने लगा। बड़ों की इसी आवाजाही का फायदा उठाकर नायक-नायिका भी चोरी-छिपे मिलने लगे। मौका पाकर मगन का लड़का दौलत्ती को बाजार में मिल जाता तथा उसे गोलगप्पे-पानीपूरी

का स्वाद चखाता या फिर इड़ली-डोसा खिला देता। इसी बहाने दोनों कुछ खटमिट्ठे स्वाद की बातें भी कर लेते। मगन के बेटे का घरेलू नाम जुगनू था। यों तो पिता का दिया नाम जगन्नाथ था। जगन्नाथ और दौलत्ती परम प्रसन्न थे अपने सुरक्षित एवं मंगलमय भविष्य से। बस प्रतीक्षा थी तो उस घड़ी की, जब दोनों एक हो जाते।

चंपा की बात कुछ और थी। एक तो वह दौलत्ती की तरह निरक्षर नहीं थी, न ही वह बौड़म स्वभाव की थी। साँवली होने के बावजूद उसके अंग-अंग में लावण्य समाया था। हँसती तो अनारदाने जैसी सुडौल दंतपंक्ति मन मोह लेती। चुप रहती तो भी शांत दीपशिखा सी आकर्षण की मंद ज्योति बिखेरती रहती। अभी वह इंटर के प्रथम वर्ष में ही थी, परंतु अपने सहपाठी धीरेंद्र के साथ उसका मन तथा जीवन सदा-सदा के लिए एकाकार हो चुका था।

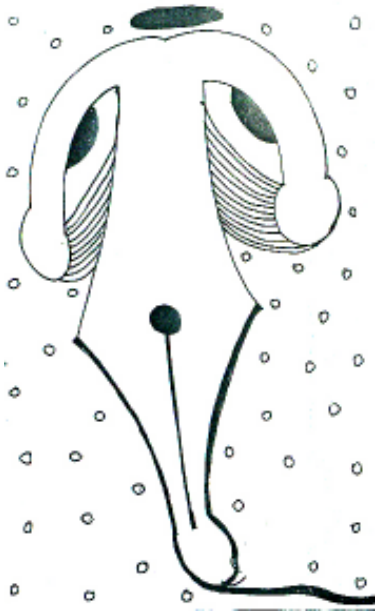

परंतु तभी एक-एक कर दो घटनाएँ घट गईं, जिन्होंने सारे पात्रों को राजपथ से हटाकर पगडंडी पर खड़ा कर दिया।

पहले तो मगनलाल की पत्नी चल बसी। उसे गुरदे की बीमारी थी। सबको लगा कि मगनलाल इस वज्रपात को सहकर कुछ दिनों में प्रकृतिस्थ हो जाएगा। पचपन वर्ष का हो भी तो चुका है। बेटा जवान हो चला है। दौलत्ती से शादी तय है ही। वह आएगी तो उसे आदरपूर्वक दो रोटी तो खिलाएगी ही। जगन्नाथ के स्वार्थांध मन ने भी सोचना प्रारंभ कर दिया कि अब तो बाबूजी स्वयं मेरी शादी में शीघ्रता करेंगे। माँ के बिना खाने की तकलीफ है न!

परंतु मगनलाल के मन में अचानक कुछ और पकने लगा था। वह दौलत्ती को यथाशीघ्र घर में ले आना तो चाहता था, परंतु जगन्नाथ के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए! बस यही नहीं सोच पा रहा था कि इस बदबूदार प्रस्ताव को किस कस्तूरी में लपेटकर झुल्लाराम के सामने रखे। वह यह भी जानता था कि जल्दबाजी में काम चौपट हो जाएगा। हिरन को फँसाना है तो पहले मजबूत जाल बिछाना जरूरी है। फलत: उसने झुल्ला के साथ प्राय: रोज पीना प्रारंभ कर दिया।

ऑफिस से छूटते ही दोनों हडली पर पहुँच जाते और नमकीन चबा-चबाकर देसी ठर्रा पीते। फिर पान की गिलौरी मुँह में दबाए घर आते। प्राय: आते ही झुल्लाराम निढाल हो जाता।

मगनलाल ने शतरंज की चाल चलनी शुरू कर दी। वह सबसे पहले तो अपना घर बसाने के लिए झुल्लाराम का वाचिक समर्थन-अनुमोदन चाहता था। वैद्य जब तक किसी को स्वयं रोगग्रस्त न कहे, उससे दवा क्यों और कैसे माँगी जा सकती है। सो, एक दिन हडली पर ही दोनों का संवाद छिड़ गया।

''मगन भाई! अब ज्यादा मत पियो, नहीं तो खाना नहीं खा पाओगे।'' झुल्ला बोला।

''यह खयाल तुम रखो, जिसे घर पहुँचते ही पकवान मिलेगा। झुल्लाराम! मुझे तो अब सूखी रोटी भी नहीं मिलती।'' मगन ने दैन्य के साथ कहा।

''हाँ, यह बात तो है। भौजाई के जाने के बाद तो आप सचमुच बेसहारा हो गए हो!''

''लेकिन मैं बेसहारा रहना नहीं चाहता। झुल्लाराम! अपने बारे में आप नहीं सोचोगे तो कोई और कभी नहीं सोचेगा। चलो, चलते हैं।'' मगन बोला और उठ पड़ा। नाटक का परदा खुल चुका था। अब बस पात्र अभिनय और कथायात्रा की बारी थी। मगन समय-समय पर झुल्लाराम को उधार पैसा देता रहता था। झुल्ला के बेटे रामदत्त का आई.आई.टी. में प्रवेश मगन ने ही कराया था दसों हजार खर्च कर। झुल्ला ने वादा किया था कि वह यथाशीघ्र कर्ज लौटा देगा। परंतु लौटाता कहाँ से?

तभी इस नाटक में एक 'विष्कंभक' भी जुड़ गया। विष्कंभक कथा सूचित करने का एक उपाय है, जिसके पात्र माध्यम तथा अवर दोनों ही कोटियों के होते हैं। इस विष्कंभक में भी झुल्लाराम और मगनलाल तो निम्नकोटिक पात्र थे। तीसरा पात्र मध्यम वर्ग का था, और वह था एक दंडित अधिकारी, जो निलंबित कर दिया गया किसी अपराध में। न्यायालय में उसके विरुद्ध मुकदमा चल रहा था। अब वह यथाकथिञ्चित् कार्यालय में रखी अपने मुकदमे की फाइल हस्तगत करना चाहता था। क्लर्क यानी मगनलाल को तो उसने पटा लिया था भारी रकम देकर, अब बारी थी चपरासी झुल्लाराम की, जिसके पास ऑफिस की चाबियाँ रहती थीं। अंतत: मगन के सिखाने-पढ़ाने, सब्जबाग दिखाने और नोटों की एक गड्डी पकड़ा देने से झुल्लाराम भी मान गया। मगन और झुल्ला को लगा कि वे कहीं से फँसनेवाले नहीं हैं। परंतु जाँच-पड़ताल शुरू होने पर मामले ने तूल पकड़ लिया। यह सिद्ध हो गया कि फाइल के रख-रखाव की जिम्मेदारी मगनलाल पाल की थी और ऑफिस खोलने-बंद करने का काम केवल झुल्लाराम करता था। यद्यपि दोनों ने औना-पौना बताकर पिंड छुड़ाया, फिर भी मिल के जाँच अधिकारी ने दोनों के विरुद्ध भारी अर्थदंड की संस्तुति की। मुकदमे में अभी भी दोनों की गवाही जिरह-बहस बाकी थी।

मगन और झुल्लाराम का हौली जाना बंद हो गया। मगन तो निश्चिंत था पैसे से मजबूत होने के कारण। दिमाग भी उसका उर्वर और शातिर था। स्वयं को मुक्त करा लेना वह जानता था। परंतु झुल्लाराम पूरा बुड़बक था। वह गहरे पानी में मात्र छटपटाना और डूबकर मर जाना जानता था। मगन को लगा कि अब अपने प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का समय आ गया है। फलत: एक दिन उसने अंगद को झुल्लाराम के पास भेज ही दिया। अंगद यानी मनोहर, जो मगनलाल के ही कैबिन में बैठता था। वह रहता भी था मगन के ही पड़ोस में। दोनों में गहरी बनती थी।

मनोहर भी मगन का कर्जदार था, परंतु वह जानता था कि न मगन कभी पैसा माँगेगा नहीं, वह अपनी ओर से कभी लौटाएगा। हाँ, पैसे के बदले वह मगन की हितपूर्ति कर उसे प्रसन्न रखेगा।

मनोहर को आया देख झुल्ला चौंका! क्योंकि इतनी लंबी नौकरी में यह उसका प्रथम आगमन था, वह भी बिना किसी पूर्व भूमिका के! झुल्ला का चौंकना स्वाभाविक था।

''अरे मनोहर! कहाँ रास्ता भूल गए, भाई? आओ-आओ!'' झुल्ला ने स्वागत के लहजे में कहा।

''दद्दा! रास्ता नहीं भूला। बस इधर की घटनाओं में आपका फँसाव देखकर चिंता हो गई।''

''क्या बताऊँ बंधु! मैं पहले राजी नहीं हो रहा था मगनलाल के प्रस्ताव से, परंतु उन्होंने ढांठी देकर मुझसे यह काम कराया। थोड़े पैसों के लालच में मैं भी बह गया।'' झुल्ला बोला, ''देखो दद्दा! यह सब कर्मदंड है। अब सुंदरकांड की चिंता छोड़ो। सिर पर मँडराते लंकाकांड की फिक्र करो। मैंने तो बहुत लताड़ा मगन को कि तुम तो चतुर-चालाक हो। कुछेक अफसरों से भी तुम्हारी बनती है। अपने को बेदाग बरी करा लोगे कुछ दे-दिवाकर। परंतु झुल्लाराम बेचारा क्या करेगा? चपरासी जो ठहरा। कुंजियाँ उसी के पास रहती हैं। वह तो सीधे जेल जाएगा।''

जेल का नाम सुनते ही झुल्ला के भीतर एक सनसनी सी दौड़ गई। उसकी आँखें भरभरा आईं।

''अच्छी दोस्ती निभाई मगन ने। समधी बनने चले थे मेरे! खूब समधियाना निबाहा!'' झुल्ला ने बुझे स्वर में कहा।

''दद्दा! मैं यही बताने आया हूँ कि वही समधियाना अभी भी तुम्हारे लिए रामबाण सिद्ध हो सकता है?''

''वह कैसे?'' झुल्ला ने पूछा।

''माफ करना यदि बुरा लगे, परंतु मैं अपनी बुद्धि से सोचकर कुछ कह रहा हूँ। देखो, मगन अपना घर बसाने को आतुर है और वह यह काम करके ही छोड़ेगा। पचपन साल की उम्र जवान बेटा···यह सब उसके लिए कोई मायने नहीं रखते। बेटा यदि आड़े आया तो वह उसे भी अपनी चल-अचल संपत्ति से बेदखल कर सकता है। पैसेवाला है, दद्दा क्या नहीं कर सकता? ऐसे में यदि तुम दौलती का ब्याह···।''

''मनोहर! जबान पर लगाम दो! पतोहू को घरवाली बना दूँ? यही कहना चाहते हो न?'' झुल्ला गरजा।

''दद्दा! मैं जानता था, तुम बिफर जाओगे। बात ही ऐसी बेतुकी है। परंतु फिर भी मैंने हिम्मत की कहने की। क्योंकि दौलत्ती को पाकर मगनलाल तुम्हारी सारी विपत्ति यों गटक जाएगा, जैसे भगवान् भोलानाथ ने हलाहल गटक लिया था।''

''परंतु मेरी बेटी, मेरी औरत, कोई भी इसके लिए तैयार नहीं होगा। मैं ही जेल चला जाऊँगा।'' झुल्ला बोला।

''खैर, मैं चलता हूँ। यदि कुछ मन बने तो बताना, मैं तुम्हारी मंशा मगनलाल को बता दूँगा। चलता हूँ!''

''चाय तो पी लो।'' झुल्ला बोला।

''नहीं, आज नहीं, फिर कभी।'' यह कहता मनोहर चल पड़ा। जैसे नकल मारनेवाला परीक्षार्थी रिजल्ट के बारे में आशावान हो जाए, वैसे ही मनोहर भी अपने प्रयत्न की सार्थकता के प्रति आशावान हो गया।

मनोहर के प्रयत्न से अवगत मगनलाल अगली ही संध्या में झुल्ला के घर जा पहुँचा। अनजान होने का अभिनय करता, कुछ इधर-उधर की बात करता रहा। बिना कहे ही घर के भीतर नाश्ता तैयार किया जाने लगा—दौलत्ती का ससुर जो ठहरा। इस बीच दोनों में बातें चलती रहीं, बीच-बीच में खुसफुसाहट भी पैदा हो जाती थी। परंतु जब ट्रे में पोहा, जलेबी और चाय सजाकर दौलत्ती कमरे में आ रही थी कि उसने सुना ''झुल्लाराम! दौलत्ती आएगी तो मेरे ही घर में न! लाखों की मालकिन बनेगी। जुगनू के लिए तो सारा संसार ही है, उसे क्या चिंता? तुम तो बस मेरी बात मानो। बहती गंगा में हाथ धोकर गाँव चले जाओ। यहाँ मैं सब सँभाल लूँगा।'' दौलत्ती ठिठके पाँव सब सुनती रही।

मनोहर के प्रयत्न से अवगत मगनलाल अगली ही संध्या में झुल्ला के घर जा पहुँचा। अनजान होने का अभिनय करता, कुछ इधर-उधर की बात करता रहा। बिना कहे ही घर के भीतर नाश्ता तैयार किया जाने लगा—दौलत्ती का ससुर जो ठहरा। इस बीच दोनों में बातें चलती रहीं, बीच-बीच में खुसफुसाहट भी पैदा हो जाती थी। परंतु जब ट्रे में पोहा, जलेबी और चाय सजाकर दौलत्ती कमरे में आ रही थी कि उसने सुना ''झुल्लाराम! दौलत्ती आएगी तो मेरे ही घर में न! लाखों की मालकिन बनेगी। जुगनू के लिए तो सारा संसार ही है, उसे क्या चिंता? तुम तो बस मेरी बात मानो। बहती गंगा में हाथ धोकर गाँव चले जाओ। यहाँ मैं सब सँभाल लूँगा।'' दौलत्ती ठिठके पाँव सब सुनती रही।

सबकुछ तो समझ में आया, परंतु दौलत्ती आएगी तो मेरे ही घर में न और जुगनू के लिए तो सारा संसार ही है, उसे क्या चिंता? ये दो वाक्य उसके लिए कबीर की उलटवाँसी बन गए।

वह भीतर आई। नाश्ते की ट्रे टेबल पर रखी, मगनलाल का पैर छुआ सदा की तरह और तेजी से भीतर चली गई। अब वह दुपट्टे का छोर मुँह में डाले रो रही थी। समूचे घर में अवसाद छा गया था।

''क्या बात हुई कि दौलत्ती बुरी तरह रो रही है?'' जैसे ही मगन को बिदा कर झुल्ला भीतर आया। पत्नी ने पूछा।

''कुछ तो नहीं। दौलत्ती क्यों रो रही है?''

''बाबू! झूठ मत बोलो। मैं परदे की आड़ में खड़ी तुम दोनों की बातें सुन रही थी। वह कमीना बूढ़ा तुमसे क्या कह रहा था? पहले उसने तुम्हें गलत काम में फँसाया, कर्ज देता रहा और अब जेल जाने से बचाने के बदले मेरा हाथ अपने लिए माँग रहा है।'' पददलित नागिन सी बोली दौलत्ती।

''दीदी की शादी उस बूढ़े से?'' चंपा की चीख सी निकल गई।

''चुप रहो!'' झल्लाहट भरे स्वर में झुल्लाराम चिल्लाया। चोरी पकड़ी गई थी। निकल भागने की कोई गौं भी नहीं बची थी।

''बाबू! चिल्लाने से काम नहीं चलेगा। मैं यहीं तुम्हारे घर में पंखे से झूल जाऊँगी, यदि तुमने इस ओर एक भी कदम बढ़ाया।'' दौलत्ती ने कहा।

चंपा बोली, ''बाबूजी! धीरज से काम लो। तुमने केवल ऑफिस खुला छोड़ा है। यही अपराध है न तुम्हारा? परंतु अलमारी से फाइल तो मगनलाल ने ही दी है, न कि तुमने। फाइल तो उसी के कब्जे में थी, अत: अस्सी प्रतिशत फँसाव तो उसी का है। तुम तो नाममात्र के दोषी हो। डरते क्यों हो? धीरेंद्र के पिताजी भी अच्छे व्यक्ति हैं। उन्होंने बताया है कि यदि आप सरकारी गवाह बन जाएँगे तो मगनलाल सीधे जेल जाएगा। अभी तो आप चुपचाप गाँव चले चलिए। यहाँ रहेंगे तो वह रोज आपको तंग करता रहेगा।''

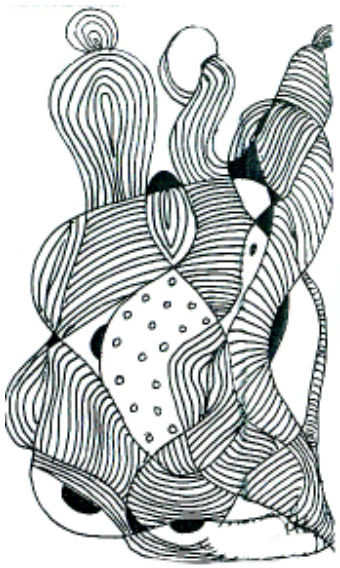

चंपा का रहस्योद्‌भेदन सुनते ही झुल्ला सँभलकर बैठ गया। वह तो आशा की एक किरन के लिये तरस रहा था। परंतु यहाँ तो बदलियों को चीरकर टकटका सूर्योदय हो गया था। अब विलंब क्यों करना?

झुल्लाराम ने रातभर में सामान बाँधा। पौ फटने से पहले ही मकान में ताला लगाया और सपरिवार जौनपुर की बस पर बैठ गया।

गाँव में झुल्लाराम का सपरिवार आ धमकना अनेक किंवदंतियों को जन्म दे गया। इन किंवदंतियों का कोई प्रामाणिक स्रोत नहीं था। बरसाती कीड़ों की तरह ये स्वत: पैदा हो रही थीं। झुल्ला गबन करके आया है, झुल्ला सर्विस से रिटायर होकर गाँव आया है, अब यहीं रहेगा। ये थे किंवदंतियों के कुछेक विकल्प। जितने मुँह, उतनी बातें।

दो-चार महीने तो कट गए साथ लाए पैसों से, परंतु अब भुखमरी की नौबत आ गई। बिना मेहनत-मजूरी के काम कैसे चलेगा? तभी एक शाम मोटकवा घर आया। वह पड़ोस का युवक था। नाम था भागीरथी, परंतु बचपन की मोटाई के कारण दीदी ने उसे मोटकवा कहना शुरू कर दिया था। अब गाँव में यही नाम प्रचलित था।

आते ही उसने चिलम तैयार की। झुल्लाराम को पिलाई, फिर स्वयं कश खींचने लगा।

''और बताओ मोटकऊ बेटा! क्या हालचाल है?'' झुल्लाराम ने पूछा।

''चचा, आजकल पुरवर-घर्रा से फुरसत नहीं है। सवेरे आठ बजे जाता हूँ, शाम पाँच बजे लौटता हूँ। बस रात मिलती है आराम के लिए।''

''क्या मजूरी मिलती है, भैया इस काम में?'' चंपा ने पूछा।

''क्यों? काम करने का मन है क्या?'' मोटकवा ने पूछा।

''काम नहीं करेंगे तो खाएँगे क्या? माँ तो पड़ी ही रहती है। बाबू दमे के मरीज हैं। बाजार से खरीदकर कब तक खाते रहेंगे?''

''तो मेरे साथ काम करो न! इस समय सिंचाई का काम चल रहा है। मैं तुम्हें मोट टेकने में लगा दूँगा। वह बहुत आसान काम है। जब पानी भरा चरस कुएँ की मुँड़ेर पर आ जाए तो उसे अपनी ओर खींचकर पानी ओड़ान में गिराना और चरस को फिर कुएँ में गिरा देना। एक टोकरी रख दूँगा ओडान में, उसी पर बैठी रहना।''

''यह चरस खींचेगा कौन?'' चंपा ने पूछा।

''अरे बाबा, उसे खींचते हैं बैल, जिन्हें हाँकूँगा मैं। यह सब बताने से नहीं, देखने से समझ में आ जाएगा। रही बात मजदूरी की तो एक दिन के लिए दो सेर जौ मिलता है। दस बजे खटमिटाव मिलता है, जिसे आप लोग नाश्ता कहते हो। उसमें चने की घुघुनी या भुना हुआ मक्का मिलता है गुड के साथ। कभी-कभी भैंस का मट्‌ठा भी मिलता है, जिसके घर जैसी व्यवस्था हो। नाश्ता करने के लिए पंद्रह-बीस मिनट की छुट्‌टी मिलती है। दोपहर में दो घंटे पूरी छुट्‌टी रहती है। बैल भी विश्राम करते हैं।''

''तो कल से मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ।'' चंपा बोली।

''ठीक है, मैं साथ ही ले चलूँगा।'' मोटकवा बोला और घर चला गया।

चंपा अगले दिन से ही काम पर जाने लगी। उसे काम अच्छा लगा। कुएँ के सामने, कुएँ की गहराई के ही बराबर एक ढलवा मार्ग बनाया गया था, जिसे पौदर कहते थे, जिसमें चारा खाते थे बैल। कुएँ के दोनों स्तंभों पर वंशदंड (माँझा) स्थापित कर उस पर घुरई-गड़ारी रखी गई थी। इसी गड़ारी के सहारे रस्सी में बँधा चरस कुएँ में जाता और प्राय: दस बाल्टी पानी लेकर पौदर पर चलती बैलों की जोड़ी द्वारा खींचकर बाहर ओडान तक लाया जाता था। ओडान में गिरा यही पानी नालियों के रास्ते खेत तक पहुँचाया जाता।

राष्ट्र अब स्वतंत्र हो गया था। फिर भी गाँव-गिराँव की परंपराएँ अभी पहले जैसी ही थीं, सिंचाई, बुवाई, कटाई, मड़ाई, ओसाई, ईख की पेराई, खेतों की निराई-गोड़ाई, आलू-शकरकंद की मेंढ़ी की चढ़ाई, छप्पर की छवाई, सरपत की कटाई—सभी काम मजदूरों के ही अधीन था। अनुग्राह्य-अनुग्राहक संबंध के बावजूद सारा गाँव-जवार एक सहज प्रेम की डोरी में बँधा था। लोग एक-दूसरे पर आश्रित थे।

मजूरी लेने चंपा जब पंडित घराने गई तो घर की बहुएँ उसका रूप-सौंदर्य देख चौंक उठीं। उसे बड़ा प्यार किया, उसे रोज-रोज घर आने तथा बच्चियों को सिलाई-कढ़ाई सिखाने का आग्रह किया। अभी भी वे नहीं जान सकी थीं कि भाग्य की मारी यह दलित कन्या ग्यारहवीं की छात्रा है। परंतु पंडित परिवार से घुल-मिलकर चंपा का मन प्रेम से सराबोर हो उठा। घर लौटते समय प्राय: घर की बहुएँ चंपा को खाने-पीने की सामग्री तथा शाक-सब्जी दे देती थीं, जो समूचे परिवार के लिए पर्याप्त होता।

आज दोनों बहनें फुरसत में थीं। दौलत्ती के हाथ में चंपा का हाथ

था। वह उसकी नरम हथेली पर उभरे गुल्मों को देख रही थी, जो चरस पकड़ते-पकड़ते उभर आए थे। दौलत्ती अचानक रोने लगी।

''दीदी! क्या हो गया तुझे?'' रो क्यों रही है? चंपा ने प्यार से पूछा।

''चंपा! मेरी रानी! तीन-चार महीनों में ही तू क्या-से-क्या हो गई? यह मेहनत-मजूरी, यह पुरवट-घर्रा? क्या तू यही सब करने लायक थी? परंतु पियक्कड़ बाबू के लोभ के कारण और उस मुए मगनलाल की चाल के कारण हमारे सुख को जमाने की नजर लग गई।'' बुझते स्वर में दौलत्ती ने कहा।

''दीदी! मन छोटा न कर। हाईस्कूल में मैंने सीता और द्रौपदी की कथा पढ़ी थी। दु:ख किसने नहीं भोगा है? परंतु हर दु:ख के बाद सुख ही आता है, जैसे रात के बाद सवेरा! मैं घर को सँभाल रही हूँ न! सिलाई से काफी पैसे मिल जाते हैं। पंडित घराने के लोग बहुत भले हैं।'' चंपा ने कहा।

''पर यह सब कब तक चलेगा?''

''ज्यादा दिन नहीं, दीदी! यह मैं भी जानती हूँ कि इस गाँव में सब भले नहीं हैं। जब अधेड़ उम्र के सुमेर पंडित की लार टपक सकती है तो जवानों की क्या बात?''

''उसने कुछ बदमाशी की क्या?'' दौलत्ती ने पूछा।

''नहीं! मैं उसके बच्चे के साथ खेत में गई शकरकंद खोदने। कुछ देर बाद वह खुद आ धमका। बेटे को तो घर भेज दिया और लगा मुझसे इधर-उधर की बात करने। फिर तीन-चार सेर शकरकंद देकर बोला— चंपारानी! खोदने की मजदूरी तो घर आकर ले लेना। यह शकरकंद तुम्हें अलग से दे रहा हूँ। रोज इतना ले जाना घर! घरवाले भी खाएँगे।''

''अच्छा! मुआ चारा डाल रहा था?'' दौलत्ती बोली।

''हाँ, यह मुझे काम पर क्या ले गया, अपने को मेरा सरदार समझने लगा। पहले तो यह मुझे उदास देखकर चुहलबाजी करता था। कभी गाल में उँगली धँसा देना, कभी पीठ पर थपकी लगा देना। परंतु एक दिन तो उसने हँसाने का बहाना लेकर मेरी छाती में ही उँगलियाँ टिका दीं। मैं छिटककर दूर खड़ी हो गई और फटकारते हुए बोली, ''यह क्या कमीनापन है? तू मेरे बाबू को चचा कहता है तो मैं तेरी बहन हुई कि नहीं? आइंदा यदि मेरी देह छुई तो तेरा बुरा हाल कर दूँगी। बहरहाल, तब से वह सँभल गया। दीदी! मैं तो इस पिंजरे से निकल भागने को तैयार हूँ। बस धीरेंद्र के आने का इंतजार है!''

''चंपा! तू तो अपने धीरेंद्र के साथ चली जाएगी। पर मैं कहाँ जाऊँ? मैं तो ठहरी अँगूठा-छाप। मेरा जगन्नाथ तो शायद जान भी नहीं पाएगा कि मैं कहाँ हूँ। मैं मर जाऊँगी चंपा!'' सुबकती हुई बोली दौलत्ती।

चंपा ने दौलत्ती को बाँहों में भर लिया। प्यार से उसके आँसू पोंछते

''हाँ, यह मुझे काम पर क्या ले गया, अपने को मेरा सरदार समझने लगा। पहले तो यह मुझे उदास देखकर चुहलबाजी करता था। कभी गाल में उँगली धँसा देना, कभी पीठ पर थपकी लगा देना। परंतु एक दिन तो उसने हँसाने का बहाना लेकर मेरी छाती में ही उँगलियाँ टिका दीं। मैं छिटककर दूर खड़ी हो गई और फटकारते हुए बोली, ''यह क्या कमीनापन है? तू मेरे बाबू को चचा कहता है तो मैं तेरी बहन हुई कि नहीं? आइंदा यदि मेरी देह छुई तो तेरा बुरा हाल कर दूँगी। बहरहाल, तब से वह सँभल गया। दीदी! मैं तो इस पिंजरे से निकल भागने को तैयार हूँ। बस धीरेंद्र के आने का इंतजार है!''

बोली, ''दीदी! तू अपनी चंपा को अभी भी समझ नहीं पाई। कैसे सोच लिया कि मैं अकेली चली जाऊँगी धीरेंद्र के साथ? तू पूछती है कि कहाँ जाऊँ? मैं कहती हूँ, तू वहीं जाएगी, जहाँ जाना चाहती थी! यानी जगन्नाथ जीजू के पास! अब तो रोना-धोना छोड़। मुसका तो दे एक बार।''

''चंपा! तेरी पहेली मैं बूझ नहीं पाती। मैं जगन्नाथ के पास कैसे जा सकूँगी, तू ही बता?'' दौलत्ती बोली।

चंपा ने कहा, ''दीदी! न पढ़ पाने का यह सारा कमाल है। तुझे तो यों ठूँस-ठूँसकर समझाना पड़ता है, ''जैसे छिबुनहे बच्चे को खाना खिलाना। अब सुन, मैं कानपुर से आने के बाद से ही धीरेंद्र को सबकुछ बताती रही हूँ। तेरे ससुर मगनलाल का कमीनापन भी मैंने धीरेंद्र को लिख भेजा और जीजा को बता देने को कहा। धीरेंद्र ने जगन्नाथ जीजा से बात कर ली है और वे दोनों अपनी बीवियों यानी हमें-तुम्हें लेने किसी भी समय यहाँ आ सकते हैं। कानपुर पहुँचकर हम लोग बाबू के बारे में उपाय सोचेंगे और सुअवसर देखकर उन्हें कानपुर बुला लेंगे। समझी न मेरी लाडो! अब एक बार फिर पूछा।''

''क्या?'' दौलत्ती होंठ बिचकाती बोली।

''यही कि कहाँ जाऊँ? चंपा! मैं कहाँ जाऊँ?'' दौलत्ती बड़ी नाटकीयता से बोली।

''चंपा! मुझे तो सब सपना लगता है। पर यदि ऐसा हो जाए तो समझो हमारा उद्धार हो गया।''

उसी दिन से दौलत्ती खुश रहने लगी। पाँचवें दिन अचानक शाम तीन बजे दो युवक दलित बस्ती में आए। ये दोनों धीरेंद्र एवं जगन्नाथ थे। धीरेंद्र ने झुल्लाराम को बताया कि कोर्ट में उसके पिता ने यह सिद्ध कर दिया कि फाइल दिन में ही गायब की गई, जब कार्यालय खुला था। अत: चपरासी झुल्लाराम किसी और समय में ऑफिस खोलने का अपराधी नहीं माना जा सकता। उस पर लगा अर्थदंड भी गलत है।

मगनलाल पर फाइल गायब करने का अपराध सिद्ध हो गया स्वयं उसके बयान से। अब वह जेल में है।

झुल्लाराम की आँखों में चमक आ गई। उसका पुन: कानपुर लौटने का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस कथा का शेष कथ्य-तथ्य चंपा और दौलत्ती की आँखों में था, जिसे पाठक बिना बताए पढ़ चुके होंगे।

सनराइज विला टावर
(निकट उ.मा. विद्यालय)
लोअर समर हिल, शिमला-१७१००५
दूरभाष : ०९४१८०४१५३७

सपनों का प्रतीकात्मक अर्थ

● राहुल

प्रतीक एक ऐसी प्रेषण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रस्तुत सत्य के आधार पर किसी समतुल्य अप्रस्तुत सत्य का भाव संप्रेषण अथवा प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रतीक स्वयं में अपना एक व्यापक अर्थ लिये होता है। प्रतीक कविता में एक नई अर्थवत्ता का बोध कराते हैं और भाषण में एक नई शक्ति आ जाती है। किंतु स्वप्न में ये किस भाव का संप्रेक्षण करते हैं या व्यापकता को निहित किए रहते हैं, इसका विश्लेषण निहायत जरूरी है। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि स्वप्न क्या प्रतीक हैं या किसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लिये हुए व्यक्ति अचेतन अवस्था में प्रस्तुत होते हैं। अरस्तू जैसे महान् चिंतक स्वप्न को भूत-भविष्य का निर्धारक मानते हैं। जब भावना और सत्ता के समन्वय से प्रतीक का जन्म होता है।

विश्व के विलक्षण स्वप्नदृष्टा सिगमंड फ्रायड ने २४ जुलाई, १८९५ की रात एक जीवंत सपना देखा कि वह बहुत बड़ी दावत दे रहे हैं। उस विशाल दावत में उनकी एक मरीज भी थी, जो उनसे बात कर रही थी, मेरी तबीयत के बारे में जितना आप जनते हैं, मैं कहीं उससे ज्यादा बीमार हूँ। नींद खुलने पर उन्होंने वह पूरा स्वप्न अपनी डायरी में दर्ज कर लिया और फिर इसे इंगित विवरणों का अध्ययन, चिंतन, मनन करना शुरू किया तथा लग गए इस स्वप्न का गोपनीय रहस्यमय अर्थ अभिप्राय ढूँढ़ने। कुछ दिनों के बाद उन्हें लगा कि उन्होंने उस स्वप्न का अर्थ ढूँढ़ लिया। शायद उनके मन की सुप्त इच्छाएँ स्वप्न में उनके सामने प्रकट हो गई थीं। मसलन उनकी मनोचिकित्सक शिष्या, जो बीमार थी, और अधिक रुग्णता की स्थिति में पहुँच गई थी। कहने का तात्पर्य है कि स्वप्न कभी-कभी यथार्थ की सूचना भी दे देते हैं और कभी भावी घटनाओं से सचेत भी करते हैं। मेरे लिए स्वप्न भावी घटनाओं के सूचक हैं।

सपने आज अध्ययन का एक खास विषय बन गए हैं। पश्चिमी देशों में इस पर काफी खोजकार्य चल रहा है, आखिर हम सपने क्यों देखते हैं? प्रयोगशालाओं से लेकर आदमी के निद्राकक्षों तक उसके प्रति जागृति पैदा हो गई है, चर्चाएँ हो रही हैं।

सत्रहवीं सदी में फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक रेने विसकार्त्ते ने स्वप्न के संबंध में अपने तर्क पेश किए थे कि बुद्धि सदैव सोचती रहती है, जो अर्धचेतन या अवचेतन अवस्था में दिखाई देता है। किंतु लॉक इस मत के विरुद्ध थे। यदि विसकार्त्ते की बात मान ली जाए कि रात में जो कुछ सपना देखा जाता है, वह एक निश्चित विचार, चिंतन, मनन का परिणाम है। जबकि लॉक का मत इसके विरुद्ध था। यदि विसकार्त्ते की बात मान ली जाए कि रात में जो सपने देखे जाते हैं, वे निश्चित विचार, चिंतन तथा मनन के परिणाम होते हैं, तब लॉक का कथन कि जब शरीर सो रहा होता है, आत्मा विचार-निमग्न होती है और ज्यों ही नींद खुलती है, सुप्तावस्था में सोची हुई बातें भुला जाती हैं। मेरा मानना है कि सभी स्वप्न भूलते हैं, कुछ सपने नींद के बाद भी याद रहते हैं। स्वप्न प्राय: तब दिखाई देते हैं, जब व्यक्ति सुप्तावस्था या अर्धचेतन, अवचेतन अवस्थाओं में होता है। यानी दिन में मन-मस्तिष्क में कुछ विचार अपूर्ण से रह जाते हैं या जो भविष्य के लिए परियोजित होते हैं, वे स्वप्न में जीवंत हो उठते हैं। इसका तात्पर्य है कि आत्मा और शरीर दोनों मिलकर 'चिंतन' का कार्य करते हैं।

प्रसिद्ध विचारक मनीषी लॉक के उक्त मत से असहमति जताते हुए लिस्नज ने कहा, ''हर व्यक्ति की अपनी अलग सत्ता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न है, दोनों का स्वभाव, विचार, विश्वास, सभी कुछ अलग हैं, इसलिए सुप्तावस्था में जब व्यक्ति अकेले होता है, वह एकदम अलग बात सोचता है, इसलिए स्वप्न की बातें सभी व्यक्तियों के लिए प्रतीक नहीं हो सकतीं, परंतु 'चिंतन' चेतन रूप में प्रकट हो सकता है, जिसे स्वप्न कह सकते हैं।''

दार्शनिक हीगल और कांट भी स्वप्न में सोच को आकार ग्रहण करने के साथ को स्वीकारते हैं, नींद में भूल की संभावनाएँ अधिक होते हुए भी सही बातें सोच सकने की संभावना है। दार्शनिक कांट की बात बड़ी निराली है। वे कहते थे, 'बिना स्वप्न के आदमी सो नहीं सकता।

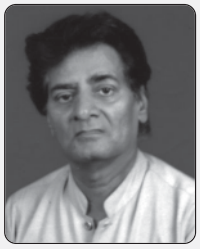

जाने-माने आलोचक-कवि। 'प्रजातंत्र, कहीं अंत नहीं', 'जंगल होता शहर', 'महानायक सुभाष', (कविता-संग्रह), 'युगांत' (प्रबंध काव्य) चर्चित; संपादित कृतियों में 'बीसवीं सदी : हिंदी के मानक निबंध (४ भाग)', 'बीसवीं सदी : हिंदी के मानक निबंध (२ भाग), (आलोचना) 'विपक्ष का कवि : धूमिल', 'गिरिजा कुमार माथुर', 'काव्य दृष्टि और अभियोजना', 'शमशेर और उनकी कविता', दर्जन भर बाल-साहित्य और राजभाषा हिंदी से संबंधित पुस्तकें भी। हिंदी अकादेमी एवं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

स्वप्न सोने की क्रिया का एक अंगमात्र है।' (Anthropoligie...KANT)

होमर ने स्वप्न को 'विलक्षण, अग्राह्य' कहकर छोड़ दिया था, उस पर विश्व के अनेक वैज्ञानिक विचार कर रहे हैं। स्वप्न शोधकर्ता सपनों के वैज्ञानिक विकास के बारे में जानकारी के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में संदर्भ ढूँढ़ते हैं और उन संदर्भों के तथ्यों-तर्कों को कसौटी पर परखने का प्रयास करते हैं। 'स्वप्न प्रतीकों की भाषा प्राय: रहस्यमयी होती है। स्वप्न हमारे अनुभवों का व्यापक और जरूरी हिस्सा हैं। स्वप्न निष्कारण और अर्थहीन नहीं होते। उनका निश्चित ही कोई अर्थ और लक्ष्य होता है। चूँकि स्वप्न की उत्पत्ति में शारीरिक उत्तेजकों का हाथ रहता है, अत: इन्हें मस्तिष्क का नींद के समय का जीवन कह सकते हैं, ऐसा जीवन जो हमारे जाग्रत् जीवन से समानता रखता है। इनमें हमारी आंतरिक इच्छाएँ प्रतीकात्मक रूप में प्रकट होती हैं।' *(लंबी कविताओं की नाभि कृति : 'अग्निहोत्र सपनों' में, डॉ. राहुल, पृ. १४१)* कवि जीवन प्रकाश जोशी स्वप्न में ही अग्निहोत्र करते हैं। यह जीवन का कितना बड़ा सच/स्वप्न है।' यह कविता चेतन अनुभवों की वस्तुनिष्ठता को जन्म, मृत्यु, प्रेम, मातृत्व, परिवर्तन, रूपांतरण, भयावह, आपत्ति, अनर्थ या विध्वंस संकट, उतार-चढ़ाव आदि आद्य-रूपों में व्यक्त करती है। ये सारे आद्य अनुभव प्रतीकों-मिथों से जुड़कर अनुभवों को सुरक्षा का भाव प्रदान करते हैं। (*'अग्निहोत्र सपनों में'*, का संरचनात्मक अनुशीलन/ *डॉ. विजया, पृ. ९७)* यों ये सभी प्रतीक आर्केटाइप स्वर के हैं। स्वप्न तो सभी देखते हैं, लेकिन अमीरों के स्वप्न भी स्वर्णिम और गरीबों के सपने दीनता के होते हैं।

स्वप्न पर अनेक आर्टिकल्स और पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें स्वप्न के कारणों, प्रकारों, देखे स्वप्नों के समय का फल, शुभ-अशुभ स्वप्न पर गहराई से विवेचन किया गया है। सेन फ्रांसिस्को के पास स्वप्न-पुस्तकों का एक पुस्तकालय है, स्वप्नों पर आधारित चित्रशालाएँ हैं, असंख्य स्टीकर वहाँ औषधिशास्त्र व्यवसायी की अँधेरी गुफाओं में बंद रहने के कारण जो अज्ञात थे, अब बाहर आ गए हैं। जुंगियन सिद्धांतवादी राबर्ट बोसनक कहते हैं, 'हर आदमी के लिए स्वप्न देखना जरूरी है।'

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

यथा स्वप्नं भयं शोकं विषादं भयमेव च।

न विभुन्वति दुर्मेधा धृति: सापार्थ तामसी॥ (१८/३५)

अर्थात् निद्रा, स्वप्न, आलस्य, प्रमाद ये तमोगुण की अधिकता होने पर होते हैं। तम ही अज्ञान का कारण है, जिसपर तमोगुण आ जाए, वह तामस स्वभाव का हो जाता है। पतंजलि ने निद्रा को मन की एक वृत्ति माना है, 'अभाव प्रत्ययात्लवम्बना वृत्तिर्निद्रा।' *(यो.सू. १/१०)* ज्ञान के अभाव की यह प्रतीति जिस भावना से हो रही होती है, उस चित्तवृत्ति का नाम निद्रा है। कुछ विद्वान इसे चित्त की वृत्ति मानकर स्वप्न 'सुषुप्ति मन की अवस्था' विशेष मानते हैं। निद्रा की पूर्व अवस्था तंद्रा तथा निद्रा की प्रगाढ़ अवस्था सुषुप्ति होती है। निद्रा अवस्था में ही स्वप्न दिखाई देते हैं। कभी-कभी स्वप्नावस्था में जब कदाचित् स्वाप्तिक वृत्ति प्रभाव डाल देती है तो स्वप्न सार्थक भी हो जाते हैं। कभी-कभार चित्त पूर्वजन्म के संस्कारों को अहंकार द्वारा खींच लेता है। स्वप्न में उथल-पुथल मचती है। यह संस्कार भी स्वप्न रूप में उभर आता है। बहुत से स्वप्न ऐसे होते हैं, जो दिनचर्या के कारण मन में बसे रहते हैं, पर प्रस्तुत नहीं हो पाते, वे ही स्वप्न रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे सपनों में कुछ निरर्थक व कुछ सार्थक होते हैं। चरक में महर्षि अग्निवेश लिखते हैं—

सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरमस्तदा।

विषयेभ्यस्तदा स्वप्ने नानारूप प्रपश्यति॥ *(अष्टांग सं. २-९)*

यानी जब सब इंद्रिया उपरत (विषयों से निवृत्त) हो जाती हैं, परंतु मन नहीं हो चुका होता, तो वह नाना प्रकार के स्वप्न देखता है। स्वप्न देखने के अनेकश: कारण हैं—

१. श्रुत : सुना हुआ का स्वप्न में आ जाना।
२. दृष्ट : जिसे हम जाग्रत् अवस्था में प्रत्यक्षत: देख चुके हों।
३. अनुभूत : जिसका हमने कभी अनुभव किया हो।
४. प्रार्थित : जो इच्छित हो।
५. कल्पित : जिस विषय की कल्पना की हो।
६. भाविक : जो शुभ-अशुभ फल से भविष्य की चेतावनी देते हैं।
७. दोषज : जो वात, पित्त, कफ दोषों या रोगों के कारण हों।

इनके अतिरिक्त कुछ दारुण स्वप्न भी होते हैं, जो मृत्यु अवस्था के पूर्व आते हैं, उस समय मनोवह स्रोत त्रिदोष से परिपूर्ण होते हैं।

कुछ लोगों का विश्वास है कि सपने सदियों से हमें झूठे दिलासा देते आ रहे हैं। सपने सच नहीं होते। फ्रायड के पैदा होने से ४००० वर्ष पूर्व मिस्र के पुजारियों ने स्वप्नों की व्याख्या करने का प्रयास किया था, किंतु वे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए। अरस्तू ने तब कथा था—'यह एक सचेत करनेवाली अवस्था है (वार्निंग सिस्टम)।' आज का अध्ययन ऐसा दावा न करे, लेकिन देश-विदेश में सर्वत्र सपनों के प्रति जागृति है। बहुतेरे लोग स्वप्न देखकर अपने दैनिक कार्यक्रमों में बदलाव कर लेते हैं।

स्वयं द्वारा देखे गए सपनों का जिक्र मैं आगे करूँगा। यहाँ यह बतला देना जरूरी है कि जो लोग स्वप्न को किसी होनेवाली घटना या परिस्थिति का प्रतीक (सूचक) मानते हैं, उनके इस विश्वास के साथ 'अंधविश्वास' का भी मेल कहा जा सकता है कि जिस चीज की जानकारी न हो, उसके प्रति विश्वास बनता है, वह या तो विगत अनुभव के आधार पर या धार्मिक भावनावश होता है। धर्म बहुत व्यापक शब्द है। यहाँ मैं धर्म शब्द की व्याख्या न कर प्रसंग से जुड़कर कहना चाहूँगा कि धार्मिक भावनाएँ हमें आस्था से जोड़ती हैं। आश्वस्त करती हैं। धर्म की शक्ति सत्य है और यही असली शक्ति है। मन निर्मल होने से सोच भी निर्मल होती है। धर्म तर्क का नहीं, आत्मा का विषय है।

कहते हैं, एक बार एक अमरीकी जज ने स्वप्न देखा कि उसने अपनी पत्नी की हत्या कर दी है और कुछ दिनों बाद वाकई किसी ने उसकी पत्नी की हत्या कर दी। स्वप्न के बारे में मैंने अनेक व्यक्तियों से

चर्चा की। उनके देखे स्वप्नों के बारे में सुना, अपने देखे सपनों के बारे में भी उन्हें बताया। अनेक व्यक्ति प्रतिदिन स्वप्न में एक-दूसरे को मारते पीटते हैं, भागते हैं, झगड़ते हैं, परंतु उनका इरादा ऐसा कुछ भी नहीं होता, फिर उन्हें ऐसे आपराधिक सपने क्यों दिखाई देते हैं? ये आपराधिक मनोवृत्तियाँ प्राय: व्यक्ति के मन में दबी रहती हैं। वे स्वभावत: वैसा नहीं कर पाते, लेकिन स्वाभिमान का भाव उन्हें बेचैन किए रहता है, जो किसी क्रिया की प्रतिक्रिया स्वरूप उभर आता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि ऐसे देखे सपने बिल्कुल अर्थहीन होते हैं, कदापि नहीं। हाँ, कुछ सपने निरर्थक हो सकते हैं, किंतु कई सपने दूर-दराज के क्षेत्रों, संबंधों, सरोकारों में घटित होते मिल जाते हैं।

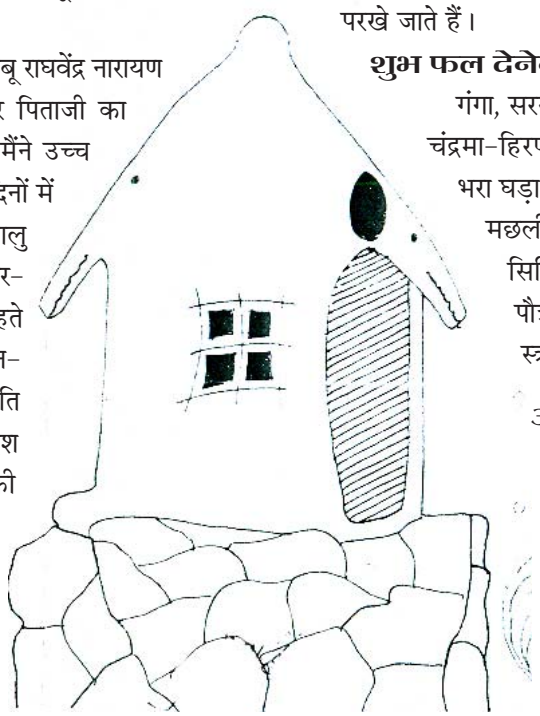

महाकवि जयशंकर प्रसाद के पड़ोस में बाबू राघवेंद्र नारायण सिंह, जो काफी धनाढ्य जमींदार थे, से मेरे पिताजी का पारिवारिक संबंध था। उन्हीं के यहाँ रहकर मैंने उच्च शिक्षा हासिल की थी। आर्थिक विपन्नता के दिनों में भी वे पिताजी की मदद करते रहे। बड़े दयालु प्रकृति के थे। साठ-सत्तर कारिंदे थे। घरेलू नौकर-चाकर दिनभर उनकी सेवा शुश्रूषा में लगे रहते थे। काशी के जिला कलेक्टर भी उनका मान-सम्मान करते थे। केंद्रीय रेलमंत्री पं. कमलापति त्रिपाठी का भी उनके यहाँ आना-जाना था। प्रदेश के विधायक श्री ऋषि नारायण शास्त्री उनकी कोठी पर ही अकसर रहते थे। मेरे पिता श्री राजाराम श्रीवास्तव की बीमारी के दौरान बाबू साहब ने इलाज का सारा खर्च वहन किया था। सन् १९७७ के जाड़े में मैंने स्वप्न देखा कि बाबू साहब का देहावसान हो गया। सुबह होते ही मैं भावुक हो रो पड़ा। फिर दोपहर में घर पर एक पत्र लिखा, जिसमें सारी बातें लिखीं। दो सप्ताह बड़े बाबू राधेमोहन श्रीवास्तव का पत्र आया कि बाबू साहब की मृत्यु दो सप्ताह पहले ही हो गई। तुम्हारा स्वप्न बिल्कुल सही रहा।

अनेकश: देखे स्वप्न मुझे अब भी याद हैं, परंतु उनमें से एक-दो का ही जिक्र मुनासिब होगा। ७ मई, २०१० की रात के अंतिम पहर में देखा कि मेरी दादी सफेद साड़ी पहने कहीं से आ रही हैं। घर में जाती हैं, फिर हम बच्चों को बुलाती हैं। मेरी आँख खुल जाती है। आशंका से मेरा मन विचलित हो गया। अपशगुन भरा स्वप्न था, क्योंकि सफेद वस्त्र में किसी को देखना 'मृत्यु' का सूचक है। ८ मई को फोन आया कि माँ की तबीयत बहुत खराब है। हमने अपना आरक्षण कराया १० मई को इलाहाबाद जाने का। प्रयागराज एक्सप्रेस से हम चल दिए। सुबह साढ़े चार बजे दुबारा छोटे भाई का फोन आया कि माँ की मृत्यु रात में ही हो गई। हम बिलख पड़े। माँ का पूरा जीवन आँखों के सामने चलचित्र सा घूम गया। उफ, सपने भी कितने सच होते हैं!

कभी-कभी सपने इतने प्रभावी, इतने अंतरंग और विलक्षण होते हैं कि मैं अवाक् रह जाता हूँ। कई सगे-संबंधियों, नाते-रिश्तेदारों और इष्ट मित्रों के देह-त्याग से पूर्व शादी-ब्याह, दक्षिण दिशा में यात्रा, मृत्यु पूर्व (माँ) व्यक्तियों (उनकी आत्माओं) को स्वप्न में दिखने भर से मुझे किसी अनहोनी का आभास हो जाता है। अभद्र स्वप्न देखकर मैं परिवारजनों को भी सचेत सतर्क कर देता हूँ। और स्वप्नानुसार दो-चार दिन में कहीं-न-कहीं कुछ शुभ-अशुभ समाचार सुनने को मिल ही जाता है। कभी-कभार सपने इतने डरावने होते हैं कि मन भूत-प्रेत, किसी तरह के आतंक, भय अर्थात् रोमांचित कर देते हैं। रात में अँधेरे कमरे में जाना हो तो दहशत बैठ जाती है। ऐसे सपने अकसर सुनी-सुनाई बातों पर परखे जाते हैं।

शुभ फल देनेवाले

गंगा, सरस्वती नदी, विष्णु, शंकर-पार्वती, राधा-कृष्ण, चंद्रमा-हिरण, तोता, फलदार वृक्ष, सूर्य, वणिक, गरुड, भरा घड़ा, धर्मराज, लक्ष्मी, राम-लक्ष्मण, कोयल, मोर, मछली, शंख, सर्प, गाय आदि देखना कार्य की सिद्धि, शत्रु का नाश, मनोकामना की पूर्ति, पुत्र-पौत्र लाभ, संतान-सुख, यश का लाभ, विजय, स्त्री-सुख, यात्रा में सफलता के सूचक हैं।

अशुभफल सूचक

हनुमानजी, शूकर (सुअर), कुत्ता, मित्र, लाल पक्षी, मृत्यु (यमदूत); सूना मंदिर, कुश्ती, गधा, ठेला गाड़ी, अंधा व्यक्ति, दारती, मुरगा, चंचला स्त्री, चोर, तस्कर, सियार, बिल्ली आदि का स्वप्न में दर्शन आदि अशुभ फल देनेवाले हैं।

इसी प्रकार निम्नांकित वस्तुओं को स्वप्न में देखने से शुभ की सूचना या चिह्न मिलते हैं—शिवलिंग, सूर्य, चंद्रमा का प्रकाश, श्वान, पानी में, समुद्र में तैरना, युद्ध में जय, अग्नि का पूजन, रथ पर चढ़ना, माला, मुकुट पहनना, सारस पर सवारी करना आदि। इनमें से किसी का भी स्वप्न प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भूमि का लाभ देता है।

प्रतीक शास्त्र में जो स्वप्न-प्रतीक दिए गए हैं, उसके अनुसार बैल, हाथी, मंदिर, वृक्ष या नौका पर चढ़ना, किसी को हाथ में वीणा लिये हुए देखना, भोजन करते हुए, रोते हुए दिखाई पड़े तो एक-डेढ़ सप्ताह के भीतर निश्चित ही अर्थ-लाभ होता है। यदि स्वप्न में बिष्टा (मल) देखें, रक्त देखें, हाथी, राजा, सुवर्ण या टूटा सींग देखें तो कुटुंब की वृद्धि होती है। यदि सागर में तैरता हुआ देखें या अपने से नीचे वंश में जन्म लेता हुआ देखें तो वह राजा होता है। स्वप्न में मनुष्य का मांस भक्षण करते देखें तो—

१. पैर खाते हुए—मणि लाभ हो।
२. बाहु खाते हुए—हजार मणि प्राप्त हों।
३. सिर खाते हुए—राज्य प्राप्त।
४. स्वप्न में जूता देखें—कहीं यात्रा करनी पड़े।

५. नौका पर चढ़े नदी पार करें—प्रवास।

६. दाँत या केश उखड़ जाए—धन हानि, रोग-व्याधि आदि।

बृहस्पति कृत 'स्वप्नाध्याय' में स्वप्न देखने के समय का विधान और फल इस प्रकार वर्णित है—रात्रि बारह बजे के पूर्व स्वप्न अल्प फलवाले होते हैं। स्वप्न देखने के बाद यदि निद्रा न आए तो उस स्वप्न का फल मिल जाता है। पुन: शयन के बाद यदि शुभ या अशुभ स्वप्न आए तो पूर्व स्वप्न का फल बाधित हो जाता है। अशुभ स्वप्न रात्रि के अंतिम पहर में दिखे तो उसका उपाय शीघ्र कर लेना चाहिए। महामृत्युंजय मंत्र पाठ, शिव-आराधना मंगलकारी है।

बाणभट्ट ने अपने उपन्यास 'कादंबरी' में लिखा है, 'निशावसान दृष्टा स्वप्ना अवितथ फलाश्च भवेत।' अर्थात् रात्रि के अंतिम पहर में देखे स्वप्न निश्चित फलवाले होते हैं। यदि रात्रि के द्वितीय पहर में स्वप्न देखें तो छह महीने में फल मिलेगा। रात्रि के तीसरे पहर का तीन महीने में और अरुणोदय के समय देखने से दस दिन के भीतर फल प्राप्त होगा। ये स्वप्न अशुभ फलवाले माने गए हैं—

सोना, रुपया, लालपट या गेरुआ हो प्राप्त।
गंध कूप, श्मशान पर, भोजन करें समाप्त॥
नृत्य करें पिशाच संग, हँसे मशाल ले हाथ।
सिर मुंडन, जंगल घुमैं, करें प्रेत का साथ॥
मालिश कर जल में डूबैं, देखें काला सर्प।
बैठ गधे, घृतपाण से, करो नहीं मन दर्प॥
जूते गायब होते ही, बुझता जीवन दीप।
चिरजीवी विभूतियाँ भी हों, मृत्यु समीप॥

यही नहीं, स्वप्न भविष्यवाणी भी करता है—

१. यदि आप स्वप्न में भोजन, घृत, तेल दर्शन करते हैं तो मधुमेह रोग होनेवाला है।

२. यदि बरसात में भीग रहे हैं या समुद्र, नदी, तालाब आदि जल के स्वप्न देख रहे हैं तो समझो कफ, पित्त रोग होनेवाला है।

३. यदि अंगारे, जलती चीजें या आग देख रहे हैं तो चर्मरोग अवश्यंभावी है।

४. आँधी-तूफान के स्वप्न देखने से वात रोग होता है।

५. स्वप्न में काँटेदार वस्तुएँ, अस्त्र-शस्त्र छाती पर रखे देख रहे हैं तो कैंसर (विद्रधि) हो सकता है।

६. भूत-प्रेत के साथ नृत्य करने से उन्माद रोग हो जाता है।

७. स्वप्न में काला सर्प देखने से कुछ-न-कुछ हानि की संभावना होती है।

८. बदन पर मक्खी बैठे देखने से प्रमेह रोग होगा।

रामचरितमानस के सुंदरकांड में लंका की अशोक वाटिका में रह रही सीता को त्रिजटा राक्षसी का स्वप्न-वर्णन आया है। वह स्वप्न फल कितना यथार्थपरक है, देखिए—

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन बिवेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सतीहि सेइ करहु हित अपना॥
सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दसतीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिशि जाई। लंका मनहु बिभीषन पाई॥

स्वप्न-फल का एक अन्य प्रसंग अयोध्याकांड में आता है, जहाँ स्वप्न में राजा भिखारी और कंगाल स्वर्ग का स्वामी हो जाता है। लेकिन जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है। द्रष्टव्य है—

सपने होइ भीखारि नृप रंकु नाकपति होइ।

स्वप्न विज्ञान में इंद्रियाँ निवृत्त हो जाती हैं, मन ही राजा रहता है। मन पूर्वजन्म से लेकर इस जन्म के संस्कारों, घटनाओं का दर्शन तथा भविष्य-दर्शन कराने की क्षमता रखता है, क्योंकि जब तक आत्मा मुक्त नहीं होती, तब तक यह जन्म-जन्मांतर तक आत्मा के साथ कार्य के रूप में विद्यमान रहता है एवं शुभ-अशुभ कर्मफलों व घटनाओं की स्मृति रखता है। यह संसार ही स्वप्नमय है—जाग्रत् अवस्था में जो सुनते, करते, देखते हैं, वह सब जाग्रत् स्वप्न ही है। विनाशी संसार में सारी महत्त्वाकांक्षाएँ स्वप्न हैं।

स्वप्न में सफेद सर्प देखना लक्ष्मी प्राप्ति का सूचक है। कौवा देखना या काली बिल्ली देखना अशुभ स्वप्न है। विधवा औरत, कलवारिन (तेली) देखना भी शुभकारी नहीं है। स्वप्न में यदि किसी स्वस्थय स्त्री ने देखा कि कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर उसके पीछे दौड़ रहा है तो यह बहुत कामुक स्वप्न है। इसी प्रकार कुछ लोगों को स्वप्न में जंगल, पहाड़, नदी और अग्नि-शिखाएँ दिखती हैं, ऐसे सपने भूत या प्रेतात्माओं के होती है। यदि किसी ने स्वप्न में देख लिया कि उसे साँप ने काट खाया तो उसके मन में भ्रम बैठ जाता है। परिणामत: सोते-जागते वह साँप का ही स्वप्न देखता रहता है।

स्वप्न की सृष्टि के बारे में अभिनवपाद गुप्त ने विचार व्यक्त किया है कि आत्मा से उत्पन्न होनेवाले विचारों से स्वप्न की सृष्टि होती है। इसलिए स्वप्न संबंधी विषय आत्मा से जुड़ा है, न कि इंद्रियों से। एक ही स्वप्न बार-बार दिखाई नहीं देता है। हर बार के स्वप्न में नयापन होता है। इसलिए सपने सर्वसंवैद्य नहीं होते। यही कारण है कि जाग्रत् अवस्था में हम जो कुछ देखते हैं, स्वप्न उससे सर्वथा भिन्न होते हैं। चूँकि स्वप्न का संबंध आत्मा यानी अंत:करण से है, इसलिए अंतकरण में देखी गई चीज काल्पनिक नहीं हो सकती। उसका मन-बुद्धि-भावना के संयोग से सत्त्व, रज, तम गुणों से भी संबंध होता है। इसीलिए स्वप्न प्रतीकात्मक होकर भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

वैद्यक ग्रंथ 'शार्ङ्गधर संहिता' में स्वप्न पर गहन विचार करते हुए स्वप्न-प्रतीक पर प्रकाश डाला गया है—स्वप्न में नंगा, मुंडन कराए हुए, लाल, काले या सफेद कपड़े पहने हुए, नाक-कान कटे, विकृतांगी, कुबड़े, हाथी में पाश (फाँसी) शस्त्र लिये हुए, बाँधते, मारते हुए, दक्षिण दिशा की ओर गधा या भैंसा पर बैठे, ऊँट की सवारी किए हुए पुरुष को जो व्यक्ति देखे, वह स्वस्थ हो तो बीमार और बीमार हो तो मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

'शार्ङ्गधर संहिता' रोग तथा चिकित्सा का ग्रंथ है। इसमें कुछ खास

लक्षण बताए गए हैं। इसीलिए वैद्यक ग्रंथों में इसका बड़ा मान है। अशुभ लक्षण हैं—

उच्च स्थल से स्वयं को जो गिरता दिख जाय।
कुत्ता काटे, आग या जल में जाए समाय॥
मछली निगले स्वप्न में या दीपक बुझ जाय।
तेल, शराब व घी पिये, पूड़ी कचौड़ी खाय॥
नेवला, टूटा पात्र या तिल खरगोश बिलाव।
सूखी लकड़ी अधजली हाँड़ी और अलाव॥
शहनाई, भेरी, मृदंग या दुंदुभि का नाद।
जन एकत्रित हो करें आपस में संवाद॥
मधुर सुभग संगीत या रिक्त कलश हो श्वेत।
पुत्रवती स्त्री हँसे, गूदड़ बोले खेत॥
कुआँ-कुंड-जमीन के भीतर जो घुस जाय।
स्वस्थ व्यक्ति भी रोग शीघ्र प्राप्त हो जाय॥

प्राय: कुछ व्यक्ति दिन में भी स्वप्न देखते हैं, जिसको दिवास्वप्न कहते हैं। दिन में दिखनेवाले स्वप्न निष्फल होते हैं। इनका कोई अर्थ नहीं होता है। रात्रि में आए स्वप्न ही फलदायी और प्रभावी होते हैं। स्वप्न में कुछ वस्तुओं-स्थानों का दिखना शुभफल दायी माना गया है। इन फलों का निर्धारण वर्षों के अनुभव और लक्षणों के आधार पर किया गया है। यथा—

नृप, देवता, स्वमित्र, गौ, जलति अग्नि या कीच।
तीर्थस्थल, ब्राह्मण अचल दिखे स्वप्न के बीच॥
करें सवारी अश्व या हस्ति चढ़ें हर्षाय।
गौरैया शुक-चातकी खंजन मैना गाय॥
श्वेत भवन या चाँदनी, श्वेत पुष्प अरु बैला।
मांस और मछली दिखे या कज्जल सा शैल॥
विष्ठा का लेपन करें, खाएँ कच्चा मांस।
काटे साँप, अलि-जोंक या रोवें लखके फांस॥
भोग करें उस वस्तु का जिसका महानिषेध।
रोगी पावे स्वस्थता, मिले स्वस्थ को मेध॥

शुभ और अशुभ के इतने प्रतीक (लक्षण) हैं कि उन सबको यहाँ देना विषय-विस्तार की दृष्टि से अनुचित जान पड़ता है फिर भी जो प्रतीक दिए गए हैं, वे ज्ञानवर्धन और सचेतता की दृष्टि से पर्याप्त हैं। इनमें अधिकतर दृष्टांत-प्रतीक जो प्रस्तुत किए गए हैं, वर्षों के गहन अनुभव से उद्‌भूत हैं और कई मेरे जीवन के अनुभव तथा अनुभूति से प्रसूत हैं। मेरे अनुभवों में जीवन-जगत् में घटित घटनाओं के साक्ष्य स्वरूप सच्चाई का दिग्दर्शन होता है। चरक के अनुसार—'मन की इंद्रियों से व्यक्ति अधकचरी नींद में सफल या विफल कर्मों को देख लेता है। पुरुषों के स्वप्न अकसर यौन संबंधी होते हैं, ऐसी अवधारणा बेबुनियाद है। महिलाएँ भी स्वप्न देखती हैं और उनके फलाफल निष्कर्ष निकलते हैं। २ अगस्त, २०१६ को इन पंक्तियों के लेखक की पत्नी ने भोर ५:३० बजे स्वप्न देखा कि उनके जेठ ललित मोहन स्नान कर रहे हैं और गाँव के १०-१५ व्यक्ति उनके पास खड़े हैं, स्वप्न को सुबह बताया। यकीनन १३ अगस्त, १६ की रात प्रात: ४ बजे उनके जेठजी का निधन हो गया। (प्रकाशित समाचार अभी तक क्राइम टाइम्स, दिनांक २२-२८ अगस्त, २०१६ दिल्ली।)

यह सत्य है कि मनुष्य के जीवन में अनेक बदलती इच्छाओं में संघर्ष मन के भीतर होता रहता है, जिसको वह पूरा करना चाहता है, पर किन्हीं कारणों से वह उसे पूरा नहीं कर पाता और मन में दबाए रखता है, वे इच्छाएँ या मनोभाव ही अज्ञात मानस अचेतन, अवचेतन अवस्था में स्वप्न-प्रतीक के रूप में दीख पड़ते हैं। सपनों में देखी हुई बातों, घटनाओं आदि का काफी समीक्षण करने के उपरांत मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि स्वप्न की भाषा, दशा और स्थिति पर लाक्षणिक विचार करना निहायत जरूरी है। स्वप्न भले ही प्रतीकात्मक ढंग से अस्पष्ट संकेत देते हों, किंतु जन-जीवन-समाज के साथ संपृक्त करके विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि स्वप्न का क्षेत्र बड़ा विस्तृत होता है। इन्हें मिथक नहीं मान सकते। फ्रायड भी पूरी तरह मिथक नहीं मानते। उनके अनुसार सपनों के कई कारण हैं।

स्वप्न को निरा रूढ़िवादी विचार या अतृप्त वासना के संकीर्ण दायरे में बाँध देना दिमागी खलल होगा। परंतु जने-जने मतिर्भिन्ना के अनुसार सबकी अपनी-अपनी अवधारणाएँ, संकल्पनाएँ, मान्यताएँ हैं। वे अपनी विचार-शक्ति, कल्पना, इच्छा और तर्क-तथ्य के अनुसार किसी भी विषय को सोचते, चिंतन-मंथन करते हैं। एकमत को किसी पर थोपा नहीं जा सकता, लेकिन सोचने की नई दृष्टि दी जा सकती है। मानव स्वभाव की विशेषता है कि वह कुछ बातों, घटनाओं, स्थितियों को प्रतीक-रूप में सोचता है। इसलिए प्रतीक-रूप में दिखे स्वप्नों को मन की गहराई में जाकर विचार करें तो निश्चित पाएँगे कि स्वप्नों की अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि होती है। सपनों को याद करना चाहिए, परंतु सभी सपने याद भी नहीं रहते। सपने जितनी हमारी जिंदगी से जुड़े हैं, उससे अधिक हमारी संस्कृति से जुड़े हैं।

सपने सदा बनते-बिगड़ते, खिलते या धराशायी होते रहते हैं। कह सकते हैं, मानव सभ्यता काल से ही सपने देखता और बुनता आया है। अगर यहाँ स्वप्न-सुंदरियों (ड्रीम गर्ल्स) हैं तो सपनों के सौदागर भी हैं। हमें इन सौदागरों से बचना चाहिए। अनेक पुरुष स्वप्नदर्शी हैं। वे निरंतर सपनों की दुनिया में झिलमिलाते तारों से अपना रंग बिखेरते रहते हैं और दिन में फिर अपने असली रूप में चले जाते हैं। ये जीवित मनुष्यों को सपने दिखाते हैं। हम जिंदगी के बड़े सपने देखकर या सँजोकर ऊँची उड़ान भरने लगते हैं। यहाँ प्रकारांतर से यह संकेत लाजिमी है कि सपने जिंदगी की हकीकत नहीं, जिन्हें हम देखते हैं। विश्वविख्यात वैज्ञानिक और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. कलाम के शब्दों में 'सपने वे नहीं, जिन्हें हम देखते हैं, असली सपने वे हैं, जो हमें बेचैन कर देते हैं।'

साहित्य कुटीर साइट-२/४४
विकास पुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ०९२८९४४०६४२

नवदुर्गा

● पं. के.के. त्रिपाठी

हिंदू धर्मावलंबियों में माँ भगवती दुर्गा की पूजा-आराधना का विशेष महत्त्व है। माँ दुर्गा के अनंत रूप हैं। श्रद्धालु इनके सभी रूपों की स्तुति कर इनकी कृपा के पात्र बनते हैं। वर्ष में दो बार माँ दुर्गा के नौ रूपों की विशेष पूजा-अर्चना की जाती है। नौ दिन चलनेवाले इस धार्मिक अनुष्ठान को नवदुर्गा-पूजन और नवरात्र-पूजन आदि कहा जाता है। देश भर में नवदुर्गा-पूजन उल्लास और भक्ति-भाव से मनाया जाता है।

इन नौ दिनों में माँ दुर्गा के विभिन्न नौ शक्तिरूपों की अर्चना की जाती है। ये नौ विभिन्न रूप माँ दुर्गा के साक्षात् शक्ति अवतार हैं, जो भक्तों की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण कर उन्हें लोक-परलोक में मान-सम्मान दिलवाते हैं। माता दुर्गा के नौ शक्ति रूप इस प्रकार हैं–

शैलपुत्री

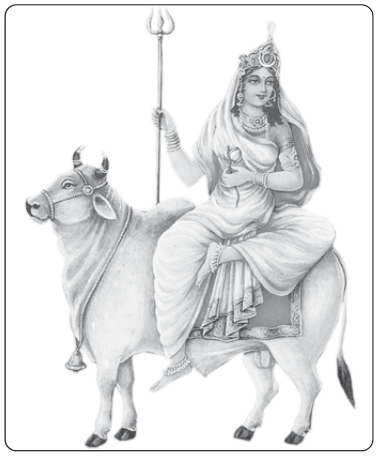

नवदुर्गाओं में माता शैलपुत्री प्रथम दुर्गा मानी जाती हैं। माता दुर्गा के इस रूप में उनके हाथों में त्रिशूल और कमल-पुष्प सुशोभित है। माता शैलपुत्री का वाहन वृषभ है। धार्मिक ग्रंथों में इनकी उत्पत्ति की निम्न कथा वर्णित है–

माता शैलपुत्री अपने पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की कन्या के रूप में उत्पन्न हुईं। तब इनका नाम 'सती' रखा गया। देवी सती बचपन से ही अनन्य शिव-भक्त थीं। युवा अवस्था में उन्होंने अपनी शिव-भक्ति व तपस्या के बल से शिवजी को प्रसन्न किया और उन्हें पति-रूप में पाने की कामना की। शिवजी ने मनोवांछित वर देते हुए उन्हें पत्नी रूप में स्वीकार किया।

एक बार दक्ष प्रजापति ने एक महायज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में उसने ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र सहित सभी देवताओं एवं ऋषि-मुनियों को आमंत्रित किया, किंतु भगवान् शिव को आमंत्रित नहीं किया। देवी सती ने जब यह सुना तो वे अपने पति का यह अपमान सहन न कर सकीं और उनका मन वहाँ जाने के लिए अत्यंत व्याकुल हो उठा।

वे क्रोधित होते हुए भगवान् शिव से बोलीं, ''हे नाथ! मेरे पिता दक्ष प्रजापति एक महायज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों को वहाँ आमंत्रित किया गया है, किंतु उन्होंने आपको इस यज्ञ में आमंत्रित न करके आपका अपमान किया है। इसे मेरा मन कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। अत: हे नाथ! आप मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दें।''

देवी सती के क्रोध को देखकर शिवजी बोले, ''हे देवी! आपको इस प्रकार क्रोधित नहीं होना चाहिए। दक्ष प्रजापति महायज्ञ के कर्ता हैं। यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है कि वे किसे आमंत्रित करें और किसे नहीं। हमें इन व्यर्थ की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार की बातें मन की कटुता को बढ़ाती हैं।''

भगवान् शिव के इस प्रकार समझाने पर भी देवी सती का क्रोध कम न हुआ। उनका प्रबल आग्रह देखकर भगवान् शिव ने उन्हें वहाँ जाने की अनुमति दे दी।

जब देवी सती यज्ञस्थली पर पहुँचीं तो वहाँ उन्हें चारों ओर शिव-निंदा सुनाई पड़ी। दक्ष प्रजापति भी अपने सेवकों से घिरे हुए शिव-निंदा में लीन थे। देवी सती की सभी बहनें उनका उपहास और व्यंग्य कर रही थीं। इस स्थिति को देखकर उनका क्रोध बढ़ गया। वे अपने पति का अपमान सहन न कर सकीं और वहीं यज्ञ की अग्नि में उन्होंने स्वयं को भस्म कर लिया। जब भगवान् शिव को इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने गणों को भेजकर उस यज्ञ का विध्वंस करा दिया।

देवी सती ने अगले जन्म में शैलराज हिमालय के घर जन्म लिया। वहाँ उनका नाम 'पार्वती' रखा गया; किंतु शैलराज हिमालय के घर उत्पन्न होने के कारण ही उन्हें 'शैलपुत्री' भी कहा गया। इस जन्म में भी माता शैलपुत्री ने अपनी तपस्या के बल से भगवान् शिवजी को प्रसन्न करके उन्हें पति-रूप में प्राप्त किया। नव दुर्गाओं में माता शैलपुत्री का महत्त्व और शक्तियाँ अनंत हैं। नवरात्रों में प्रथम दिवस पर माता शैलपुत्री की ही पूजा-अर्चना की जाती है।

ब्रह्मचारिणी

नवदुर्गा का दूसरा स्वरूप माता ब्रह्मचारिणी के रूप में विख्यात

है। श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली माता ब्रह्मचारिणी के एक हाथ में जपमाला और दूसरे हाथ में कमंडलु सुशोभित होता है। पुराणों और धार्मिक ग्रंथों में इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है–

दक्ष प्रजापति की यज्ञ वेदी पर प्राण त्यागने के बाद देवी सती ने पर्वतराज हिमालय की पत्नी मैना के गर्भ से पुनः जन्म लिया। कन्या के शुभ लक्षणों को देखते हुए उसका नाम 'पार्वती' रखा गया। जब पार्वती ने युवा अवस्था में प्रवेश किया तो एक दिन देवर्षि नारद घूमते-घूमते पर्वतराज हिमालय के यहाँ आ पहुँचे।

पर्वतराज हिमालय ने देवर्षि नारद का अतिथि-सत्कार किया और पार्वती का हाथ देखकर उसका भविष्य बताने का आग्रह किया।

देवी पार्वती को देखते ही देवर्षि नारद ने आसन से उठकर उन्हें प्रणाम किया। नारद के इस आचरण को देखकर पर्वतराज हिमालय और मैना आश्चर्यचकित रह गए।

उन्होंने नारदजी से इस आचरण का कारण जानना चाहा। तब वे हँसते हुए बोले, ''हे पर्वतराज! आपकी यह कन्या पूर्व जन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री और भगवान् शिव की पत्नी माता सती थीं। अपने पिता दक्ष प्रजापति द्वारा पति का अपमान किए जाने पर उन्होंने यज्ञ वेदी पर ही प्राणों का त्याग कर दिया था। अब उन्होंने देवी पार्वती के रूप में पुनः आपके घर में पुनर्जन्म लिया है। इसलिए मैंने इन्हें प्रणाम किया। अपने सुकर्मों के कारण यह इस जन्म में भी भगवान् शिव की पत्नी बनने का गौरव प्राप्त करेंगी।''

देवर्षि नारद की बात सुनकर देवी पार्वती ने उनसे भगवान् शिव की प्राप्ति का उपाय पूछा। नारदजी ने उन्हें कठोर तप द्वारा शिवजी को प्राप्त करने का उपदेश दिया।

नारदजी के उपदेशानुसार देवी पार्वती ने भगवान् शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने के लिए सभी राजसी सुखों का त्याग कर कठोर तपस्या आरंभ कर दी।

देवी पार्वती ने तपस्या के आरंभिक 1,000 वर्ष कंद-मूल खाकर व्यतीत किए। तत्पश्चात् 3,000 वर्षों तक केवल जमीन पर टूटकर गिरे हुए बेलपत्रों को खाकर वे तपस्या में लीन रहीं। इसके बाद अनेक वर्षों तक उन्होंने निर्जल और निराहार तपस्या करते हुए वर्षा, आँधी व धूप में भयानक कष्ट सहे।

देवी पार्वती ने भगवान् शिव की हजारों वर्षों तक कठोर तपस्या की। इस तपस्या के फलस्वरूप उनकी काया एकदम क्षीण हो गई। उनकी कठिन तपस्या से तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। इंद्र सहित सभी देवगण और ऋषि-मुनि देवी पार्वती की कठोर तपस्या से भयभीत हो गए। वे सभी ब्रह्माजी के समक्ष उपस्थित हुए और उनसे देवी पार्वती को मनचाहा वर प्रदान करने की प्रार्थना की।

अंत में परमपिता ब्रह्माजी ने देवी पार्वती को दर्शन दिए और बोले, ''हे देवी! तुम्हारी कठिन तपस्या के समक्ष सभी देवगण नतमस्तक हैं। इस प्रकार का कठोर तप केवल तुम्हारे द्वारा ही संभव था। तुम्हारी मनोकामना शीघ्र पूरी होगी। भगवान् शिव तुम्हें पति-रूप में अवश्य प्राप्त होंगे। कठोर तपस्या के कारण सृष्टि में तुम्हें ब्रह्मचारिणी अर्थात् तप का आचरण करनेवाली कहा जाएगा।''

इसके बाद ब्रह्माजी ने देवी पार्वती का सौंदर्य उन्हें पुनः प्रदान कर दिया।

इस प्रकार देवी पार्वती को अपने तप के बल से भगवान् शिव पति रूप में प्राप्त हुए और वे संसार में ब्रह्मचारिणी नाम से विख्यात हुईं।

माता ब्रह्मचारिणी की उपासना से भक्तों में तप, त्याग, वैराग्य, सदाचार, संयम आदि की वृद्धि होती है और उन्हें सर्वत्र सिद्धि एवं विजय की प्राप्ति होती है। नवरात्रों के दूसरे दिन माता ब्रह्मचारिणी की पूजा-अर्चना की जाती है।

चंद्रघंटा

नवरात्रों के तीसरे दिन माता दुर्गा के शरीर से प्रकट हुई तीसरी शक्ति चंद्रघंटा की स्तुति की जाती है। इनके मस्तक में घंटे के आकार का आधा चंद्रमा शोभायमान है। यही कारण है कि भक्तजन इन्हें 'चंद्रघंटा देवी' कहते हैं।

माता चंद्रघंटा की कृपा से भक्तों के सभी पाप, बाधाएँ, शारीरिक कष्ट, मानसिक चिंताएँ और भूत-प्रेत बाधाएँ दूर होती हैं। सिंह पर सवार ये माता भक्तों में निर्भयता के साथ-साथ सौम्यता के गुणों का समावेश करती हैं। जो भक्त शुद्ध मन, कर्म और वचन से माँ चंद्रघंटा की पूजा-अर्चना करते हैं, उनके शरीर दिव्य प्रकाश से आभायुक्त हो जाते हैं। उनके शरीर से प्रकाशयुक्त अदृश्य शक्ति का विकिरण होता रहता है, जिससे उनके संपर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता है और उसका काम सरलता से बनता चला जाता है। माँ चंद्रघंटा दुष्टों का संहार करने के लिए सदैव तत्पर रहती हैं, किंतु इनके दर्शक और आराधक को ये माता अपने सौम्य और शांति से परिपूर्ण रूप के दर्शन करवाती हैं।

माता चंद्रघंटा का शरीर स्वर्ण वर्ण का है। इनके दस हाथ बताए गए हैं, जिनमें खड्ग, अस्त्र-शस्त्र, बाण आदि विभूषित हैं। देवासुर संग्राम में उनके घंटे की भयानक ध्वनि मात्र से सैकड़ों अत्याचारी दानव, दैत्य और राक्षस मृत्यु को प्राप्त हो गए थे।

इनकी मुद्रा सदैव युद्ध के लिए तैयार रहनेवाली होती है, जिसका तात्पर्य यह है कि अपने भक्तों के शत्रुओं के विनाश के लिए तैयार रहकर ये सदा उनका भला करने को आतुर रहती हैं। जिस भक्त पर माता चंद्रघंटा की कृपा होती है, उसे दैवी वस्तुओं के दर्शन होते हैं। दिव्य सुगंधियों और विविध प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई देने लगें तो भक्त को यह समझ लेना चाहिए कि उस पर देवी की कृपा-दृष्टि बनी हुई है।

माता चंद्रघंटा की स्तुति विधि-विधान के अनुसार पूर्णत: पवित्रता के साथ करनी चाहिए। माता की कृपा प्राप्त कर हम समस्त सांसारिक कष्टों से मुक्त होकर परम पद के अधिकारी बन जाते हैं। साधना के दौरान भक्तों को सदैव माता के सौम्य रूप को अपने मस्तिष्क में केंद्रित रखना चाहिए।

कूष्मांडा

माता दुर्गा के चौथे स्वरूप को कूष्मांडा के नाम से जाना जाता है। नवरात्रों के चौथे दिन माता कूष्मांडा की पूजा-अर्चना की जाती है। माता कूष्मांडा का निवास-स्थान सूर्यलोक में है। इसी कारण उनके शरीर की कांति और आभा सूर्य के समान प्रकाशमान है। सृष्टि के संपूर्ण प्राणियों में इसी देवी का प्रकाश प्रदीप्त है। माता कूष्मांडा के दिव्य तेज से दसों दिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं।

जब ब्रह्मांड का अस्तित्व नहीं था, चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार था, तब माता कूष्मांडा ने अपनी मंद मुसकान द्वारा अंड अर्थात् ब्रह्मांड की उत्पत्ति की। इस प्रकार अपनी हलकी सी हँसी द्वारा ब्रह्मांड की रचना करने के कारण इन्हें माता 'कूष्मांडा' कहा गया।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय सूर्य एवं अन्य नक्षत्रों को माता कूष्मांडा ने अपने तेज से ही प्रकाश प्रदान किया था। तब से ब्रह्मांड की सभी वस्तुओं और प्राणियों में अवस्थित तेज माता कूष्मांडा की छाया है।

सिंह पर सवार माता कूष्मांडा को आठ भुजाओं के कारण अष्ट भुजाधारी देवी भी कहा जाता है। इनके हाथों में क्रमश: कमंडलु, धनुष-बाण, कमल-पुष्प, अमृत-कलश, चक्र, गदा और सभी प्रकार की सिद्धियों व निधियों को प्रदान करनेवाली जप की माला सुशोभित होती है।

माता कूष्मांडा भक्तों को हर प्रकार की सिद्धियाँ, धन, ऐश्वर्य और मोक्ष प्रदान करनेवाली देवी हैं। इनकी सच्ची उपासना और आराधना से भक्तों के सभी रोग, दु:ख, कष्ट-क्लेश और बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं।

सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करनेवाली माता कूष्मांडा भक्तों की केवल भक्ति और सेवा से ही प्रसन्न होकर उन्हें मनोवांछित वर प्रदान करती हैं। इनकी नियमित साधना से साधकों को धन-संपत्ति और ऐश्वर्य के साथ-साथ मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है। माता कूष्मांडा की पूजा-अर्चना मनुष्य को विभिन्न प्रकार की व्याधियों से विमुक्त कर, सुख-समृद्धि और उन्नति की ओर ले जाती है। भक्तों को शुद्ध और पवित्र मन से माता कूष्मांडा के स्वरूप को ध्यान में रखकर उनकी उपासना करनी चाहिए।

स्कंदमाता

स्कंदमाता माता दुर्गा के पाँचवें रूप में अवतरित हुईं। दुर्गा-पूजन में पाँचवें दिन स्कंदमाता की पूजा की जाती है। इनके पुत्र कुमार कार्तिकेय को स्कंद कहा जाता है, इसीलिए उनकी माता होने के कारण दुर्गा का यह स्वरूप 'स्कंदमाता' के नाम से प्रसिद्ध है।

स्कंदमाता की गोद में भगवान् स्कंद विराजमान होते हैं। स्कंदमाता की चार भुजाएँ हैं, जिनमें दो हाथों में कमल-पुष्प विभूषित हैं। एक हाथ वर-मुद्रा में और दूसरा हाथ भगवान् स्कंद को गोद में पकड़े हुए होता है। शुभ्र वर्ण की यह माता कमल के आसन पर आसीन रहती हैं, इस कारण ये पद्मासना देवी भी कहलाती हैं। सिंह भी इनका वाहन है।

सूर्य के समान तेजवाली स्कंदमाता अपने भक्तों की समस्त इच्छाओं को पूरी करनेवाली देवी हैं। इनकी निस्स्वार्थ भक्ति से साधक को सभी प्रकार की सिद्धियों और निधियों की प्राप्ति होती है।

स्कंदमाता की उपासना करने पर भक्त का हृदय शुद्ध हो जाता है। स्कंदमाता की उपासना करते समय साधक को अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण कर मन को एकाग्र करना चाहिए। उपासना के समय साधक का ध्यान लौकिक और सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर स्कंदमाता के स्वरूप में लीन होना चाहिए।

स्कंदमाता की उपासना की एक विशेषता यह भी है कि साधक द्वारा स्कंदमाता की

पूजा-अर्चना करने से भगवान् स्कंद की उपासना भी स्वत: ही हो जाती है। इससे स्कंदमाता के साथ-साथ भगवान् स्कंद की कृपा-दृष्टि भी साधक को सहज ही प्राप्त हो जाती है।

यदि भक्त निस्स्वार्थ भावना से स्कंदमाता की पूजा-अर्चना करते हैं, तो वे उन्हें सुख-संपदा और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। स्कंदमाता की उपासना करनेवाले भक्त सूर्य के समान अलौकिक तेज और कांति से संपन्न हो जाते हैं। माता की आराधना मात्र से ही उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

कात्यायनी

माता कात्यायनी दुर्गा के छठे अवतार के रूप में पूजी जाती हैं। छठे नवरात्रे को माता कात्यायनी की पूजा-अर्चना की जाती है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार माता कात्यायनी की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है–

कात्य नाम के ऋषि की वंशावली में एक प्रसिद्ध ऋषि कात्यायन उत्पन्न हुए। महर्षि कात्यायन माता दुर्गा के परम भक्त थे। उन्होंने माता दुर्गा की अनेक वर्षों तक कठोर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर माता दुर्गा ने उन्हें दर्शन दिए और उनसे वर माँगने को कहा। तब महर्षि कात्यायन ने माता दुर्गा से वर माँगा कि 'वे पुत्री रूप में उनके घर में जन्म लें।'

माता दुर्गा ने महर्षि कात्यायन को इच्छित वर प्रदान कर दिया।

कुछ समय पश्चात् जब पृथ्वी पर महिषासुर नामक असुर का अत्याचार बढ़ गया, तब माता दुर्गा के तेज से महर्षि कात्यायन के घर में माता दुर्गा के छठे स्वरूप का जन्म हुआ। महर्षि कात्यायन के यहाँ जन्म लेने के कारण ये 'माता कात्यायनी' के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

माता कात्यायनी ने जन्म लेते ही विशाल रूप धारण कर लिया। उनके इस विशाल रूप को देखकर महर्षि कात्यायन ने उन्हें प्रणाम किया और तीन दिन शुक्ल सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी तक उनकी पूजा-अर्चना की। माता कात्यायनी ने महर्षि की पूजा ग्रहण करने के बाद महिषासुर का वध किया।

पुराणों में वर्णित एक अन्य कथा के अनुसार, जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव के मिश्रित तेज से माता दुर्गा के छठे स्वरूप का जन्म हुआ, तब महर्षि कात्यायन ने सर्वप्रथम उनकी पूजा की। इस कारण उनका नाम 'कात्यायनी' पड़ा।

माता कात्यायनी भक्तों को अमोघ फल प्रदान करनेवाली देवी हैं। ब्रज की गोपियों ने भी भगवान् कृष्ण को पति-रूप में पाने के लिए यमुना के तट पर इनकी पूजा की थी। चार भुजाधारी माता कात्यायनी का वाहन सिंह है। मनुष्य के समस्त पापों का नाश करके उसे मोक्ष प्रदान करनेवाली माता कात्यायनी सहज भक्ति से प्रसन्न हो जाती हैं। इनकी उपासना से मनुष्य को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मिलता है।

कालरात्रि

माता दुर्गा के सातवें स्वरूप को माता कालरात्रि के नाम से जाना जाता है। माता कालरात्रि की काया घने अंधकार के समान एकदम काली है। इनके मस्तक पर तीन नेत्र विद्यमान हैं, जो ब्रह्मांड के समान गोल हैं।

माता कालरात्रि के सिर के केश घने और बिखरे हुए हैं। इनके गले में विद्युत् के समान प्रकाशमान माला सुशोभित है। श्वास लेते समय इनकी नासिका से अग्नि की तीव्र और भयंकर लपटें प्रकट होती हैं। यद्यपि इनका शरीर काला है, तथापि इनमें से विद्युत् के समान तेज प्रकाश-युक्त किरणें प्रकट होती हैं।

माता कालरात्रि का वाहन गर्दभ अर्थात् गदहा है। यह माता चार भुजाओंवाली हैं। इनके दो हाथों में क्रमश: खड्ग और नुकीला अस्त्र विभूषित है, जबकि एक हाथ वर मुद्रा में और दूसरा अभय मुद्रा में है।

भक्तों के लिए माता कालरात्रि का स्वरूप अत्यंत भयानक है, किंतु उन्हें ये देवी सदैव शुभ फल प्रदान करती हैं। अपने भक्तों को शुभ फल प्रदान करने के कारण इन्हें 'शुभंकरी' भी कहा जाता है।

माता कालरात्रि की पूजा-आराधना से भक्तों के समस्त पाप धुल जाते हैं और वे माता के दर्शन से मिलनेवाले पुण्य के भागी हो जाते हैं। यदि भक्त निस्स्वार्थ और भक्तिपूर्ण भावना से माता कालरात्रि की उपासना करते हैं तो उनके सभी कष्ट-क्लेशों का अंत हो जाता है और उन्हें सभी प्रकार के सुख व वैभवों की प्राप्ति होती है।

माता कालरात्रि दैत्य, दानव, राक्षस, भूत-प्रेत आदि का नाश करनेवाली देवी हैं। इनके स्मरण मात्र से ही भक्त की सभी ग्रह-बाधाएँ दूर हो जाती हैं। इनकी आराधना से भक्त भय-मुक्त हो जाते हैं। नवरात्रे के सातवें दिन कालरात्रि की पूजा की जाती है। शुभ फल प्राप्त करने के लिए पूजा करते समय भक्त को अपने मन को शुद्ध और पवित्र रखना चाहिए।

महागौरी

नारदजी से शिवजी को प्राप्त करने के लिए तपस्या का उपदेश मिलने पर देवी पार्वती ने कठोर तप करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने सभी प्रकार के सुखों को त्याग जंगल में रहकर कठोर तप आरंभ कर दिया।

यह तप अनेक वर्षों तक चला। तपस्या के दौरान उन्होंने धूप, आँधी, वर्षा और शीत का भीषण प्रकोप सहा, जिससे उनका शरीर धूल, मिट्टी और पत्तों से ढक गया। इसके फलस्वरूप उनका शरीर काला पड़ गया। अंत में जब भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन देकर पत्नी-रूप में स्वीकार करने का वचन दिया, तब उन्होंने अपनी जटाओं में से निकलनेवाली गंगा द्वारा उनका शरीर मल-मलकर धोया।

पवित्र और शुद्ध गंगाजल के स्पर्श से देवी पार्वती के शरीर का सारा मैल धुल गया और उनका शरीर गौर वर्ण होकर दीप्तिमान हो उठा। इस प्रकार गौर वर्ण की होने के कारण माता पार्वती का नाम 'महागौरी' प्रसिद्ध हो गया।

दुर्गा-पूजन के आठवें दिन माता महागौरी की उपासना की जाती है। माता महागौरी की चार भुजाएँ हैं। उनका वाहन वृषभ है। उनकी यह मुद्रा अत्यंत शांत और सौम्य है।

इनकी पूजा-अर्चना से भक्तों के सभी पाप धुल जाते हैं। इनकी शक्ति अमोघ और फल प्रदान करनेवाली है। सच्चे हृदय से आराधना करने पर भक्तों के सभी दुःख, क्लेश, ग्रह-बाधाएँ एवं पाप-संतापों का अंत हो जाता है और वे सभी प्रकार के पुण्यों को प्राप्त करने के अधिकारी बन जाते हैं।

माता महागौरी का ध्यान-स्मरण, पूजन-आराधन भक्तों के लिए कल्याणकारी है। इनकी उपासना करते समय साधकों को एकाग्रचित्त होकर माता महागौरी का ध्यान करना चाहिए। इनकी कृपा प्राप्त होने पर साधक को विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भोग, ऐश्वर्य और मोक्ष प्रदान करनेवाली माता महागौरी सभी की मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं।

सिद्धिदात्री

नवरात्रे के नौवें और अंतिम दिन माता सिद्धिदात्री की पूजा की जाती है। माता सिद्धिदात्री सभी सिद्धियों की स्वामिनी हैं। अपने भक्तों को विभिन्न सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली माता सिद्धिदात्री की कथा इस प्रकार है–

जब माता दुर्गा के मन में सृष्टि-रचना का विचार उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने भगवान् शिव को उत्पन्न किया। शिवजी ने उत्पन्न होने पर माता दुर्गा से सिद्धियाँ प्रदान करने की प्रार्थना की। उन्हें सिद्धियाँ प्रदान करने के लिए माता दुर्गा के एक अंश से देवी सिद्धिदात्री का जन्म हुआ, जो सभी प्रकार की सिद्धियों की ज्ञाता थीं। माता दुर्गा के आदेशानुसार माता सिद्धिदात्री ने भगवान् शिव को अठारह प्रकार की दुर्लभ, अमोघ और शक्तिशाली सिद्धियाँ प्रदान कीं। इन सिद्धियों की प्राप्ति से ही शिवजी में दैवी तेज उत्पन्न हुआ।

माता सिद्धिदात्री से सिद्धियाँ प्राप्त करके शिवजी ने विष्णु की और विष्णुजी ने ब्रह्मा की उत्पत्ति की। ब्रह्माजी को सृष्टि-रचना का, विष्णु को सृष्टि के पालन-पोषण का और शिवजी को सृष्टि के संहार का कार्य मिला।

ब्रह्माजी को नर और नारी के अभाव के कारण सृष्टि-रचना में कठिनाई आने लगी। तब उन्होंने माता सिद्धिदात्री का स्मरण किया। माता सिद्धिदात्री के प्रकट होने पर ब्रह्माजी बोले, ''हे माता सिद्धिदात्री! नर-नारी के अभाव के कारण मुझे सृष्टि-रचना में कठिनाई आ रही है। आप अपनी सिद्धियों द्वारा मेरी इस समस्या का समाधान करें।''

ब्रह्माजी की बात सुनकर माता सिद्धिदात्री ने अपनी सिद्धियों द्वारा शिवजी का आधा शरीर नारी का बना दिया। इस प्रकार शिवजी आधे नर और आधे नारी के रूप के कारण अर्द्धनारीश्वर कहलाए। इस प्रकार ब्रह्माजी की समस्या का समाधान हो गया और सृष्टि-रचना का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा।

माता सिद्धिदात्री कमल पुष्प पर विराजमान होती हैं। इनका वाहन सिंह है। माता सिद्धिदात्री चार भुजाओंवाली देवी हैं। सिद्धिदात्री की उपासना करने से साधकों की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। माता सिद्धिदात्री अपने भक्तों और साधकों को सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली देवी हैं।

पुराणों के अनुसार, माता सिद्धिदात्री अठारह प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। ये सिद्धियाँ हैं—अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, सर्वकामावसायिता, सर्वज्ञात्व, दूरश्रवण, परकायप्रवेशन, वाक्सिद्धि, कल्पवृक्षत्व, सृष्टि, संहारकरणसामर्थ्य, अमरत्व, सर्वन्यायकत्व, भावना और सिद्धि।

माता सिद्धिदात्री की कृपा जिस पर हो जाती है, वह सारे सुखों को भोगते हुए अंत में मोक्ष को प्राप्त होता है। माता सिद्धिदात्री भक्तों की सभी लौकिक और पारलौकिक मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं। इनकी उपासना सभी कष्टों का अंत कर देती है।

(पं. के.के. त्रिपाठीकृत एवं सत्साहित्य प्रकाशन से प्रकाशित पुस्तक 'हिंदी देवी देवता' से साभार)

कबीर वाणी की प्रासंगिकता

● व्यास कुमार वाजपेयी

सुपरिचित साहित्यकार। संत और सूफी साहित्य का विशेष अध्ययन। वर्तमान में पुस्तकालय विज्ञान में शोधरत एवं श्यामलाल कॉलेज में पुस्तकालयाध्यक्ष।

भारतवर्ष संतों की भूमि है, ऋषियों की भूमि है। यहाँ ऋषि-मुनियों ने तपस्या कर अपनी हस्ती को मिटाकर प्रभु में लय कर लिया और फिर भूले-भटके लोगों को प्रभु का रास्ता बताने की कोशिश की। इन संतों ने अपनी आत्मा का विकास कर अपने आप को जाना और उस समाज की कुरीतियों को दूर करने की कोशिश की।

इसी श्रेणी में कबीर साहब का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। निर्गुण संतों में कबीर साहब की अपनी एक अलग पहचान है। कबीर साहब ने जो अपनी आँखों से देखा, उसी को व्यक्त किया!

कबीर साहब के गुरुदेव थे रामानंद! कबीर साहब गुरु की महिमा के बारे में बताते हुए कहते हैं कि सतगुरु की महिमा अनंत है और सतगुरु ने मुझे ज्ञान प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप मैंने ईश्वर को पाया।

कबीर साहब कहते हैं कि हे मनुष्य! संसार की आसक्ति को मन से हटा दो और जो गुरु बताए, उसको अक्षरश: पालन करो।

कबीर साहब कहते हैं कि लोग सांसारिक धन का संचय करते हैं, परंतु वह सब यहीं छूट जाता है। किसी को उसे लादकर यहाँ से ले जाते नहीं देखा, अत: सेवा रूपी धन, परोपकार रूपी धन संचय करो।

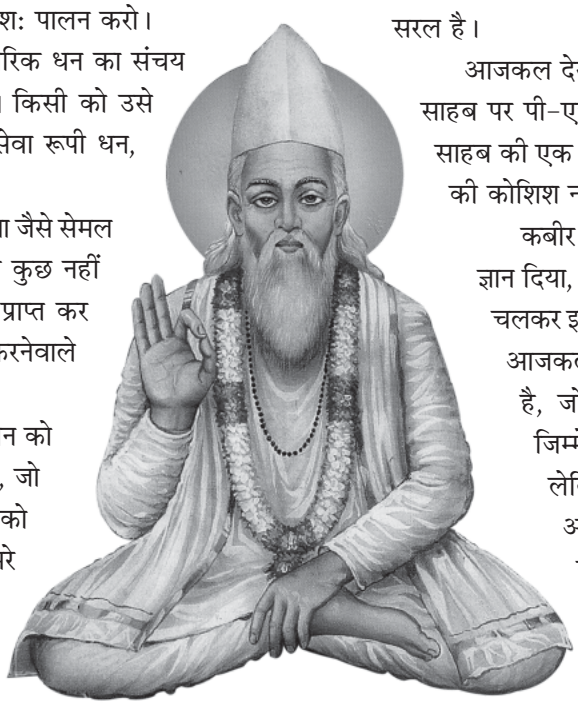

जप-तप, तीर्थ-व्रत सब सारहीन हैं। तोता जैसे सेमल के फूल के पास बैठकर आशा करने पर भी कुछ नहीं पाता, भीतर के कपास के अलावा कुछ न प्राप्त कर वैसे ही तप, व्रत, तीर्थ आदि पर विश्वास करनेवाले संसार से निराश हो जाते हैं।

कबीर साहब कहते हैं कि हमें अपने मन को फिराना चाहिए। केशों ने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो उन्हें बार-बार मुँडवाता है? मूँडना है तो मन को मूँड, जिसमें नाना प्रकार के विषय-विकार भरे हुए हैं।

वेशभूषा बदलकर शरीर के स्तर पर तो सब जोगी हो जाते हैं, मन से कोई विरला ही जोगी होता है। यदि मन से कोई जोगी हो गया तो उसे सारी सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाएँगी।

लेकिन आजकल सभी ज्यादा पैसा कमाने की होड़ में लगे हैं। लेकिन यह पैसा तो अंत में यहीं छूट जाना है। कुदरत का नियम है कि अमीर-गरीब श्मशान घाट ही जाएगा। व्यक्ति श्मशान घाट में कहता है कि सब बेकार है, अपना-पराया, लेकिन श्मशान घाट से निकलते ही कहता है कि यह करना है, वो करना है। मेरा-तेरा करने लगता है।

हमको इस संसार में जो चीजें छोड़नी हैं, उनको पकड़ते हैं तथा जो पकड़नी हैं, उनको पकड़ते नहीं अर्थात् हमें केवल परमात्मा को प्रेम से पकड़ना है और दुनिया को छोड़ना है। परमात्मा स्वयं कहते हैं कि यदि कोई सच्चा साधक है तो मैं तुरंत पलभर की तलाश में मिल जाता हूँ। मैं तो संसार के सारे जीवों के श्वास में निवास करता हूँ। मुझे पाना बहुत सरल है।

आजकल देखा जा सकता है कि बहुत लोगों ने कबीर साहब पर पी-एच.डी. की, शोधपत्र लिखे, लेकिन कबीर साहब की एक भी बात को उन्होंने अपने जीवन में उतारने की कोशिश नहीं की।

कबीर साहब अनपढ़ थे, लेकिन उन्होंने वह परमार्थ ज्ञान दिया, जो भक्तों के लिए लाभदायक है, जिस पर चलकर इनसान ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। लेकिन आजकल तो लोग यह कहते हैं कि यह तो पागल है, जो अभी से पूजा करता है, पहले अपनी जिम्मेदारियाँ निपटा लो, तभी प्रभु को याद करो, लेकिन तब तक बहुत देर हो जाती है और आदमी कुछ भी करने के लायक नहीं रहता। दूसरा यह कोई कह ही नहीं सकता कि वह बुढ़ापे तक पहुँचेगा। कोई भी इनसान यह नहीं बता सकता कि एक घड़ी के बाद क्या होगा। ध्रुव ने बालकपन में यानी पाँच साल की अवस्था में ही नारद को ज्ञान दे दिया था। अत: ईश्वर को निरंतर याद करते रहना चाहिए, तभी हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

श्यामलाल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ९८१८१०६१९३

कहानी

अंततः

● तुलसी देवी तिवारी

वह तो एक मिनट भी रैना के बिना नहीं रह पाता था, 'चलो रैना, सब्जी ले आते हैं! चलो रैना, धोबी को कपड़े दे आते हैं! चलो रैना, बिजली का बिल जमा कर आते हैं।'

'यह कौन सी आदत है तुम्हारी, जो काम एक आदमी कर सकता है, उसके लिए दो क्यों जाएँ? तुम्हें अकेले जाते डर लगता है क्या?' कई बार वह चिढ़ जाया करती।

'रातभर तो काटता ही हूँ तुम्हारे बिना, दोपहर को तुम्हें नींद आ जाती है, मेरे लिए कोई समय है तुम्हारे पास?' वह दुःखी हो जाता। घर से अकसर दोनों साथ ही निकलते थे। उसने ताना मारनेवालों की कभी परवाह नहीं की।

'लगता है, एक इन्हीं की शादी हुई है, जब देखो, साथ ही दिखते हैं।'

'अरे भाई! हम भी थे इनकी बारात में, हमें बताने की जरूरत नहीं है कि ये पति-पत्नी हैं।' राकेश इस कान से सुनता, उस कान से निकाल देता ऐसी व्यर्थ की बातों को।

रात के आठ बजे वह भारी मन से बाइक पर बैठाता और अस्पताल के मेन गेट तक छोड़कर आता। सुबह साढ़े आठ बजे जब वह ड्यूटी से छूटती, अस्पताल के कपड़े बदलकर हाथ में अपना पर्स टाँगे तेज कदमों से मेन गेट पर पहुँचती, राकेश को बाइक की सीट पर बैठे अपनी प्रतीक्षा करते पाती।

'नींद नहीं आई क्या रातभर?' वह होंठ तिरछे कर मुसकराती।

'मेरी जान तो यहाँ फँसी थी, नींद कैसे आती? तुम्हारी नौकरी तो मेरी जान की दुश्मन बन गई है, यार!' वह गाड़ी स्टार्ट कर देता।

घर-आँगन साफ-सुथरे, किचन व्यवस्थित, नाश्ता तैयार, बस नहाओ-धोओ, नाश्ता करने के बाद दोपहर के लिए जो बनाना हो बनाओ या फिर वही तैयार कर देता। किसी का घर में आना-जाना उसे कतई पसंद नहीं था। शादी के महीने भर के अंदर ही लड़-भिड़कर अलग हो गया था घर-परिवार से। जीवन के बत्तीस बसंत उसने एकाकी गुजारे थे। चार-चार बहनों की शादी! वह भी चारों कोने बराबर की ढुँढ़ाई। जोड़ी अच्छी हो, जाति-बिरादरी सही-सलामत, सरकारी नौकरी, पुख्ता गृहस्थी, छोटा परिवार, सास-ननद का झंझट न हो तो अच्छा। एक भी जगह समझौते की बात आते ही माँ-बहनों का तांडव देख लो घर में। सबकुछ देखकर शादी की गई थी, फिर भी बड़ी दीदी का नहीं पटा ससुराल में, साल के भीतर ही लौट आई अपना सामान लेकर फिर कभी ससुराल न जाने के लिए। दस वर्ष तो तलाक का मुकदमा चला, तब कहीं जाकर मुक्ति मिली उस महँगे और झूठे बंधन से। बाकी तीनों ठीक हैं, जैसी भी हैं। वह फूँक-फूँक कर कदम रख रहा था।

वह समझती है सबकुछ। चार भाइयों की प्यारी बहना जो ठहरी।

सुपरिचित कथाकार। अब तक सात कहानी-संग्रह, दो यात्रा-संस्मरण, वृहद उपन्यास-१, दस बालोपयोगी पुस्तकें, 'पुकार जगन्नाथ की' (यात्रा-संस्मरण) प्रकाशित। छत्तीसगढ़ी राजभाषा सम्मान, न्यू कबीर सम्मान, राज्यपाल शिक्षक सम्मान, छत्तीसगढ़ रत्न, राष्ट्रपति पुरस्कार, साहित्य मंडल, नाथद्वारा से मानद उपाधि।

सब अपने-अपने काम-धंधे में लगे हैं, शादी होती गई, चूल्हे अलग होते गए, पुस्तैनी संपत्ति बँट गई। एक छोटे से कमरे में रहती थीं माँ-बेटी। जब से होश सँभाला, हर पल जिंदगी ने कुछ-न-कुछ सिखाया। माँ का भाभियों की उतरन सिल-सिलकर पहनना, एक-एक पैसे के लिए कठिन श्रम करना, ऊपर से संदेह भरी नजरों का सामना।

'सब नाटक है इसका। कहीं-न-कहीं से यह हमारा ही हक मारती है, बेटों से माँगती होगी, बत्ती मार कितने की बना लेती होगी?'

दुःख-सुख सहते दसवीं पास किया था उसने, और उसी समय जीवन का एक अहम फैसला ले लिया था। सहेली के भाई की मदद से उसने नर्सिंग प्रशिक्षण में प्रवेश ले लिया। भाइयों की फटकार पर जरा भी ध्यान नहीं दिया, ''यह क्या करने लगी? सबका गू-मूत करेगी? रात-रात को अस्पताल में ड्यूटी करेगी? समाज में बदनामी हो गई तो शादी भी नहीं होगी, ताउम्र छाती पर मूँग दलेगी।''

''लोग क्या कहेंगे? चार-चार भाई मिलकर एक बहन को नहीं पाल सके।'' वह मन-ही-मन मुसकराती।

उसने मन लगाकर पढ़ाई की। प्रशिक्षण समाप्त कर वह एक जिम्मेदार नर्स बन गई। जाँजगीर चाँपा जिला चिकित्सालय में उसकी पद स्थापना हो गई। तब से बस माँ ही उसकी जिंदगी थी। अस्पताल में मरीजों की सेवा और घर में माँ की। माँ का स्वास्थ्य अभी ठीक था, वे उसे घर की चिंताओं से मुक्त रखती थीं। उसे लगा, माँ कहीं आस-पास ही है। उसने उस दिन मातृनवमीं मनाई थी, शास्त्र विरुद्ध काम था। पितृतर्पण का अधिकार पुत्र को ही प्राप्त है। उसका मानना है कि मान्यताएँ सार्वकालिक नहीं होतीं, आज के युग में पुत्रियाँ भी सामर्थ्यशालिनी हो रही हैं, उसने सदा माँ की सेवा की, उसका दिया जल माँ को अवश्य मिलेगा, उसे विश्वास था।

''तू परछाईं क्यों बन गई माँ ऽ···ऽ···?'' उसके मुँह से एक निश्श्वास खारिज हुई। रात के आठ बज चुके थे, वह ड्यूटी जाने के लिए उठ गई। उसने दरवाजे की ओर देखा, जहाँ उसे छोड़ने जाने के लिए राकेश अपनी बाइक के साथ तैयार मिलता था। आज वहाँ कोई नहीं था। आर्य और आभार

के बिस्तर खाली थे, उसके दिल में एक हूक सी उठी। ''ऐसा क्या किया प्रभु मैंने, जो मेरा आशियाना वीरान हो गया?'' उसके प्रश्न का उत्तर न पहले मिला था न आज मिला। उसका सिर भारी हो रहा था, एक कप चाय पीकर उसने स्वयं को रातभर जागने के लिए तैयार किया। तरह-तरह के मरीज, उनकी अलग-अलग दवाइयाँ, पता ही नहीं चलता, कब सुबह हो गई? वहाँ पहुँचकर वह जैसे कोई और ही हो जाती है। उस दिन भी तो उसने पूरी रात काम किया था, जिस रात राकेश उसके मुँह पर थूककर चला गया था। शादी के बाद एक-एक माह माँ चारों बेटों के पास रह आई, उसके घर का टिकट कटा दिया छोटे भाई ने, संकोच से नजरें झुकाए वे उसके दरवाजे पर आ खड़ी हुईं, क्या उसे माँ को उल्टे पाँव लौटा देना था? वह बेटी थी, इसीलिए माँ के प्रति उसका कोई कर्तव्य ही नहीं बनता था? वह ऐसा नहीं कर सकी थी, उसे अंदाजा नहीं था राकेश की प्रतिक्रिया का। दो दिन तो वह मुँह लटकाए सहता रहा माँ की उपस्थिति, उसने ढंग से न खाना खाया, न ही उससे बात की।

''कब तक रहेंगी माताजी?'' उसने मौका देखकर पूछ लिया था।

''देखो राकेश! तुम्हारा यों घर का काम करना मुझे अच्छा नहीं लगता, माँ घर सँभाल लेंगी तो हम दोनों बाहर का काम करेंगे, आगे हमें बहुत कुछ करना है। घर बनाना है, परिवार बढ़ाना है। एक की कमाई में क्या-क्या करोगे? यही सब सोचकर मैंने उन्हें बुलाया है।'' उसने बात सँभालने की भरसक कोशिश की।

''तुम्हारा मतलब हम अपनी गृहस्थी स्वयं सँभालने योग्य नहीं हैं! आधी उम्र बीत चुकी है, अब तक तुम्हारा बचपना नहीं गया। अरे, काम मिले तो कोई ढंग का। हम सब कर लेंगे, वापस भेजो जल्दी-से-जल्दी!'' उसने अपना फैसला सुना दिया।

कहाँ भेज दे रैना बूढ़ी और बेसहारा माँ को? उसने भाइयों से बात की, उन्होंने टका सा जवाब दे दिया, ''जैसे तुम्हारा पति उसे नहीं रखने दे रहा है, वैसे ही हमारी पत्नी को उसका व्यवहार एकदम नापसंद है, रखो चाहे बाहर धकेल दो।''

''भाई, मेरी खुशी के लिए माँ को ले जा। मैं उनका पूरा खर्चा दूँगी। राकेश को समझाने में थोड़ा समय लगेगा मुझे।'' वह फोन पर बोलते-बोलते रो पड़ी थी।

''कहती तो हो कि बेटी नहीं बेटा हो, अब दिखाओ बेटे का साहस।'' उसे निराशाजनक उत्तर मिला बड़े भैया की ओर से।

''आज मैं अभागन एक पति के बिना इस धरती पर बोझ हूँ, मेरे पाँचों बच्चे मुझे अपने घर में नहीं रख सकते, मुझे उठा लो भगवान्!'' माँ जार-जार रो रही थी।

'रातों की नींद खोटी कर वह कमाती है। उसे कौन रोक सकता है ऐसे छोटे-मोटे फैसले करने से?' विवशता की चोट से दीनता की चादर ओढ़े सो रहा आत्माभिमान जाग उठा।

''माँ! जिसकी मुझ जैसी बेटी हो, वह अभागन कैसे हो सकती है? तू अपने आँसू पोंछ ले! हम दोनों जहाँ भी रहेंगी, साथ रहेंगी।'' उसने कसकर माँ को गले लगा लिया।

''आज टिरेफिक के मारे देर हो गई, सिस्टर! जल्दी करो, आठ से ज्यादा हो गया।'' रिक्शावाला हड़बड़ा रहा था। उसने दरवाजे पर ताला डाला और कपड़े सँभालती रिक्शे पर बैठ गई।

इस समय सड़कों पर भीड़ कुछ ज्यादा ही रहती है। आगे सब्जी बाजार, फिर खोवा मंडी, फिर कपड़ा मार्केट बस उसके बाद जिला अस्पताल का भव्य भवन दृष्टिगोचर होने लगता है। आज की रात जागते ही गुजरने की आशंका थी, ऑपरेशन वाले मरीज थे उसके वार्ड में। डॉ. वर्मा की भी रात ड्यूटी चल रही थी इन दिनों। उनकी याद आते ही उनका सौम्य चेहरा आँखों के आगे नाच उठा। कुछ ही लोग तो हैं, जो उसके फैसले की कद्र करते हैं, डॉ. वर्मा उनमें से एक हैं। हर मुश्किल से उबारने वाले। यों तो भाइयों के चरित्र ने उसका रिश्तों से विश्वास डिगा दिया था, किंतु डॉ. वर्मा के व्यवहार ने उसके मन से विश्वास की जड़ को कटने से बचा रखा था।

''रैना! यदि मेरे ऊपर भरोसा है तो अपनी माँ को उनके घर भेज दो। लोग कह रहे हैं, राकेश को दहेज में सास मिली है।''

उनका कोई घर हो तब न भेजे रैना—''तुम्हारा क्या बिगाड़ रही है? बरामदे में खाट पर सोती है। कितने ऐसे हैं, जो किसी अपने के लिए तरसते हैं और हम हैं कि उन्हें अपने से दूर करना चाहते हैं।'' हर प्रकार से समझाया था रैना ने।

एक दिन तो वह बाँह से खींचकर उन्हें घर से निकाल रहा था—''तुझे शर्म नहीं आती बुढ़िया, बेटी के घर का अन्न खाते? नरक जाएगी मरकर। जा अपने घर। तेरे बेटे कहते हैं, माँ हमारे पास रहती ही नहीं।'' वह अपनी मर्यादा भूलकर गाली-गलौच पर उतर आया था। पड़ोसी खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे। सुबह का समय था, वह रातभर की जागी, थकी-माँदी अस्पताल से घर पहुँची थी। हाँ, उसी रात तो उस जवान लड़के की मौत हुई थी, जिसकी शादी को अभी महीना भी नहीं गुजरा था। जहरीली शराब पीने से वह हादसा हुआ था। दिमाग में उसकी माँ की चीत्कार गूँज रही थी, घर का जो तमाशा देखा तो अपना आपा खो बैठी।

माँ भयभीत आँखों से उसे देखती, उसके पीछे छिप गई। उसने अनुभव किया, जैसे उसे तेज बुखार हो, वह थर-थर काँप रही थी। उसने उसे खाट पर सुलाया। दवाई दी। रैना को लगा था कि अब राकेश हद से बाहर चला गया है, उससे शादी करने में यह भी एक वजह थी कि राकेश बेरोजगार था, उसे लगा था एक की कमाई में तीन का गुजर आराम से हो जाएगा, इस बीमारी के बारे में उसने कोई विचार नहीं किया था।

''जब मैंने कह दिया था कि माँ यहीं रहेगी, तब उससे बात करने की क्या आवश्यकता थी? कमा तो मैं रही हूँ, तुम भी आराम से रहो, उसे भी रहने दो।'' उसके स्वर में जो स्वामित्व की गूँज थी, जिसे सुनकर राकेश तिलमिला उठा।

''कमाई का घमंड दिखा दिया नऽ…ऽ? वे और होंगे, जो किसी का ताव सहें, रहो अपनी माँ के साथ!'' वह गालियाँ बकता उसी समय घर से निकल गया था।

रैना ने इस अंजाम की कल्पना भी नहीं की थी, राकेश के बिना जीने की बात वह सोच भी नहीं सकती थी। बुखार उतरने के बाद माँ रोती रही

थी, ''मैं कैसी माँ हूँ, जो अपनी बेटी का घर तोड़ रही हूँ? न मेरे लिए इस लोक में जगह है, न उस लोक में।''

वह उसके घर भी गई, सास-ससुर से गोहार लगाई, किंतु बात वहीं की वहीं रह गई। उन्हीं दिनों रैना ने अपनी कोख में आर्य के अस्तित्व का अनुभव किया था। उसने बड़ी आशा से राकेश को फोन करके बुलाया था। वह उसी शाम आ गया था।

''भगवान् की लीला कोई नहीं समझ सकता, सोचो, यदि माँ चली गईं तो रात के समय हमारे होनेवाले बच्चे को कौन सँभालेगा?''

''मेरी माँ नहीं है क्या? किसी दूसरे के भरोसे हम बच्चा पैदा नहीं कर रहे हैं।'' राकेश का मन जरा भी नहीं बदला। वह ज्यादातर अपने घर पर रहने लगा था, आर्य के जन्म के समय उसे बुलाया था रैना ने।

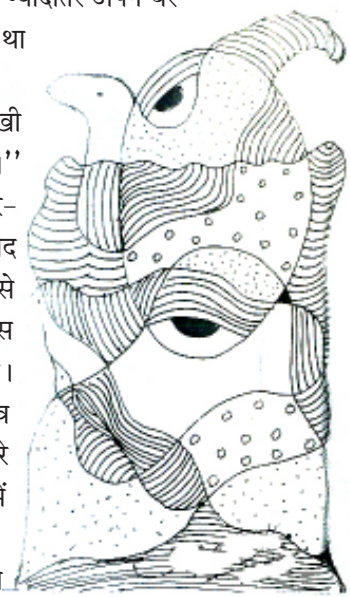

''इसी दिन के लिए तो इतने दिन से पालकर रखी हो? मैं नहीं समझता कि मेरी कोई आवश्यकता है तुम्हें।'' उसने फोन काट दिया था। प्रसव-पीड़ा झेलते हुए बार-बार उसकी निगाहें दरवाजे की ओर उठ जातीं, शायद राकेश आ गया हो! या सासू माँ या चारों भाइयों में से कोई? उसकी आँखों के कोरों से नीर झर रहा था, उस समय डॉ. वर्मा ने उसे मानसिक संबल प्रदान किया था। माँ साथ-साथ थी। वह वर्षों से प्रसव कराने का दायित्व उठा रही थी, उसे भली-भाँति पता था कि वह किस खतरे से जूझ रही है। इस समय वह अपने लोगों के बीच में रहना चाहती थी।

''मैं आपकी पीड़ा समझ सकता हूँ, सिस्टर! बस इतना ही याद दिलाना चाहता हूँ कि चयन आपका था, अपने फैसले पर खुश होना सीखो, फिर माँ जिसके साथ हो, उसे और किसी की आवश्यकता भी क्या है?'' डॉ. वर्मा उसे सांत्वना देते।

रिक्शे से उतरकर जब वह तेज कदमों से अपने वार्ड में पहुँची, तब तक आधा घंटा लेट हो चुकी थी, ड्यूटीवाली नर्स झोले जैसा मुँह लटकाए उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, ''सॉरी सिस्टर! मैं लेट हो गई! ट्रैफिक जाम के कारण रिक्शेवाला देर से पहुँचा।'' उसने होंठों पर सिफारिशी मुसकान लाकर कहा और चट-पट अपना काम समझा। कैबिन में जाकर ड्रेस बदलकर बाहर आई, तब-तक वह जा चुकी थी। ड्यूटी के बाद का एक-एक पल काटना किस कदर जानलेवा होता है, वह अच्छी तरह जानती है। राकेश को तो पाँच मिनट की देर भी बरदाश्त नहीं थी, ''यह है तुम्हारे आने का समय? हम तो साले बेवकूफ हैं, जो पंद्रह मिनट पहले से आकर झख मार रहे हैं।'' ये तो गुजरे जमाने की बातें हो गईं, अब न तो घर में कोई राह देखनेवाला है, न ही अस्पताल के दरवाजे पर इंतजार करनेवाला।

''सिस्टर! मरीज को बहुत दर्द हो रहा है, जल्दी चलिए!'' छह नंबर बेडवाले थे, अगले दिन ऑपरेशन होना था अपेंडिस का, आज की रात सँभालना था उसे। वह तेज कदमों से बेड नंबर छह के पास पहुँची और पहले से कलाई में लगी निडिल के द्वारा दर्द की दवा मरीज की नशों में पहुँचा दी। और भी आवाजें उठ रही थीं, कराहें, चीखें, मिलने आनेवालों की आपसी बातचीत, वह पूरी तरह व्यस्त हो गई अपने काम में। डॉ. वर्मा अपने कैबिन में आराम कर रहे थे, आवश्यकता होने पर वह उन्हें बुला लेती। सारा काम निबटाकर वह कमर सीधी करने के लिए बैठी ही थी कि उसे इमरजेंसी विभाग में हलचल सुनाई दीं—'लगता है कोई सीरियस पेशेंट आ गया', उसने स्वयं से कहा और फुरती से उठ खड़ी हुई।

वार्ड ब्वॉयज एक आदमी को स्ट्रैचर पर लादे ऑपरेशन थियेटर की ओर तेजी से जा रहे थे। डॉ. वर्मा पहुँच चुके थे। नर्सें ऑपरेशन की तैयारी में लग चुकी थीं।

''कोई रिश्तेदार हो तो आकर साइन कर दे!'' नर्स पुकार रही थी।

''हम तो राहगीर हैं, चोट खाया पड़ा था, सो हम ले आए।'' एक आदमी ने दबी जबान से कहा। सुनकर नर्स असमंजस में पड़ी थी।

किसी अज्ञात प्रेरणा से रैना ने ऑपरेशन थिएटर में जाकर घायल व्यक्ति को देखा, उसे देखते ही उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

''मैं करूँगी सिस्टर सिग्नेचर! लाओ फाइल मेरे पास।''

''आप कैसे जिम्मेदारी लेंगी? आप का कुछ लगता है क्या?'' नर्स उसका मुँह देखने लगी। उसे कुछ समझ में नहीं आया।

''हाँ, मैं इनकी पत्नी हूँ।'' उसकी साँसे बेकाबू हो रही थीं।

''पर आपका तो तलाक हो चुका है न···ऽ···ऽ'' नर्स ने अर्थपूर्ण दृष्टि से उसे देखा।

''डॉ. मैं इनकी जिम्मेदारी लेती हूँ, आप स्वयं देख रहे हैं सर इनकी हालत। क्या यह छानबीन का समय है?''

''ठीक है, ले लो सिग्नेचर। आगे के किसी विवाद के लिए आप ही उत्तरदायी होंगी, सिस्टर!'' डॉ. वर्मा ने निर्विकार भाव से कहा।

''थैंक्यू सर! क्या मैं आपके साथ आ सकती हूँ?''

''नहीं सिस्टर! आप अपने वार्ड में जाइए। चिंता मत कीजिए, हम हैं न यहाँ।'' वह उदास मन से अपने वार्ड में आ गई। इस समय तक ज्यादातर लोग सो चुके थे। रैना की स्थिति कुछ कर पाने की नहीं थी। 'हे प्रभु, उसकी रक्षा करना!' उसके हाथ अदृश्य शक्ति के प्रति जुड़ गए। नजरों के द्वारा दिल में समा जाए, ऐसा रूप था उसका, छह फुट की ऊँचाई सोने जैसा दप-दप करता रंग बातचीत का मोहक अंदाज और प्रेम की दीवानगी। आर्य के जन्म के तीन वर्ष बाद आया एक दिन, ऐसा सहज आगमन, जैसे बाजार से आ रहा हो, आर्य को गोद में लेकर चूमता, माँ का हालचाल पूछा। किसी शिकवे-शिकायत का अवसर नहीं मिला रैना को। उसे लगा, राम वन से वापस आ गए। अब वह उसे छोड़कर कभी नहीं जाएगा, परंतु वह तो कुँआर का मेघ निकला, न जाने किस दिशा से उड़ता हुआ आया,

झमाझम बरसा और फिर गायब! उसने सुना था, जमीन की दलाली में अच्छी कमाई करने लगा है। उसने फोन किया तो उठाया नहीं, वह अनुभव कर रही थी कि उसका पति उसे एक और सौगात देकर चला गया। एक दिन दूसरे नंबर से फोन लगाकर उसने उसे बता दिया कि उसके परिवार में एक नया सदस्य आनेवाला है, तब वह अनोखे अंदाज में हँसा और जो कुछ कहा, उसे रैना ने महज परिहास समझा। ''तुम ही जानो कैसे परिवार बढ़ा रही हो?'' उसने उसे घर आकर साथ में रहने का आमंत्रण दिया, जिसे उसने गंभीरता से नहीं लिया।

आभार के जन्म पर भी न घर से कोई आया, न वही आया। मन में चुभे नागफनी के काँटों पर खुशी के फूल मुसकरा रहे थे। उसे विश्वास था कि एक-न-एक दिन उसका पति अवश्य घर वापस आएगा।

एक दिन उसे कोर्ट से तलाक का नोटिस मिला, पर जिसमें पति-पत्नी के तीन वर्ष से अधिक समय तक अलग रहने के आधार पर तलाक की माँग की गई थी। यह नोटिस तो उसके चरित्र पर आघात करनेवाला था। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि राकेश उसके चरित्र पर ऐसा लांछन लगा देगा। अब वह कहाँ-कहाँ प्रमाणित करती फिरेगी कि उसका पति ही उसके बच्चों का पिता है। उस दिन वह जी भरकर रोई थी, 'कायर! बच्चों की जिम्मेदारी से बचने के लिए ऐसा कर रहा है। आज तक कौन सी जिम्मेदारी निभा दी, जिससे थकावट आ गई, हतभागी है, जो इतने सुंदर-सुंदर बच्चों को दुत्कार रहा है। किसी ने कहा है, जो कुछ होता है, अच्छे के लिए ही होता है। बच्चे सिर्फ और सिर्फ मेरे हैं। अब तो कानून भी बन गया है कि बच्चे के नाम के साथ माँ का नाम लिखना ही पर्याप्त है। मेरे भाग्य में पति का सुख इतना ही लिखा था।' उसने स्वयं को समझा लिया। उसने कोई प्रतिरोध नहीं किया और उसके साथ परित्यक्ता का लेबल चिपक गया।

जान-पहचानवालों की बेधक निगाहें, व्यंग्य-बाण झेलना उसकी नियति में शामिल हो गया। कथित भले घरों की महिलाएँ उससे दूरी बनाकर चलने लगीं। मकान-मालिक ने घर से निकाल दिया। बैंक से लोन लेकर उसने एक छोटा सा घर खरीद लिया। उसे पता था, जहाँ जाएगी वहाँ से भगाई जाएगी। उसके जीवन में घट रही घटनाओं ने माँ को तोड़कर रख दिया। वह बीमार रहने लगी थी।

''देख लो! सफेद कपड़ोंवाली कितने काले कारनामे वाली है, दो-दो बच्चे पैदा कर लिये और बच्चों के बाप का पता ही नहीं है। ऐसी औरतें ही नौकरीवाली औरतों को बदनाम करती हैं।'' ऐसी बातें तो रैना को अकसर सुननी पड़तीं।

''चलो ठीक है, बच्चों में तो हिस्सेदारी नहीं है किसी की!'' वह हर हाल में स्वयं को संयत रखती।

टन्...टन्...टन् घड़ी ने रात के तीन बजाए, उसका मन व्याकुल हो रहा था, वह उठकर इमरजेंसी की ओर चल पड़ी।

जैसे ही वह वहाँ पहुँची, डॉ. वर्मा ऑपरेशन थियेटर से निकलते दिखे। उसने प्रश्न पूछती आँखों से उन्हें देखा।

''सिर का ऑपरेशन करना पड़ा, खून बहुत बह गया है, अब ठीक है वैसे। हाँ, मैंने मेडिकल स्टोर से सारी दवाइयाँ मँगवाई। लगभग तीस हजार की होंगी, जमा कर देना।'' वे आराम करने के लिए अपने कैबिन में चले गए।

वह दबे पाँव ऑपरेशन थियेटर में घुस गई। वह पट्टियों में लिपटा बेहोश पड़ा था। उसकी दशा देखकर उसकी आँखें भर आईं। इतना कुछ हो गया, उसने कभी उसके अनिष्ट की कामना नहीं की। इसके अत्याचार वह भूल भले ही नहीं पाई है। उसने बड़े विश्वास के साथ आर्य का नाम एक अच्छे से स्कूल में लिखवाना चाहा। अभिभावक की जगह उसने केवल माता का नाम लिखा, प्रबंधन ने स्वीकार नहीं किया।

''मैम! पिता का नाम लिखना आवश्यक है।'' वह और कई स्कूलों में गई, परंतु उसे सफलता नहीं मिली। विवश होकर उसने पिता का नाम लिखवा दिया, इस पर इसने पेपर में विज्ञप्ति जारी करके कहा कि उसका कोई पुत्र नहीं है। उसे अपमानित होकर आर्य को घर बैठाना पड़ा। बच्चों के भविष्य के लिए उसे न्यायालय की शरण लेनी पड़ी। वर्षभर की जिल्लत के बाद डी.एन.ए. टेस्ट की रिपोर्ट के आधार पर आर्य और आभार दोनों राकेश के पुत्र सिद्ध हुए। सभी अखबारों ने उसके साहस की प्रशंसा की। इसी बीच माँ परलोकवासिनी हो गई। फैसले के दूसरे दिन वह अपने पूरे परिवार के साथ आया था।

''अब तो कोर्ट से यह सिद्ध हो गया है कि बच्चे मेरे हैं। हम इन्हें लेने आए हैं, अपने रिश्तेदारों में इनकी पहचान कराएँगे।'' वह ऐसे बोल रहा था जैसे उनके बीच कुछ अघटित नहीं घटा।

''तुम तो जानते थे न कि ये तुम्हारे हैं। फिर क्यों इतना तमाशा किया?'' उससे पूछे बिना रहा न गया।

''ताकि तुम तिलमिला उठो, विरोध करो, सच कहता हूँ, जब तुमने सारे आरोप चुपचाप स्वीकार कर लिये, तब मैं बहुत दु:खी हुआ था। लगा जैसे मैं इतने दिन बहुत बड़े भ्रम में था, जिस पर मेरा अखंड विश्वास था, वह बेवफा थी। किंतु आज मेरा विश्वास जीत गया है। मैं बहुत खुश हूँ।'' उसके रोम-रोम से प्रसन्नता टपक रही थी।

''मैं तो जीतकर भी खुश नहीं हूँ। तुम मेरे बच्चों को लेने आए हो, इनके बिना मैं कैसे जीऊँगी, सोचा है कभी?'' वह गम की प्रतिमा बन गई थी।

''हम सदा के लिए इन्हें नहीं ले जा रहे हैं, बस दो चार दिन।''

''आभार अभी बहुत छोटा है, मेरे बिना कैसे रह पाएगा। मैं भी साथ चलती हूँ।''

''तुम किस हक से चलोगी? तुम्हारा मुझसे तलाक हो चुका है।''

वह दोनों बच्चों को ले गया। दो माह हुए वापस नहीं लाया और आज इस कदर लहूलुहान यहाँ लाया गया। 'भगवान् भला करे उन लोगों का, जो इसे अस्पताल तक पहुँचा गए।' वह उसके सिरहाने खड़ी सोच रही थी।

बी/२८ हरसिंगार, राजकिशोर नगर
बिलासपुर (म.प्र.)
दूरभाष : ९९०७१७६३६१

राम झरोखे बैठ के

बाबू की बीमारी

● गोपाल चतुर्वेदी

वह बीमार है। साँस फूलती है। कुछ भी हजम नहीं होता है। पर सबको निर्देश है। किसी को कानोकान खबर नहीं होनी चाहिए। डॉक्टर घर आकर देख जाते हैं, विशेषज्ञों की सलाह भी ली गई है। हर प्रकार के टेस्ट हो रहे हैं। पैसे से संभव है, अच्छे-से-अच्छा इलाज खरीदना। इसकी उनके पास कमी नहीं है। एक बार उन्होंने सोचा भी कि एक अस्पताल बना लें। मुख्यमंत्री से बात भी की थी कि इससे गरीबों का कल्याण होगा। दिक्कत यही है। आजादी के बाद से सब गरीबों के कल्याण पर उतारू हैं। उसके लिए सड़क, कारखाने, अस्पताल क्या-क्या नहीं बनते हैं। नतीजतन गरीबों का हो न हो, उनका भला करनेवालों का कल्याण हो जाता है। किसी की नई कोठी बनती है, किसी का नया धंधा। यह भी तय हो गया था कि चुनावी फंड में वह कितना चंदा देंगे और बदले में रियायती दर पर कितनी जमीन हथिया लेंगे। पर चुनाव में मुख्यमंत्री की हार से उनका निवेश तो डूबा ही, अस्पताल की बात भी आई-गई हो गई।

यों अस्पताल होता भी तो फर्क क्या पड़ता? आज की मीडिया दफ्तर तो दफ्तर, घरों के बेडरूम में भी झाँकने को प्रस्तुत है। उसे यही डर सताता है। कल कहीं कोई खोजू खबरनवीस उसकी बीमारी को खबर न बना डाले। बड़ा बेटा तो अपनी माँ से शिकायत भी करता है, ''जाने क्यों बाबूजी जिद पर अड़े हैं। संसार में कोई है ऐसा, जो बीमार न पड़ता हो? अजीब सा दिमागी फितूर है यह मानना कि बड़े लोग रोग-मुक्त हैं, उनकी बीमारी से बाजार पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। शेयर नीचे गिरेंगे। बिक्री में मंदी आएगी, मुनाफा धड़ाम होगा।''

माँ को उससे हमदर्दी है, पर करे क्या? पति उसकी सुनते हैं, जो समझाए? उसकी अकल में तो वही जाम हो गया है, जो उसके बाप-दादा ने बताया है कि बड़े लोग सेठ-साहूकार हों या नेता-मंत्री, बीमार नहीं पड़ते हैं। बस जन्म लेते हैं। पैसा कमाते हैं और सीधे स्वर्ग सिधारते हैं। बेटे ने एक और जुगत भिड़ाई, ''माँ, आप ही पूछ लो बाबूजी से। वह राजी हों तो इंग्लैंड-अमरीका कहीं भी उनका इलाज हो सकता है। हम ने तो वहाँ के अस्पतालों से संपर्क भी कर लिया है। कोई सवाल करे तो बिजनेस ट्रिप का बहाना बना सकते हैं।'' माँ ने बात बेटे पर ही डाल दी, ''तुम जानो और तुम्हारे बाबू जानें। तुम्हें तो पता है ही कि कभी हमारा कहा किया है, जो आज करेंगे?''

ऐसा नहीं है कि इसके बाद वह हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ गई हों। पूजा-पाठ और ग्रहों की चाल पर पति-पत्नी दोनों का अडिग विश्वास है। यहाँ तक कि घर में एक मंदिर भी है, जहाँ एक वेतन-भोगी पंडित नियमित रूप से पूजा-अर्चना में लगा रहता है। हर वर्ष का ग्रहयोग बाँचने को नामी-गिरामी और भरोसेमंद ज्योतिषी पधारता है। उन्होंने उसी को बुलवाया और कुंडली दिखाई। उसने बिना वक्त गँवाए मंगल में राहु के अंतर को सेहत की गंभीर समस्या की जड़ बताकर इस दुष्चक्र की शांति के लिए हजारों का नुस्खा बता दिया। साथ ही यह भी भविष्यवाणी की कि ग्रहों के इस खतरनाक गठजोड़ से शरीर की काट-छाँट यानी ऑपरेशन भी संभावित है, ''मालकिन माई! अगले पंद्रह दिन 'मार्केट' से बचना है। आप यहाँ मालिक का खयाल रखें, हम ऊपरवाले मालिक से रहम की गुहार लगाते हैं।''

जब घर पर ज्योतिषी ऊपरवाले की कुंडी खटखटाने का दाँव खेलकर अपनी हजारों की जुगाड़ फिट कर रहा था तो दफ्तर में बड़ा बेटा लैपटॉप से 'बाबू' के रोग के लक्षण, डॉक्टरों-विशेषज्ञों के 'प्रिसक्रिप्शन' आदि मेल से विदेश भेजकर उनसे चर्चा में व्यस्त था। कुंडली और कंप्यूटर का यह सहअस्तित्व भारत को अपनी तरह का अनूठा अजूबा बनाता है, जहाँ प्रगति की रेल ऐसे लौहपथ पर दौड़ रही है, जिसकी पटरी उन्नीसवीं और दूसरी इक्कीसवीं सदी की है। दुर्घटनाएँ भी होती हैं, पर कभी-कभार। जानकार दाँतों तले उँगली दबाते हैं कि ऐसे बेमेल ट्रैक पर ट्रेन दौड़ना तो अलग, चल भी कैसे रही है? बेटा सोच रहा था कि यदि बाबू ऐसे ही निढाल पड़े रहे तो धीरे-धीरे और अस्वस्थ ही होंगे।

पिता मुँह पर उसकी प्रशंसा करें, न करें, पर मन-ही-मन मानता भी है और पत्नी से भी बता चुका है कि उसके दोनों बेटे आज के युग में अपवाद हैं। खून के रिश्ते भी अब केवल स्वार्थ के संबंधों के पर्याय बन चुके हैं। बाबू ने खुली आँखें और गहरी रुचि से दुनिया देखी है। बूढ़ा बाप जरा भी शिथिल हुआ तो पुत्र मनाता है कि उससे जल्दी-से-जल्दी छुटकारा मिले। इतना ही नहीं, उपेक्षा के व्यवहार से जता भी देता है कि जीवित बाप अब कोई उपयोगी जीव न होकर सिर्फ धरती का बोझ है। अपनों के स्नेह के अभाव में अच्छे से अच्छा इलाज भी रोगी को जिंदा रखने में शायद ही कामयाब हो? बेटा बीमार बूढ़े-बाप को दिनोदिन पाँच तारा अस्पताल में देखने न आए तो उसकी टें बोलने की संभावना स्वस्थ होने से कहीं अधिक है। बाबू ने कई समकालीनों को अपनों के दुर्व्यवहार से प्राण त्यागते देखा है।

कइयों की मिजाजपुरसी के लिए तो वह स्वयं भी इन पाँचतारा अस्पतालों में जा चुका है। वहाँ बीमार से मिलने का वक्त निश्चित है। पर

कोई-न-कोई परिजन का अस्पताल में उपस्थिति हर समय आवश्यक है। उमरदार का क्या भरोसा? कभी भी आपातस्थिति आ सकती है। कौन कहे, इतना वक्त मिले, न मिले कि घरवालों को सूचित किया जा सके? ऐसी परिस्थिति में किसी-न-किसी के रहने से सूचना की जिम्मेदारी तो अस्पताल भले ही आंशिक रूप से ही सही, थोड़ा-बहुत तो मुक्त हो ही जाता है। मुलाकात के सीमित समय भी बीमार अपने पुत्र के प्रति आभार जताने से न चूकता, ''छोटू बेचारा तो पूरी कोशिश कर रहा है। इधर मीटिंग्स में उलझा है, वरना रोज आता रहा है।''

जिसे लाड़-प्यार से पाला-पोसा बड़ा किया, उस बेटे के बारे में अन्यथा सोचना माँ-बाप के लिए कैसे संभव है? उधर बेटा है कि पाँच-तारा अस्पताल के बिल से परेशान है। माँ को सुनाता है, ''पापा में ठीक होने की इच्छाशक्ति नहीं है, वरना अब तो डॉक्टर भी कहते हैं कि उन की बाकी देखभाल घर में ही की जा सकती है। माँ! इस बार आप जाएँ तो उनसे बात कीजिए। अब तक पाँच लाख के ऊपर का बिल हम दे चुके हैं।''

उसकी माँ को भी आश्चर्य होता है। जब पढ़ाई के लिए इसे दून स्कूल और उसके बाद ऑक्सफोर्ड भेजा था, तब क्या उन्होंने खर्चे का हिसाब लगाया था? आज वही बेटा उसी बाप का जीवन बचाने में लगी राशि का हिसाब लगा रहा है, जबकि सारे धंधे और आमदनी बाप की है, उसकी नहीं! इस प्रकरण के बाद भी उनके रोष का पात्र अपना पुत्र न होकर उसकी बहू है, ''हमारा राजा तो बाप-माँ को ही नहीं, हर बड़े को सम्मान देता आया है। यह सारी करतूत बहू की है, जो झूठे प्रेमजाल में फँसाकर पति को पैसे के मापदंड से स्नेह को तौलने का उलटा पाठ पढ़ा रही है।'' इस सबके वाबजूद माँ को अपने सीधे-सादे, भोले पुत्र से हमदर्दी है, ''बीबी की शतरंजी चालों में फँसा बेचारा बेटा करे तो क्या करे!''

उसी रात मित्र को देखकर लौटे बाबू ने पत्नी से घर के दोनों चिरागों की तारीफ की थी, ''देखो जरा, क्या जमाना आ गया है। अग्रवालजी की बीमारी में उनका बेटा उन्हें देखने तक नहीं आता है। बस अस्पताल में भरती क्या कर दिया, जैसे उसके स्नेह और कर्तव्य की इतिश्री हो गई। पढ़ने को अपने दोनों लाड़ले भी विदेश में पढ़े हैं, पर उनके संस्कार विशुद्ध भारतीय हैं।''

आज बीमारी में उन्हें अतीत ही नहीं याद आ रहा है, बल्कि दोनों पुत्रों के प्रति मोह भी जाग रहा है। वह छोटू को बुलवा भेजते हैं। उसका चेहरा लटका हुआ है। उसके मुसकराने की कोशिश उदासी से मिलकर कुछ रुआँसी मुद्रा का आभास देती है। वह चुपचाप आकर माँ के पासवाली कुरसी पर बैठकर पूछता है, ''कैसे हैं बाबूजी?'' बाबूजी कुछ बोलते नहीं हैं, बेटे का हाथ पकड़कर लेटे रहते हैं। उनकी आँखें नम हैं और बेटे की भी। उसे पता है कि बाबू की दशा गंभीर है। बड़े भाई से कल ही टेस्ट के नतीजों को लेकर चर्चा हुई है। डॉक्टरों को शक है कि बाबू को 'प्रोस्टेट' का कैंसर है। डॉक्टरों ने इस अँधेरे में भी रोशनी की किरण खोज ली है। वे बताते हैं कि इसके रोगी आठ-दस साल तो आराम से जी लेते हैं। अब निर्णय यह करना है कि ऑपरेशन हो या 'कीमोथेरैपी'? आप इन्हें जल्दी-से-जल्दी हॉस्पिटल शिफ्ट कर दीजिए तो फिर रोजमर्रा की देखभाल और आगे के टेस्ट वगैरह किए जा सकें।

यह सब न बाबू को पता है, न उस की माँ को। वह रुँधे गले से बाबू से अनुरोध करता है, ''बाबू! मेरी मानिए तो अस्पताल चले चलिए। वहाँ आपके डायट, देखभाल और इलाज की बेहतर सुविधा मिलेगी। प्राइवेट वार्ड में कोई दिक्कत भी नहीं होगी। बस दस-पंद्रह दिनों की बात है। पूरे भले-चंगे होकर घर लौट आएँगे।''

बाबू अपनी टेक दोहराते हैं, ''बीमारी का ढिंढोरा पीटने से क्या फायदा है। आज जो नहीं जानते हैं, वे भी जान जाएँगे। अपने धंधे पर बुरा असर पड़ेगा। अखबारों की अलग चाँदी होगी। हर तरह की उल्टी-सीधी खबरें छपेंगी।''

छोटे बैठता है कुछ देर। फिर निराश होकर बड़े भाई के पास चला जाता है। दोनों चिंतित हैं। मरते दम तक कौन शेयर मार्केट की फिक्र करता है? एक बार आँख मुँदी तब भी क्या बाबू को सिर्फ बैलेंस शीट सूझेगी, नहीं तो मुनाफा। क्या खामखयाली है? बड़े लोग क्या रोगग्रस्त नहीं होते हैं? बस जन्म लेते हैं, कामयाबी से धंधा करते हैं और एक दिन ऊपरवाले के पास चल बसते हैं। तभी दुनिया-जहान को खबर होती है कि फलाने नहीं रहे। दोनों एक ही तथ्य पर गौर करते रहे कि बाबू को कैसे अस्पताल जाने पर राजी किया जाए। फिर उसे डॉक्टर का कथन याद आया, ''अगर कैंसर की शुरुआत है तो निदान में आसानी होगी।'' उसे अचानक खयाल आया। बाबू को अपने फैमिली डॉक्टर पर अत्यधिक भरोसा है। क्या वह उसकी बात मानेंगे? मानें न मानें, कोशिश करने में क्या हर्ज है?

फैमिली डॉक्टर दोनों बेटों के जन्म के पहले से बाबू से जुड़ा है। कौन कहे बाबू उस की सलाह न ठुकरा पाएँ। कैंसर का सुनकर वह भी चौंक पड़ा और तत्काल सहमत हो गया कि बाबू को अस्पताल में भरती करना-ही-करना है। वह अकेला बाबू के पास गया और आकर बोला, ''कल सुबह एंबुलेंस बुलवा लीजिए। बाबू पिछले दरवाजे से अस्पताल जाने को तैयार हैं।'' बेटों ने चैन की साँस ली।

आदमी पीढ़ियों का इंतजाम करता है, पर क्या उसे अगले पल की खबर है? बाबू के जीवन में अगली भोर नहीं आ पाई। सुबह घर के मंदिर के दर्शन करके पत्नी जब जगाने गई तो उनका शरीर ठंडा पड़ा था। हो-हल्ला मचा। डॉक्टर आए। उन्होंने जाँच के बाद प्राण-पखेरू उड़ने की घोषणा की। क्या पता, कैंसर वह झेल भी जाते, पर दिल को अचानक पड़े दौरे से वह बच नहीं पाए।

अखबार में सुर्खियों से उनकी मृत्यु का समाचार छपा। संवेदना जतानेवालों का ताँता लगा रहा। बेटों ने दफ्तर की शोकसभा के बाद छुट्टी कर दी। दुनिया वैसी-की-वैसी चलती रही। न शेयर बाजार में कोई फर्क आया, न बाबू की मृत्यु से उनके माल के मार्केट पर। बड़ा बेटा अकेला बैठा सोच रहा है कि यह केवल इनसान का अहं है, जो उसे इस भ्रम में रखता है कि वह नहीं रहा तो दुनिया ठप होगी। किसी के भी जाने से सिर्फ उसके अपने परिवार के अलावा संसार को कोई फर्क नहीं पड़ता है, न आज तक पड़ा है, न आगे पड़नेवाला है। यों बाबू जिद में सफल रहे। अस्पताल नहीं जाना था, नहीं गए। उन्होंने साबित कर दिया कि बड़े लोग बीमार नहीं पड़ते

हैं, बस यकायक टें बोल जाते हैं।

बड़े बेटे के दफ्तर में उसके आलीशान चैंबर में ठीक उसकी कुरसी के पीछे ऊँचाई पर एक बोर्ड टँगा है। उसपर लिखा है, ''बड़े लोग बीमार नहीं पड़ते हैं। बस पैसा कमाते-कमाते अचानक मर जाते हैं।'' कोई उसके बारे में ताज्जुब से सवाल पूछता है तो बड़ा बेटा यानी कंपनी का वर्तमान प्रबंध निदेशक व चेयरमैन सिर्फ मुसकरा देता है। जाने क्यों, उसे यकीन है कि यदि वह इस लगन से उन्हें अस्तपाल ले जाने की जिद न करता तो शायद बाबू को दिल का दौरा भी न पड़ता और शायद उसे कुछ वर्षों तक कंपनी पर पूरा नियंत्रण भी न मिल पाता। उसकी ख्याति एक स्नेही और निष्ठावान पुत्र की है। पर सच क्या है? सच्चाई उसके अंतर में दफन है।

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

लघुकथा

प्रायश्चित्त

● **राजेश माहेश्वरी**

नर्मदा नदी के किनारे पर बसे रामपुर नामक गाँव में रामदास नाम का एक संपन्न कृषक अपने दो पुत्रों के साथ रहता था। उसकी पत्नी का देहांत कई वर्ष पूर्व हो गया था, परंतु बच्चों की परवरिश में कोई बाधा न आए, इसलिए उसने दूसरा विवाह नहीं किया था। उसके दोनों पुत्रों के स्वभाव एक-दूसरे के विपरीत थे। उसका बड़ा बेटा लखन लालची प्रवृत्ति रखते हुए धन का बहुत लोभी था, परंतु उसका छोटा पुत्र विवेक बहुत ही दातार, प्रसन्नचित्त एवं दूसरों के कष्ट के निवारण में मददगार रहता था। वह कुशल तैराक भी था एवं तैराकी के शौक में काफी समय देता था। वह अपने पिता के कामों में बहुत कम रुचि रखता था। वह सीधा, सरल एवं नेकदिल इनसान था। उसे अपने बड़े भाई पर गहन श्रद्धा एवं विश्वास था।

रामदास ने अपनी वृद्धावस्था को देखते हुए अपनी वसीयत बनाकर अपने सहयोगी मित्र के पास रखवा दी थी और उसे रजिस्टर्ड करने का निर्देश भी दिया था, परंतु ऐसा होने के पूर्व ही दुर्भाग्यवश हृदयाघात के कारण उसकी मृत्यु हो गई। उसके बड़े बेटे लखन ने हालात का फायदा उठाकर अपने पिता के मित्र को येन-केन अपनी ओर मिलाकर वसीयत हथिया ली एवं अपने पिता की हस्ताक्षर युक्त कोरे कागज पर नई वसीयत बनाकर खेती की पूरी जमीन व अन्य संपत्तियाँ—गहने, नकदी आदि अपने नाम लिखकर उन्हें हथिया लिया और अपने छोटे भाई विवेक को संपत्ति में उसके वाजिब हक से बेदखल कर दिया। विवेक के हितैषियों ने उसे न्यायालय जाने की सलाह दी, परंतु उसे ईश्वर पर गहरी श्रद्धा एवं विश्वास था और वह प्रभु से न्याय करने की प्रार्थना करके चुपचाप रह गया।

विवेक अपने सीमित साधनों में ही अपनी गुजर-बसर करके अपना जीवन-यापन कर रहा था। इस घटना के बाद दोनों भाइयों में पूर्णत: संबंध विच्छेद हो गए और लखन के विवाह में विवेक को नहीं बुलाया गया। कुछ वर्षों बाद लखन को पुत्र की प्राप्ति हुई, परंतु समारोह में विवेक की उपेक्षा की गई। वक्त बीत रहा था और लखन का बेटा दो वर्ष का हो गया था।

एक दिन वह अपनी माँ के साथ नाव से नदी पार कर रहा था। तभी न जाने कैसे हादसा हुआ और बच्चा छिटककर नदी में गिर गया। विवेक इस घटना को पास के ही टापू से देख रहा था। उसका मन अपने अपमान को याद करके सहायता करने से रोक रहा था। विवेक ने देखा कि वह अबोध बालक डूबने की स्थिति में आ गया है और उसके दोनों हाथ पानी के ऊपर दिख रहे हैं। यह हृदय-विदारक दृश्य देखकर वह अपने आप को रोक नहीं सका और तुरंत बिजली की गति से पानी में तैरकर उस बालक के पास पहुँच गया। अपनी तैराकी के अनुभवों से उसे बचाकर किनारे की ओर ले आया। इस दुर्घटना की खबर आग की तरह सारे गाँव में फैल गई और लखन बदहवास सा नंगे पैर दौड़ता हुआ नदी के पास आया।

वहाँ पर उसने देखा। काफी लोग विवेक को घेरकर उसके साहस, त्वरित निर्णय एवं भावुकता की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। लखन को देखकर विवेक बच्चे को हाथ में उठाकर उसे देने हेतु उसके पास आया। यह दृश्य देखकर लखन स्तब्ध रह गया और उसके मुख से शब्द निकल पड़े कि, 'आज मैं याचक हूँ और तुम दाता हो।' उसकी आँखें सजल हो गईं और वह फूट-फूटकर रो पड़ा, मानो पश्चात्ताप आँसुओं से झर रहा था। वह रुँधे गले से कह रहा था, ''मैंने तेरे साथ हमेशा अन्याय किया। मेरी धन-लोलुपता एवं लोभी स्वभाव ने मुझे अधर्म के पथ पर ले जाकर भ्रष्ट कर दिया था। तुमने अपने अपमान को पीकर, अपनी जान जोखिम में डालकर मेरे बच्चे की रक्षा की है। मुझे मेरी गलतियों के लिए माफ कर दो और मेरे साथ घर चलो।''

विवेक चुपचाप खड़ा सोच रहा था। तभी वह बालक 'चाचा-चाचा' कहकर उसकी गोद में आने के लिए मचलने लगा। ऐसे भावपूर्ण दृश्य ने लखन और विवेक के दिलों को एक कर दिया। लखन ने विवेक को घर ले जाकर उसे उसकी संपत्ति का हिस्सा देने के कागजात तुरंत बनवाए। इसके साथ ही गहने, नकदी तथा अन्य चल-संपत्तियों में जो भी वाजिब हिस्सा विवेक का था, वह सब उसे दे दिया। लखन ने कहा, 'तुम्हारा अधिकार तुम्हें देकर भी मैं अपने पापों से मुक्त नहीं हो सकता।' यह सुनकर विवेक ने अपने बड़े भ्राता के कंधे पर हाथ रखकर कहा, 'मेरे मन में अब किसी भी प्रकार का दुराभाव नहीं है। आप भी अपने नकारात्मक विचारों को हृदय से निकालकर सकारात्मक शुरुआत करें। यही आपके लिए जीवन का सच्चा प्रायश्चित्त होगा।'

१०६, नया गाँव, रामपुर
जबलपुर (म.प्र.)

विश्व का सबसे सहिष्णु देश—भारतवर्ष

● योगेंद्र शर्मा

देश में सहिष्णुता का मुद्दा आज भी ज्वलंत है। आशा है, चंद 'असहिष्णु' मानुस इसे भविष्य में भी ज्वलंत बनाए रखेंगे। आइए, हम कितने किसके प्रति, कब तक सहिष्णु रहे हैं, इसकी निष्पक्ष पड़ताल करते हैं। प्रारंभ के लिए एक श्लोक पठनीय है—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र, रुद्र, मरुत: स्तुनवन्ति दिव्यै: स्तवै:।
वेदै: सांग पदक्रमोपनिषदै: गावन्ति यं सामगा:॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासन रता: कर्मेति मीमांसका:।
सोऽयं नो विद्धातु वांछित फलं त्रैलोक्य नाथोहरि:॥

इस देश में विभिन्न वृत्तियों के देवता व मनुष्य उस परमपिता को मनवांछित विधियों से भजते रहे हैं। 'वसुधैवकुटम्बकम्' व 'सर्वे भवन्तु सुखिन' का नारा सर्व प्रथम इसी धरती से बुलंद हुआ था। यहाँ अपना इष्टदेव चुनने व इच्छानुसार उपासना करने की लोकतांत्रिक छूट भी थी। इस धरा पर सगुण-निर्गुण ब्रह्म के उपासक साथ-साथ रहते थे। जैन धर्मावलंबी अर्हन् को पूजते थे, मीमांसक कर्म को ही ईश्वर मानते थे, बुद्ध प्रकृति को ही ईश्वर मानते थे व समता में विश्वास रखते थे। सांख्य दर्शन वाले सृष्टि को जड़ (प्रकृति) व चेतन (ईश्वर) का सम्मिलित-स्वरूप मानते थे। चार्वाक यावत जीवेत सुखं जीवेत, ऋण कृत्वा घृतं पिबेत में विश्वास रखता था। संपूर्ण असुर समाज और अरबपति माल्या जैसे असंख्य आज भी उनके अनुयायी हैं। श्रीराम के समकालीन ऋषि जाबालि थे, जो 'जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या' के विचार को मानते थे। कई विचारक ऋषि इस धरती पर हुए, जिन्हें साम्यवादियों का पूर्वज या पहला साम्यवादी कहा जा सकता है। वस्तुत: हिंदुत्व ईश्वर संबंधी समस्त विचारों का समुच्चय था। प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री व भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन का कथन याद दिला दूँ—

''हिंदुत्व कोई धर्म नहीं, अपितु एक प्रकार की जीवन-शैली है।''
इस धरती पर विरोधी विचारधारा वाले के सिर की कीमत कभी नहीं लगाई गई, न ही कोई ईश-निंदा का कानून बनाया गया। शास्त्रार्थ एवं विचार-विमर्श का प्रचलन रहा।

हिंदुत्व के नियम निर्माता ब्राह्मण थे। ब्राह्मण, अर्थात् जो ब्रह्म को जाने। मानवीय कमजोरी के कारण ऐसे नियम बने, जिनमें ब्राह्मणों का ही वर्चस्व था। हर संस्कार, हर उत्सव का नेतृत्व ब्राह्मण पुरोहित ही करता था, उसे ही सर्वाधिक सम्मान व दान प्राप्त होता था। प्रारंभ में ब्राह्मणत्व एक पद था। क्षत्रिय राजा 'विश्वरथ' तपोबल से ब्रह्मर्षि

सुपरिचित साहित्यकार। 'तीसरे रावण की मौत', 'मरद' (कहानी-संग्रह), 'शिनाख्त, लघुकथा संग्रह', 'रूहेलखंड का गांधी' (उपन्यास); 'जुगाड़ से चलता देश' (व्यंग्य-संग्रह); 'राम-राम कंछीलाल' (कहानी संग्रह) एवं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। रेडियो-दूरदर्शन से प्रसारित।

विश्वामित्र कहलाए। उसी प्रकार दस्युकर्म में लीन, अवर्ण बाल्मीकि भी घोर तप द्वारा ब्रह्मर्षि कहलाए। वेदव्यास भी अवर्ण होने पर भी तपोबल द्वारा ब्रह्ममर्षि माने गए। श्रीहनुमान जनजाति (वानर) के होते हुए भी अपने सद्गुणों, ज्ञान व भक्ति के कारण रुद्रावतार माने गए, आज वह देश के सर्वाधिक लोकप्रिय व पूजित देवता हैं; भारत देश की समरसता के प्रतीक हैं।

'रमयेति इति राम:' अर्थात् जो आनंदित करे, वह राम। हमारे श्रीराम, घट-घटवासी थे, चौदह वर्ष का वनवास देनेवाली माँ कैकेयी के प्रति भी अति सहिष्णु थे। अपनी धर्मपत्नी को अपहरण कर उसे बंदी बनानेवाले रावण के प्रति भी उतने ही सहिष्णु कि उसे मनाने को दो-दो शांतिदूत भेजे।

राम की तरह कृष्ण भी घट-घटवासी थे। 'कर्षति इति कृष्ण:' अर्थात् जो आकर्षित करे, वह कृष्ण। वे भी इतने सहिष्णु कि भरी सभा में शिशुपाल की निन्यानबे गालियाँ सह गए। और अत्याचारी कंस द्वारा अपने आठ बहन-भाइयों की हत्या भी सह गए। इस्मत चुगताई (प्रसिद्ध उर्दू लेखिका) ने कृष्ण को सर्वाधिक प्रगतिशील माना है, क्योंकि उन्होंने अपनी बहन को तमाम विरोधों के बावजूद अपने इच्छित वर से विवाह करने की छूट दी और 'गीता' जैसा महान् ग्रंथ हमें दिया। उसी प्रकार अल्लामा इकबाल (सारे जहाँ से अच्छा के रचयिता) ने श्रीराम को 'इमामे हिंद' कहा। भूत-प्रेतों, चुड़ैलों जैसे उपेक्षितों का संग करनेवाले, शरीर पर भस्म रमाने वाले संन्यासी भोलेनाथ आदि वामपंथी थे। कहने का तात्पर्य यह कि मार्क्स ने तो वाम पंथ को आंदोलन का रूप दिया, सत्ता का स्वाद चखाया। परंतु वह तो हमारी धरती पर आदिकाल से था। इतने संदर्भ देने का मेरा अभिप्राय यह है कि इस देश में सभी कुछ 'बुरा' नहीं था। दूसरे पुजारी या पुरोहितों का वर्चस्व थोड़ा-बहुत धर्म में रहा है।

मनु द्वारा प्रदत्त वर्ण व्यवस्था क्षमतानुसार कार्य-विभाजन मात्र था, जिसका स्वरूप धीरे-धीरे बिगड़ता गया। भले ही निकृष्ट हो, ब्राह्मण का

पुत्र ब्राह्मण और शूद्र का पुत्र शूद्र माना गया। यद्यपि ऋषि पुलव्स्य के नाती व विश्रवा ऋषि के पुत्र लंकापति रावण ने 'राक्षस' संस्कृति प्रचारित की व स्वयं को राक्षस कहा। कुछ परिस्थिति की बलिहारी, कुछ हमारी मूढ़ता, एक विशाल फलक वाला धर्म, देवी-देवताओं, कर्मकांड और वर्णाश्रम धर्म में सिमट गया। फलत: स्त्री और शूद्र दोनों का ही दमन हुआ। कर्ण, एकलव्य से लेकर अंबेडकर और बेसुला तक हम 'असहिष्णु' ही रहे। उसी प्रकार सीता, अहल्या, द्रौपदी से लेकर निर्भया तक के साथ अन्याय-अत्याचार हुआ। यद्यपि समस्त विश्व के किसी भी देश में सौ प्रतिशत समरसता असंभव है। कहीं भी चले जाइए इस पृथ्वी पर, गोरी चमड़ीवाले कालों से, बुजुर्आ सर्वहारा से, सुन्नी शिया से, स्थानीय लोग परदेसियों से, स्त्रियों और दलित व गरीब तबके की हालत विश्व में कहीं भी संतोषजनक नहीं है।

हमारी सहिष्णुता की कहानियाँ अनंत हैं, असीमित हैं। चीन-पाकिस्तान दोनों सीमाओं पर युद्ध विराम के निरंतर उल्लंघन होते रहे हैं। हमारी सेना को केवल जबावी कारर्वाई की अनुमति रही है। सीमा पार से गोलियाँ आती रहती हैं। निर्दोष फौजी व नागरिक मारे जाते रहे हैं और हम उन्हें प्रत्युत्तर में सफेद कागज (विरोध-पत्र) पकड़ाते रहे हैं। यह हमारी सहिष्णुता की ही पराकाष्ठा है कि हमने विश्व में सर्वाधिक विरोध-पत्र देने का विश्व रिकॉर्ड बनाया है (लिम्कावाले जान लें)।

निराकार बह्म की पूजा सांसारिक रूप से दुष्कर कार्य था, अस्तु साकार की पूजा (मूर्तिपूजा) अस्तित्व में आई। मूर्तिपूजा की राह अति फिसलन भरी थी। इसमें भक्त अपनी भावनाओं को, विकारों को अपने इष्ट पर ही आरोपित कर देता था। पंडे-पुजारियों ने लोभ व कामवश, मंदिरों में, हीरे-जवाहरात, सोने-चाँदी के ढेर लगा दिए। देवदासियाँ वहाँ नृत्य करने लगीं। प्रश्न तो तब भी उठा था कि क्या तुम्हारा भगवान् इतना लोभी है कि धन-संपदा से प्रसन्न हो जाएगा? या इतना कामी कि देवदासी के नृत्य से रीझ जाएगा? यदि अकूत संपदा मंदिरों में थी तो सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए थी। बहरहाल इस वैभव का ऐसा हल्ला मचा कि विश्व के सारे लुटेरे इन मंदिरों पर चढ़ दौड़े। हमारे चार प्रमुख मंदिर तोड़े गए, लूटे गए। मूर्तियों व भक्तों का अपमान हुआ, धर्मग्रंथ जलाए गए। भयवश कुछ धर्मग्रंथ तिब्बत के मठों में पहुँचा दिए गए (महापंडित राहुल सांकृत्यायन साक्षी हैं)।

अब मैं असली मुद्दे पर आता हूँ, घरवालों के साथ हम भले ही असहिष्णु रहे, परंतु बाहर से आनेवालों के प्रति हम बेहद सहिष्णु रहे हैं। हम से बढ़कर सहिष्णु इस धरा पर दूसरा कौन हो सकता है? हमने अपने मूर्तिभंजकों को माफ कर दिया। जिन्होंने हमारी माटी और हमें प्यार दिया, बदले में हमने भी उन्हें भरपूर प्यार दिया। एक लंबी माला है—बादशाह अकबर, शहजादे दारा-शिकोह, रहीम, रसखान, अमीर खुसरो, शेख सलीम चिश्ती सहित सूफी मत के सभी आदरणीय संत मौलाना आजाद, सीमांत गांधी आदि को प्यार के बदले प्यार मिला। एक भुलाया गया नाम याद दिला दूँ, बरेली के एक मुसलमान सेठ मौहतरम फजलुर्रहमान उर्फ चुन्ना मियाँ, जिन्होंने शहर में लक्ष्मीनारायण मंदिर का निर्माण कराया। वहाँ ईंट, गारा, सीमेंट ढोकर कार सेवा भी की। मंदिर का उद्घाटन देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने किया था। शहर की जनता अब भी उस मंदिर को 'चुन्नामियाँ के मंदिर' के नाम से याद करती है, और उन्हें 'रुहेलखंड का गांधी' के नाम से।

मामला अदालत में था, परंतु चंद असहिष्णुओं ने श्रीरामजन्मभूमि बाबरी ढाँचा तोड़ दिया। बदले में चंद असहिष्णुओं ने बँगलादेश सहित सौ से अधिक मंदिर और उनकी मूर्तियाँ तोड़ डालीं (लज्जा की लेखिका मौ. तस्लीमा नसरीन गवाह है)।

हम बाहरवालों के प्रति कितने सहिष्णु रहे हैं। इसे जानने के लिए विश्व इतिहास के कुछ अध्याय पढ़ने पड़ेंगे। यहूदी जाति ने जुल्म की इंतिहा देखी। जर्मन के तानाशाह हिटलर ने हजारों यहूदी गैस-चैंबर में भरकर, 'डेथ स्क्वाड' के सामने खड़े करके कत्ल कर दिए। हजारों मारे भय के बेघर हो गए। इन अंतरराष्ट्रीय दलितों के साथ कहीं भी सद्व्यवहार नहीं हुआ। विश्व के हर देश ने इन्हें दुत्कार दिया। केवल और केवल भारत ने इन्हें शरण दी। मुंबई में इनकी खासी जनसंख्या है। पारसी एक और ठुकराई गई कौम थी, सब जगह ठुकराए जाने के बाद उन्हें इसी देश में ही शरण मिली। आज पारसी एक खुशहाल समुदाय है। बँगलादेशी भी इस देश में बेहिसाब आए। चीन के सताए तिब्बती भी आए। यहाँ तक कि दुनिया का ठुकराया कोई भी व्यक्ति हो, उसे हमने सिर-आँखों पर बैठाया। अतिथि देवो भव के भाव से सादर आश्रय दिया। वस्तुत: भारतवर्ष एक 'अंतरराष्ट्रीय धर्मशाला' है, जिसमें न द्वार है, न ताला। आनेवाले को आने दो (क्या पता वह अपना वोटर बन जाए) तथा एक बात और, जो भी यहाँ बसा, पहले से अधिक खुशहाल हो गया।

देश के विभाजन के समय पाकिस्तान से आए पंजाबियों, सिंधियों ने कुछ वर्षों में ही अपने माथे पर लगे 'शरणार्थी' के लेवल को उतार फेंका। आज अपनी मेहनत, हमारी हमदर्दी, ईश्वर की कृपा से एक औसत हिंदुस्तानी से भी अधिक खुशहाल हैं। इसके विपरीत पाकिस्तान, एक आदर्श इसलामिक राज्य को दिल में बसाए जब हिंदुस्तानी मुसलमान अपने 'सपनों के देश' पहुँचे तो उनका स्वप्न भंग हो गया। उनके माथे पर 'मुहाजिर' (शरणार्थी) का लेबल अब भी चस्पाँ है। उनका आंदोलन 'मुहाजिर कौमी मूवमेंट' यह इंगित करता है, मुहाजिर मुसलमान एक अलग कौम है। यही नहीं जहाँ पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या लगातार घट रही है, हिंदुस्तान में दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़ रही है। कहिए, पाकिस्तान की तुलना में हम अधिक सहिष्णु हैं या नहीं। वैसे अपने इस नापाक पड़ोसी के प्रति हमारी सहिष्णुता का इतिहास भी बहुत पुराना है। इसकी गीधदृष्टि जम्मू कश्मीर, पंजाब अनेक मुसलिम बहुल क्षेत्रों पर है। यह इस देश में कई छोटे-छोटे पाकिस्तान भी बनाना चाहता

है। वह हिंदुस्तान की बरबादी तक हमसे युद्ध चाहता है। उसने तीन-तीन युद्ध हम पर लादे। यद्यपि तीनों बार हमारी सेना ने दुश्मनों को धूल चटाई और तीनों बार हमारे राजनेता इसका कोई राजनीतिक लाभ नहीं उठा पाए। १९६५ और १९७१ में जीती गई भूमि लौटा दी गई। बँगलादेश युद्ध में तो हमारी सेना ने विश्व का सबसे बड़ा आत्मसमर्पण करवाया। युद्ध विराम के तुरंत बाद भारतीय सेना बँगलादेश से हट गई। यदि कुछ वर्ष हमारी सेना वहाँ रुकी रहती तो भारत के प्रबल समर्थक बंगबंधु शेख मुजीब सपरिवार न मारे जाते। इसके बावजूद कई वर्ष तक बँगलादेश भारत के विरोध में खड़ा रहा।

पाकिस्तान की सामरिक शक्ति भले ही हम से आधी रही हो, परंतु अपनी आक्रामकता के कारण उसने लंबे अरसे से हमारी नाक में दम कर रखा है। वह कश्मीरियों के आत्मनिर्णय 'कश्मीर में मानवाधिकार हनन' के मसले अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाता रहा है और हम किसी गुनाहगार की तरह सफाई पेश करते रहे हैं। हमारी सहिष्णुता देखिए कि हम मुहाजिरों, बलूचों, बंगालियों, सिधियों, गुलाम कश्मीरियों के आत्मनिर्णय का मुद्दा कहीं भी नहीं उठा पाए।

हमारे 'जबर' पड़ोसी चीन ने तिब्बत, जो एक स्वतंत्र राज्य था, को अपने फौजी बूटों के तले रौंद दिया। हजारों तिब्बती खेत रहे, हजारों बेघर होकर हिंदुस्तान भाग आए। तिब्बत की करुण पुकार हमने अनसुनी कर दी, ताकि चीन नाराज न हो जाए। १९६२ के युद्ध में चीन ने हमें जान-माल की भारी क्षति पहुँचाई, आज भी वह हमारी हजारों वर्ग किलोमीटर जमीन हथियाए बैठा है। विस्तारवादी चीन सारे नॉर्थ-ईस्ट, अरुणाचल प्रदेश पर भी अपना हक जता रहा है। माओवाद, नक्सलवाद के बहाने बंगाल, बिहार, असम, नेपाल में अपने पाँव पसार रहा है। उसकी एक प्रायोजित पार्टी सी.पी.आई.(एम) उस हिंसा को हर प्रकार से जायज ठहरा रही है।

हमारी सहिष्णुता की कहानियाँ अनंत हैं, असीमित हैं। चीन-पाकिस्तान दोनों सीमाओं पर युद्ध विराम के निरंतर उल्लंघन होते रहे हैं। हमारी सेना को केवल जबावी काररवाई की अनुमति रही है। सीमा पार से गोलियाँ आती रहती हैं। निर्दोष फौजी व नागरिक मारे जाते रहे हैं और हम उन्हें प्रत्युत्तर में सफेद कागज (विरोध-पत्र) पकड़ाते रहे हैं। यह हमारी सहिष्णुता की ही पराकाष्ठा है कि हमने विश्व में सर्वाधिक विरोध-पत्र देने का विश्व रिकॉर्ड बनाया है (लिम्कावाले जान लें)।

चंद भरे पेटवाले लोग बीस-बीस सिक्योरिटी गार्डस से घिरे पाँच सितारा होटल में शैंपेन का गिलास थामे इस देश को 'असुरक्षित' बता रहे हैं। आमिर खान साहब अपनी मैडम को याद दिलाते कि यह वही 'सहिष्णु' देश है, जिसने दिलीप कुमार (मो. युसुफ खान), शाहरुख खान, सलमान खान, सैफ अली खाँ आदि और उनके पति सहित अनेक मुसलिम चेहरों को लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा दिया है। क्या उन्हें याद है कि डॉ. जाकिर हुसैन, फखरुद्दीन अली अहमद, कलाम साहब आदि देश के सर्वोच्च पद को सुशोभित कर चुके हैं। पड़ोसी किसी देश में किसी एक हिंदू या ईसाई नागरिक को भी मिली है इतनी ऊँचाई?

विडंबना यह कि असहिष्णुता का मुद्दा उठानेवाले स्वंय हिंदू अराध्य देवों की निंदा करना अपना प्रिय शगल समझते हैं। उन्हें 'साफ्ट टार्जेट' माना जाता है। आप स्त्री-विमर्श का नारा लगाते हैं, परंतु आपने तो हमारी 'नारी-शक्ति' की प्रतीक दुर्गा माँ का भी मजाब उड़ा दिया।

इधर असहिष्णुता पर ऐसी मारा-मारी मची कि अनेक असहिष्णु बुद्धिजीवियों में पुरस्कार सरकार के मुँह पर मारने की प्रतियोगिता चल पड़ी। टी.वी. पर 'गुस्ताखी माफ' ने इसे भली अभिव्यक्ति दी थी। वस्तुत: जब आप किसी वाद से जुड़ जाते हैं तो किसे गालियाँ देनी है और किसकी प्रशस्ति करनी है, इसकी पूर्व निर्धारित सूचियाँ हाई कमान आपको सौंप देता है। हाईकमान ही वह खूँटा है, जिसमें आपकी आजादी की रस्सी बँधी होती है। जितनी बड़ी रस्सी, उतनी बड़ी आपकी औकात।

कितनी सहिष्णु सरकार थी कि उन असहिष्णुओं को आजीवन प्रतिबंधित नहीं किया गया। ऐसे लोगों को पुरस्कार दे दिए गए, जिन्हें उसकी कद्र नहीं थी।

पंडित नेहरू देश के लोकतंत्र के पुरोधा थे। विडंबना देखिए कि उनकी महान् पार्टी ने साम्यवादियों के साथ साँठ-गाँठ करके उनके नाम पर ही बने विश्वविद्यालय को राष्ट्रदोहियों की प्रयोगशाला बना दिया। हमारे लोकतंत्र के मंदिर को ध्वस्त करने का इरादा रखनेवाले अपराधी की बरसी मनाई गई, भारत की बरबादी की कामना की गई। आपके इस गुरु ने स्वीकार किया है कि उसने संसद् को नेस्तनाबूद करने की कोशिश की और वह भी अपनी गरीबी के कारण। आपको यह घटिया दर्जे का मुजरिम याद आता है, परंतु संसद् को बचाने में अपने प्राण न्योछावर करनेवाले तीन पुलिसकर्मी याद नहीं आते। सोचिए, यदि आपका गुरु अपने इरादों में कामयाब हो जाता तो कई सांसद मारे जाते। उन सांसदों में कुछ कांग्रेसी, साम्यवादी या कश्मीरी भाई भी हो सकते थे। आप अहसानमंद नहीं हैं, उन रणबाँकुरे जवानों के, जिनके अदम्य साहस, त्याग, पराक्रम से अभी तक आपकी सीमाएँ सुरक्षित हैं।

हमारे वामपंथी विचारक देशप्रेम की भावना का मजाक उड़ाते हैं। हम दो विस्तारवादी पड़ोसियों चीन और पाकिस्तान से घिरे हुए हैं, जो इस समूचे देश को घोलकर पी जाना चाहते हैं। इन परिस्थितयों से केवल देशप्रेम और देशप्रेम ही हमें उबार सकता है। संसार में प्रत्येक गुण सापेक्ष होता है। निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो यह देश आपको संसार का सर्वाधिक सहिष्णु देश दिखाई देगा। भले ही कुछ असहिष्णु इसे अंधों में काना राजा क्यों न कह दें।

आखिर एक सौ पच्चीस करोड़ का देश है, चंद अपवाद हो सकते हैं। पुनश्च, डाकू और सैनिक दोनों हिंसक होते हैं। एक स्वार्थवश ऐसा करता है। दूसरा देशप्रेमवश। दुर्भाग्यवश हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी डाकुओं/अपराधियों की प्रशस्ति में व्यस्त हैं।

३/२९ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग
रामघाट रोड, अलीगढ़
दूरभाष : ०९८९७४१०३२०

कहानी

मौत के बाद

● राकेश भ्रमर

सुपरिचित साहित्यकार। 'जंगल बबूलों के', 'हवाओं के शहर में'(गजल संग्रह), 'उस गली में' (उपन्यास), 'अब और नहीं' (कहानी-संग्रह)। 'प्राची' मासिक पत्रिका का संपादन। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित।दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति केंद्र सरकार में अधिकारी।

अ समय मौत के बाद गिरीश को धर्मराज के समक्ष पेश किया गया, ताकि मृत्युलोक में उसके द्वारा किए गए पाप-पुण्य का लेखा देखकर उस पर मुकदमा चलाया जा सके और उसके कर्मों के आधार पर उसे स्वर्ग या नर्क में धकेला जा सके। गिरीश मौन एक कोने में खड़ा था। उसके हृदय में कोई हलचल नहीं थी और मन में किसी प्रकार की चिंता या शंका नहीं थी। वह चुपचाप धर्मराज के दरबार की काररवाई देख रहा था। धर्मराज अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसको घूरकर देख रहे थे, जैसे आँखों-ही-आँखों में उसके कर्मों का लेखा-जोखा करके सजा दे देंगे। एक तरफ साफ-सुथरी मलमल की कालीन पर बैठे चित्रगुप्त उसका पोथा देख रहे थे।

अचानक धर्मराज ने कड़क आवाज में कहा, ''मुकदमे की काररवाई आरंभ की जाए।''

''जी महराज!'' चित्रगुप्त ने विनम्रता से कहा और फिर गिरीश की तरफ उँगली उठाते हुए कहा, ''मनुष्य, अपना नाम बताओ।''

''आपको मालूम होना चाहिए। आप ही मुझे यहाँ लेकर आए हैं।''

''हमें मालूम है, परंतु यह धर्मराज का दरबार है। यहाँ मुकदमे की काररवाई नियम-कानून से की जाती है। तुमसे जो पूछा जाए, केवल उसी का उत्तर दो। प्रश्न करने का अधिकार तुम्हें नहीं है। हाँ तो, धर्मराज को अपना नाम बताओ।''

''मेरा नाम गिरीश है, पिता का नाम प्रदीप था, माता का नाम कमला, पत्नी का स्नेहा, मेरे एक पुत्र और एक पुत्री हैं, दोनों अभी अविवाहित हैं और उनके नाम क्रमश: सर्वेश और संचिता हैं। दोनों अभी पढ़ाई कर रहे हैं।'' गिरीश ने एक ही साँस में सबकुछ बता दिया, ताकि बार-बार का झंझट ही न रहे।

''तुम बहुत ज्यादा बोलते हो।'' चित्रगुप्त ने उसे चेतावनी देते हुए कहा, ''जो पूछा जाए, केवल उसी का उत्तर दो।''

धर्मराज ने कहा, ''इसका नाम पता चल गया है। अब इसके कर्मों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाए।''

चित्रगुप्त ने गिरीश के जीवन का लेखा-जोखा इस प्रकार प्रस्तुत किया, ''महाराज! यह व्यक्ति बहुत बड़ा नास्तिक है। इसने कभी किसी देवी-देवता और भगवान् पर विश्वास नहीं किया। कभी पूजा-पाठ नहीं किया, किसी मंदिर नहीं गया, मूर्तियों के सामने सिर नहीं झुकाया। इसने कभी भगवान् से सुख, संपन्नता और समृद्धि नहीं माँगी, बल्कि अपनी मेहनत पर विश्वास किया, और जो भी रूखी-सूखी मिली, खाकर सो गया। दूसरों की रोटी नहीं छीनी, बल्कि हो सका तो भूखे-नंगे लोगों को रुपए-पैसे और कपड़े-लत्तों से मदद करता रहा। जिसने भी इसके सामने हाथ फैलाया, वह खाली हाथ नहीं गया। इसी खुले हाथ के कारण यह कभी अमीर नहीं बन पाया और इसके घरवाले इसको दिन-रात गालियाँ देते रहते थे।''

''धरती पर यह क्या काम करता था?'' धर्मराज ने प्रश्न किया। ''महाराज! यह कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं था। एक दफ्तर में मामूली क्लर्क था, ऊपरी आमदनी का सुअवसर प्राप्त था, परंतु इसने कभी भ्रष्ट आचरण द्वारा एक पैसे की कमाई नहीं की। जबकि इसके दफ्तर के अन्य क्लर्क और अधिकारी आँख मूँदकर तथा हाथ खोलकर मजे से ऊपरी कमाई करके मालामाल हो गए थे। उन्होंने शहर में कई मकान बना लिए और सेडान गाड़ियों से कार्यालय में आते-जाते थे, जबकि यह मूर्ख व्यक्ति जीवन भर टूटी साइकिल से दफ्तर आता-जाता रहा और किराए के मकान में रहकर मर गया।''

''बड़े ही दु:ख की बात है!'' धर्मराज ने कहा, ''जो व्यक्ति अवसर का लाभ नहीं उठाता, उसे मूर्ख ही कहा जाएगा। इसके खाते में और क्या-क्या लिखा है, संक्षेप में बताओ।''

''जी महाराज! इसने एक बार सड़क दुर्घटना में घायल व्यक्ति को अकेले ही अस्पताल पहुँचाया था, जबकि वहाँ कई अन्य व्यक्ति थे, जो घायल को छूने तक को तैयार नहीं थे। लोग तमाशबीन की तरह खड़े दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को तड़पते देखते रहे थे। जब कोई उसकी मदद को तैयार नहीं हुआ, तो इसने अकेले ही उस व्यक्ति को अस्पताल पहुँचाया। हालाँकि इस उपकार के बदले इस व्यक्ति को काफी कष्ट उठाना पड़ा था। पहले तो अस्पतालवालों ने इसे बहुत परेशान किया, फिर पुलिसवालों ने कई दिनों तक थाने दौड़ाया, और तो और घायल व्यक्ति के घरवालों ने

इस के ऊपर दोषारोपण कर दिया कि इसी ने अपने वाहन से उस व्यक्ति को टक्कर मार दी थी, जबकि इसके पास साइकिल छोड़कर कोई वाहन नहीं था।''

''च···च···च···च।'' धर्मराज के मुँह से निकला, जबकि गिरीश के मुख पर कोई प्रतिक्रिया स्पष्ट रूप से जाहिर नहीं हो रही थी, जैसे कि उसके बारे में नहीं, बल्कि किसी अन्य व्यक्ति के बारे में विधाता के दरबार में न्याय की सुनवाई चल रही थी।

''क्या यह बहुत बड़ी पुण्यात्मा है?'' धर्मराज ने पूछा।

''हाँ, महाराज! इसने अपने जीवन में इसी तरह दु:खी, असहाय और शोषित व्यक्तियों की बहुत सेवा की, जबकि यह आर्थिक रूप से बहुत सक्षम व्यक्ति नहीं था। दूसरों की सेवा करने में यह कभी पीछे नहीं रहा और ऐसा करते हुए इसके चेहरे पर शिकन तक नहीं पड़ी। हाँ, इसके घरवाले इसकी सेवावृत्ति से बहुत दु:खी तथा परेशान रहते थे। वह रात-दिन इसे कोसते रहते थे, परंतु इसने कभी उनकी बातों पर कान नहीं दिया।'' चित्रगुप्त ने बयान किया।

''तुम इसके केवल पुण्य कर्मों का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर रहे हो, कुछ पाप-कर्मों के बारे में भी बताओ।''

चित्रगुप्त ने गिरीश के कर्मों की पूरी पोथी पलट डाली, बारीकी से एक-एक पन्ने का अवलोकन किया, उँगलियों में कुछ गणना की। ऐसा करते हुए उनके माथे पर सलवटें भी आईं और कुछ देर बाद वहाँ पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं, वह परेशान सा दिख रहा था।

''चित्रगुप्तजी! क्या आप ठीक प्रकार से इसके कर्मों की गणना नहीं कर पा रहे हैं? कुछ विचलित से दिख रहे हैं।''

चित्रगुप्त ने अपने माथे से पसीना पोंछते हुए कहा, ''महाराज! गणना तो ठीक से कर रहा हूँ, परंतु···।''

''परंतु क्या चित्रगुप्त?'' धर्मराज ने उत्सुकता से पूछा।

''इसके खाते में एक भी पाप-कर्म नहीं है, जबकि इसने कभी भगवान् का नाम तक नहीं लिया।''

''यह कैसे संभव है कि मनुष्य होकर इस व्यक्ति ने कभी कोई अनुचित कार्य न किया हो, कभी-न-कभी तो।···''

''वही तो मैं देख रहा हूँ, परंतु किसी भी पन्ने या पंक्ति में इसका कोई दोषपूर्ण कार्य अंकित नहीं है।''

''ठीक से अवलोकन करके बताओ।'' धर्मराज के स्वर में क्रोध की झलक थी।

चित्रगुप्त ने काँपते हाथों से कई बार पोथी को पढा, हाथों पर गणना की और अंत में पसीना पोंछते हुए कहा, ''नहीं महाराज! इसके खाते में केवल पुण्य-कर्म है, पाप-कर्म नहीं।''

''तो क्या इसे स्वर्गलोक भेज दिया जाए?''

''जी महाराज।'' चित्रगुप्त ने कहा।

देवदूत उसे स्वर्ग में ले जाने के लिए स्वर्णजड़ित रथ ले आए, तभी एक तरफ खड़े गिरीश ने शांत भाव से कहा, ''भगवन्!'' उसके इतना कहते ही सभी एक सुर में चिल्लाए, ''अहा! देखो, आज इसने भगवान् का नाम ले लिया।''

''हाँ, मैंने लिया है, क्योंकि अब मैं मृत हूँ, धरती के पत्थरों के भगवानों पर मुझे विश्वास नहीं था, परंतु मेरी मृतात्मा आप सभी को साक्षात् देख रही है, इसीलिए मैंने आपको भगवान्, कहा मेरा आपसे एक निवेदन है।''

''कहो-कहो, निस्संकोच कहो, हम तुम्हारी सभी बात मानेंगे।''

''भगवान्, मेरे कर्मों के आधार पर मेरे भाग्य का निर्णय हो चुका है, आपने मुझे स्वर्ग में भेजने का निर्णय ले लिया, मुझे प्रसन्नता है, परंतु स्वर्ग मे जाने और वहाँ का सुख भोगने से पहले मैं एक बार मृत्युलोक जाना चाहता हूँ।''

''वह क्यों मनुष्य?'' धर्मराज ने ही पूछा।

''मैं अपनी आँखों से देखना चाहता हूँ कि मेरी पत्नी और मेरे बच्चे मेरे मरने के बाद मेरे संबंध में क्या सोचते हैं, और अब वे क्या कर रहे हैं?''

''वही सोचते होंगे, जो तुम्हारे जीते-जी सोचते थे।''

''नहीं, भगवन्!'' धरती पर एक कहावत है कि मृत व्यक्ति के बारे में बुरा नहीं सोचते, न कहते हैं। मैं देखना चाहता हूँ, इस कहावत में कितनी सत्यता है?''

''अच्छी बात है, चूँकि तुमने अच्छे कर्मों द्वारा स्वर्ग में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है, हम तुम्हें एक दिन का अवसर प्रदान करते हैं कि मृत्युलोक में जाकर अपने परिजनों से मिलकर उनके मन की बात जान सको, परंतु तुम्हें चेतावनी दी जाती है कि तुम परोक्ष या अपरोक्ष रूप से उनसे बातचीत नहीं करोगे, अन्यथा तुम्हे नर्क में धकेल दिया जाएगा।''

कहकर धर्मराज ने देवदूतों को संकेत किया और गिरीश को पता हीं नहीं चला कि वह कब धरती पर पहुँच गया।

उसने देखा, वह अपने घर के बाहर खड़ा हुआ था और उसके आस-पास कोई नहीं था, न धर्मराज का दरबार, न चित्रगुप्त, न देवदूत, उसका पुराना टूटा-फूटा किराए का मकान था, गंदी गली थी और वही हैरान-परेशान से गली में आते-जाते लोग। उसके घर का दरवाजा बंद था पहले सोचा, दरवाजा खटखटाए, परंतु फिर उसे याद आया, वह तो निराकार है, केवल एक आत्मा, जो कहीं भी बेरोक-टोक प्रवेश कर सकती थी।

जब उसने घर के अंदर प्रवेश किया, तो उसे ऐसा लगा, जैसे वह किसी मरघट में आ गया था। पूरे घर में सन्नाटा था। यों तो घर भी कोई बहुत बड़ा और लंबा-चौड़ा नहीं था। दो ही कमरे थे और एक छोटा सा आँगन, परंतु घर चाहे छोटा हो या बड़ा, किराए का हो या अपना, सभी को प्यारा होता है।

उसने घर का कोना-कोना गौर से देखा, पुरानी यादों से वह कुछ भावुक हो गया। अपने बेडरूम में गया तो देखा, उसकी पत्नी पलंग पर बैठी थी और उसके सामने कुछ कागजात बिखरे पड़े थे। उसका बेटा और बेटी भी पलंग के दूसरे किनारे पर बैठे थे। वे सभी उन कागजातों को उलट-पुलट रहे थे।

''ये तो मर के चला गया, परंतु हमारे लिए क्या छोड़ गया? फंड में केवल अस्सी हजार हैं, बस ग्रैच्युटी और लीव इनकैशमेंट का पैसा मिला है। पेंशन पता नहीं कितनी बनेगी? इतने कम पैसों में हम लोगों का गुजारा कैसे होगा?'' उसकी पत्नी कह रही थी। उसका मुँह करेले जैसा हो गया था। उसकी बातों से लग रहा था। वह अपने पति के मरने से दु:खी नहीं थी। वह इस बात से दु:खी थी कि पति बहुत सारा पैसा छोड़कर नहीं मरा था। सचमुच दुनिया के सारे नाते-रिश्ते धन-संपत्ति और रुपए-पैसों के इर्द-गिर्द घूमते हैं। पैसा न हो तो रिश्ते भी मुरदा हो जाते हैं।

''सारी उम्र वह हमें एक-एक पैसे के लिए तरसाता रहा, फीस के अलावा कभी ऐसी कोई चीज नहीं दी कि गर्व से अपने दोस्तों के बीच कह सकूँ, 'मेरे बाप ने दी है।' न स्मार्ट फोन, न बाइक, कॉलेज में कितना हीन महसूस करता हूँ खुद को।'' बेटा कह रहा था।

''देखो न मम्मी, मैं भी तो एक अच्छी ड्रेस के लिए तरस गई। वही सस्ती ड्रेस···मेरी सहेलियाँ मेरा कितना मजाक बनाती हैं। अब तो मम्मी हमें कोई अच्छी-सी ड्रेस और एक घड़ी दिलवा दो।'' यह उसकी बेटी कह रही थी।

उसकी पत्नी का मुहँ अब सड़े टमाटर जैसा हो गया, ''यह चार लाख ग्रैच्युटी और अस्सी हजार फंड के हैं। पता नहीं फंड में पैसा क्यों नहीं जमा करता था। पेंशन भी पता नहीं कितनी बनेगी। कम्युटेशन के पहले ही मर गया।'' उसे याद आया, वह रिटायरमेंट के पहले ही मर गया था, परंतु इससे तो परिवार को ही फायदा था। बेटे या बेटी में से किसी को अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिल जाएगी। पर इस समय परिवारवाले उस तरफ ध्यान नहीं दे रहे थे।

''अभी इंश्योरेंस का पैसा बाकी है।'' बेटे ने याद दिलाया।

''वह भी कौन सा ज्यादा है। ऑफिसवाले बता रहे थे, बीस-पच्चीस के लगभग होगा। जीवन में कोई पॉलिसी भी नहीं ली कि उसका पैसा मिलता।'' पत्नी ने कहा।

''मैं तो कुछ नहीं जानती, मुझे नई ड्रेस और घड़ी चाहिए।'' बेटी ने जोर देकर कहा, जैसे उसके घर में कोई जलसा होनेवाला था।

''मैं भी बाइक से कम में नहीं मानूँगा।'' बेटे ने कहा, ''बाप के जिंदा रहते उसकी तनख्वाह में मैं कोई शौक पूरे नहीं कर पाया। अब उसके मरने के बाद कुछ पैसा इकट्ठा मिला है, तो क्यों न हम अपनी हसरतें पूरी कर लें। मैंने हीरो होंडा की एक नई बाइक देखी है, साठ हजार के लगभग पड़ेगी। मुझे पैसे दो, मैं अभी लेकर आता हूँ।''

पत्नी ने तीखे स्वर में कहा, ''तुम दोनों चुप रहो। बकबक किए जा रहे हो, बाप को मरे चार दिन भी नहीं हुए। अभी उसकी राख को गंगा में प्रवाहित करने जाना है। तेरहवीं बाकी है। पता नहीं कितना खर्च हो जाए? भविष्य के लिए भी कुछ बचाकर रखना है। अभी तक अपना घर नहीं है। बेटी की शादी के लिए दहेज जोड़ना है। तुम्हारी पढ़ाई के पैसे जमा करने हैं। यह आदमी तो हमारे लिए कुछ करके गया नहीं। अब हमें ही अपने बारे में सोचना है।''

''सारी उम्र पड़ी है सोचने के लिए। जिसको जाना था, चला गया। अब क्या उसके लिए हम सुख-चैन से जीना भी छोड़ देंगे। बाप की जगह पर मुझे नौकरी मिल ही जाएगी। फिर पैसे की क्या कमी?'' बेटे ने जोश भरे स्वर में कहा।

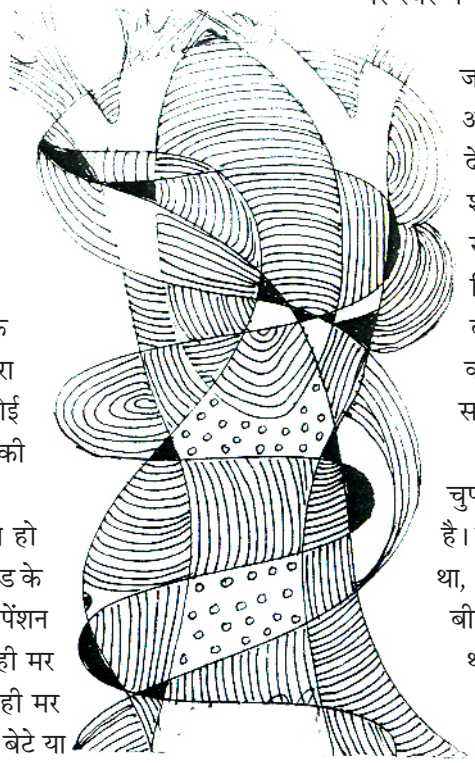

''तुझे नौकरी मिल जाएगी। शादी भी हो जाएगी, परंतु शादी होते ही तू बीबी को लेकर अलग हो जाएगा। हमें एक-एक कौड़ी को तरसा देगा। मुझे बेटी की शादी भी करनी है, उसकी शादी करने के बाद मेरे पास क्या बचेगा? तू तो सीधे मुझे विधवा-आश्रम पहुँचा देगा। जो दो पैसे मिले हैं, उन्हें तेरे शौक के ऊपर क्यों खर्चा कर दूँ, जब तू नौकरी करेगा, मोटरसाइकिल क्या, कार ले लेना। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'' माँ ने साफ इनकार कर दिया।

मुहँ से निकली सच्चाई के सामने झूठ अकसर चुप हो जाता है या बहुत ऊँचे स्वर में चीखने लगता है। माँ की करुणा देखकर बेटी को तरस आने लगा था, इसलिए वह चुपचाप खड़ी होकर माँ-बेटे के बीच का संवाद सुन रही थी। बेटा भी चुप हो गया था।

और एक किनारे खड़ी मृत गिरीश की आत्मा को अपने घर की दयनीय स्थिति पर सचमुच दया आ रही थी। वह सोच रहा था, जीते जी वह अपने परिवार के लिए कुछ भी नहीं कर पाया। परोपकार करना अलग बात है, परंतु पारिवारिक सुख के लिए मनुष्य अपना जीवन होम कर देता है। उसने तो भरपूर कोशिश की थी कि उसके कारण कोई दु:खी न रहे, परंतु आज वह देख रहा था कि उसके जीते-जी कोई उससे सुखी नहीं था और मरने के बाद भी उसकी याद में कोई दो आँसू नहीं बहा रहा था। अगर उसने ढेर सारे पैसे कमाए होते, घरवालों को विलासितापूर्ण जीवन प्रदान किया होता और लाखों रुपए बचाकर मरा होता, तो आज ऐसी स्थिति नहीं होती।

उसे महसूस हो रहा था कि मानवीय रिश्तों का आधार केवल प्रेम और परोपकार ही नहीं होता। जीवन में अर्थ का विशेष महत्त्व होता है। अर्थ न हो तो रिश्तों की डोर कमजोर हो जाती है। वह साफ-साफ देख रहा था कि उसके परिवारवाले उसके मरने से दु:खी नहीं थे। वह इस बात से दु:खी थे कि वह उनके लिए बहुत सारा पैसा छोड़कर नहीं मरा था और जीवित रहते अपने बीवी-बच्चों को भौतिक सुख तथा विलासितपूर्ण जीवन प्रदान नहीं कर पाया।

जीवन का यही सार है। मनुष्य अपने श्रम से सुख प्राप्त नहीं करना चाहता। वह दूसरों के पैसे से आरामदायक जिंदगी जीना चाहता है। अपने पुरुषार्थ पर उसे विश्वास नहीं होता। वह आकांक्षा करता है कि धन और सुख-संपन्नता उसे विरासत में प्राप्त हो।

परिवारवालों की बातें सुनकर उसकी मृतात्मा फिर से मर गई थी। इतना निराश और दु:खी वह अपने जीवन में कभी नहीं हुआ था, जितना मृत होने के बाद अपने परिवारवालों की मानसिकता देखकर।

आगे कुछ और देखन-सुनने का साहस उसके पास नहीं था, चुपचाप उल्टे पाँव वह धर्मराज के दरबार में लौट आया। धर्मराज ने पूछा, ''बहुत जल्दी लौट आए मनुष्य धरती से। हमने तो पूरा एक दिन दिया था। देख आए परिवार को? कैसा लगा, क्या सोचते हैं वे तुम्हारे बारे में?''

गिरीश ने कहा, ''धर्मराज, मेरे पास कहने के लिए बहुत कुछ नहीं है।''

''बहुत ठीक! तुम्हारे चेहरे के भाव देखकर हमें भी लग रहा है कि तुमको मरने के बाद धरती पर जाकर अच्छा नहीं लगा। मानवीय रिश्तों में ऐसा ही होता है। जीवित अवस्था में अपने पराए हो जाते हैं और पराए कभी-कभी अपनों से ज्यादा सगे लगते हैं, परंतु तुम दु:खी मत होओ, तुम्हारे लिए स्वर्ग में हर प्रकार का सुख उपलब्ध है, वहाँ तुम कभी दु:खी नहीं होगे। दूत! इस मनुष्य को स्वर्ग ले जाने की व्यवस्था करो।'

गिरीश ने तुरंत प्रतिवाद किया, ''नहीं महाराज! आपसे मेरा एक विनम्र निवेदन है। आप मुझे स्वर्ग में नहीं, नर्क में भेज दीजिए।''

''यह क्या कह रहे हो तुम मनुष्य? हमारे यहाँ ऐसा विधान नहीं है, तुमने जो किया है, उसी के आधार पर तुमको फल मिलेगा।''

''महाराज, आपके विधान के अनुसार मैंने पृथ्वी पर अच्छे कर्म किए हैं, इसलिए आप मुझे स्वर्ग भेज रहे हैं, परंतु मैं जानता हूँ कि मैंने जीवित रहते अपने परिवारवालों को कोई सुख प्रदान नहीं किया है, मैंने अपने कर्तव्य का पालन ठीक प्रकार से नहीं किया है। इस प्रकार मैंने पापकर्म किया है, अतएव नर्क में स्थान देकर मुझे कृतार्थ कीजिए। मैं आपका आभारी रहूँगा।''

धर्मराज धर्मसंकट में पड़ गए। तभी चित्रगुप्त ने हस्तक्षेप किया, ''महाराज, आप इस मनुष्य की बातों में मत आइए। मनुष्य जाति का प्राणी बहुत चतुर और बुद्धिमान होता है। ये लोग अपनी तार्किक बुद्धि से सच को झूठ और झूठ को सच बना देते हैं। ये बहुत हठी होते हैं। आप इसकी बातों में मत आइए। आप तुरंत इसे स्वर्ग में भेज दीजिए, वरना यह अपनी बुद्धि से आपको भ्रमित करके अपनी बात मनवा लेगा।''

दरबार की कारवाई तुरत स्थगित कर दी गई और देवदूतों ने गिरीश को पकड़कर स्वर्ग के द्वार के अंदर धकेल दिया।

७, श्री होम्स, मंचन विहार,
बचपन स्कूल के पास, लामती,
विजय नगर, जबलपुर-४८२००२
दूरभाष: ०९९६८०२०९३०

कविता

उषा गीत

● **महेश शर्मा**

पेड़ों पर गूँज उठा पक्षियों का शोर,
रात कटी अँधियारी निकल आई भोर।
सूरज के स्वागत में
लालिमा जो आई है।
ओस बूँद हरित तृण पे,
मोती सी छाई है।

शीतल पवन बहने लगी चारों ओर,
रात कटी अँधियारी निकल आई भोर।
मुरगे ने बाँग मारी,
चिड़िया भी चहकी।
झूम उठे तरु पल्लव
लताएँ भी बहकी।

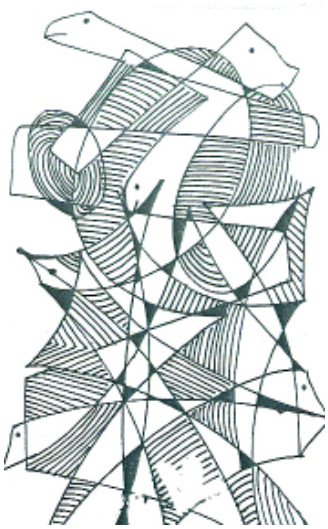

कोयल भी कूक उठी नाच उठा मोर,
रात कटी अँधियारी निकल आई भोर।
एक नई आस लिये,
मन में विश्वास लिये,
आँखें खोली हर कली ने
भँवरों की आस लिये।

गुनगुनी सी धूप नजर आई हर छोर,
रात कटी अँधियारी निकल आई भोर।
प्रियतम संग रात कटी,
बिरहा की अगन छँटी।
हर पल मधुमय बिता
सारी तकरार हटी।

अलसाए यौवन पर थकन का है जोर,
रात कटी अँधियारी निकल आई भोर।

२२४ सिल्वर हिल कॉलोनी, धार,
जिला-धार (म.प्र.)
दूरभाष : ०८२३६९४०२०१

व्यंग्य

चलो, चलें लालकिला मैदान

● हरीश नवल

दिल्ली का नाम आते ही मस्तिष्क के मानचित्र पर लालकिला उभरता है और लालकिले के उभरते ही दिखता है लालकिला मैदान, जहाँ आँधी हो या तूफान, पर आम आदमी को पहुँचना होता है—कम-से-कम वर्ष में एक बार अपनी खोई हुई आजादी को ढूँढ़ने, तिरंगे में अपने रंग रँगे देखने।

वर्षों पूर्व जब अंग्रेजी राज में ठंडी सड़क इस मैदान के बीचोबीच बनी, दिल चीरकर बनी। इसके दो हिस्से हो गए और जामा मसजिद की तरफवाले हिस्से का नाम परेड का मैदान हो गया। मैदान के दोनों भागों में एक-एक दरगाह है, जहाँ सावन के बाद दार्शनिक कव्वालियों का जोर होता है। इन कव्वालियों में खुदा की इबादत और अकीदत होती है। इसी से शायद यह मैदान और हिस्सों में बँटने से बच गया। यही वह मैदान है, जहाँ सन् सैंतालीस से एक पागल गाता रहा, 'इस दिल के टुकड़े हजार हुए कोई यहाँ गिरा, कोई वहाँ गिरा'। इसी बोल पर एक फिल्मी गीत भी मशहूर हुआ। पागल तो चल बसा, पर दिल के दो टुकड़ों की तरह बसे हिंदुस्तान और पाकिस्तान इस मैदान में लगातार दिखाई देते हैं।

यह लालकिला मैदान बड़ा ही चित्र-विचित्र है। चित्र तो इसके सारे जहाँ में पाए जाते हैं। विदेशी पर्यटक यहाँ आकर एक चित्र लालकिला का और एक चित्र उनसे भीख माँगते, दुनिया का दर्द अपने चेहरे पर लाते हुए अंधे, लूले, लँगड़े या तगड़े भिखारियों के जरूर खींचते हैं।

अहा! लालकिला का मैदान, तेरी है निराली शान। तेरे सीने पर हर बरस आधे अगस्त में आधी रात को पाई गई 'आजादी' (?) की दुहाई देनेवाले देश के कर्णधार, भारत की शानदार अर्थव्यवस्था के बारे में बोलते, मतदाताओं को तौलते, वोटों की भीख माँगते हैं। तू सचमुच महान् है, नीचे ठीक लालकिले की नाक के नीचे दरिद्रनारायण नोटों की भीख माँगते हैं। फोटो दोनों के खिंचते हैं, एक से पता चलता है कि कितनी गरीबी है, दूसरे से ज्ञात हो जाता है कि किसकी वजह से गरीबी है।

हे लालकिला मैदान! इन वोटों और नोटों की भिक्षावृत्ति के बीच तेरे दामन पर खड़ा बेचारा निरीह मतदाता विगत पचास वर्षों से तीन बार जोर से जयहिंद बोलता है और अंटी खोलता है—वोट नेता को, नोट भिखारी को दे देता है और अगली बार तक आने के लिए खोखला होकर घर को चल देता है और तू देखता रहता है।

दूर से देखने पर लालकिले को अपनी बाँहों में घेरी खाई आपको नजर नहीं आती है। ऐसी खूबसूरत खाई हमारे हर बड़े नेता के साथ होती है। दरअसल, जितनी बड़ी और गहरी खाई होती है, उतना ही बड़ा हमारा नेता होता है। दूर से वह आपको जमीन से, आपकी सतह से जुड़ा नजर आता है, पर जैसे ही आप करीब जाते हैं, वह दूर होता है और आप खाई में गिर जाते हैं।

सुपरिचित व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ शामिल। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

लालकिले के मैदान में बड़े नेता सन् सैंतालीस से जा रहे हैं और तोपों की सलामी पा रहे हैं। कभी सलामी राजा, महाराजा या वीरों के लिए होती थी, आज होती है हमारे अपने द्वारा लोकतांत्रिक पद्धति से चुने गए हमारे बीच के नेताओं के लिए, जो चुनाव के बाद हमारे नहीं, खबरों के बीच होते हैं।

वाह, क्या सीन है! जरा हमारे कमेंट्रेटर के साथ देखें तो—''राजघाट पर महात्मा गांधी की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित कर प्रधानमंत्री लालकिले की ओर रवाना हो गए हैं। वे अब लाहौरी दरवाजे की ओर से आ रहे हैं। सेना के तीनों अंगों के सशस्त्र सैनिक 'अटेंशन' हो गए हैं। सेना का बैंड 'आ जा आई बहार' धुन बजाकर नेता का स्वागत कर रहा है। देखिए, राष्ट्रगान गाने के लिए पधारे दिल्ली के तीन सौ स्कूलों से ढाई हजार बच्चे प्रिय नेता के अभिवादन के लिए उठ रहे हैं। वे जागे हैं, पर उनके पैर सो गए हैं । उनके सोए पैर देश के प्रतीक हैं, जो केवल नेता के अभिवादन के लिए ही जागता है। प्रधानमंत्री मैदान में उतर आए हैं, वे बहुत चुस्त और प्रसन्नवदन हैं। मैदान में खड़े सहस्रों व्यक्तियों को देख सहायक से कुछ कह रहे हैं, संभवत: वह कह रहे हैं कि अपनी पार्टी ठीक काम कर रही है, सुबह-सुबह सारा मैदान भर गया है । सहायक कुछ फुसफुसा रहा है, वह यही बता रहा होगा, 'सर, सुबह मैदान जाने से पहले ही हमने इन्हें लालकिला मैदान में मँगवा लिया है।'

''प्रधानमंत्री सलामी-मंच पर पहुँच गए हैं। सेना के जवान सलामी दे रहे हैं, सलामी धुन बज रही है। पुरानी चलती हुई धुन है, 'मेरा सलाम

ले ले, दिल का पैगाम ले ले।' सेना का निरीक्षण करते हुए प्रिय नेता साथ-साथ चल रहे फौजी अफसरों से कदम नहीं मिला पा रहे हैं, दरअसल समूचा देश उनके कदम-से-कदम मिलाकर चलता है, वह किसी से कैसे मिला लें।

''...वह अब लालकिले के भीतर प्रवेश कर गए हैं, बाहर वी.आई.पी. लाउंज में बैठे वी.आई.पी. उचक-उचककर उन्हें अपनी शक्ल दिखा चुके हैं।

बैंड की धुन अब भी बज रही है—'हम तुम्हारे लिए, तुम हमारे लिए।'

''लीजिए, प्रिय नेता को इक्कीस तोपों की सलामी दी जा रही है, कहा कुछ भी जाए, पर यही सच है। कुछ देर आप गरजती तोपों की आवाज सुनें, धायँ-धायँ-धायँ...। तो जनाब, सीन देखा आपने? कैसा लगा आम जनता के खास प्रतिनिधि जब तोप की सलामी लेते हैं, जाने क्यों आम जनता बड़ी खुश होती है। वास्तव में हमारे नेता खुद ही बड़ी तोप हैं । कुल मिलाकर बाईस हैं, शेष इक्कीस सलामी के लिए सुलग रही हैं। ये सुलगती तोपें वे पक्षीय-विपक्षीय नेता हैं, जो कभी लालकिला आकर ऐसी सलामी लेने की इच्छा लिये हुए हैं।''

पटेल ने रजवाड़े मिटा दिए, प्रिवीपर्स भी बंद हो गए, पर हमारे नेताओं के रजवाड़े बनने लगे, फूलने-फलने लगे, फलों से लदने लगे, लदकर झुकने लगे, जनता को झुकाने लगे। इनके पर्स का मुकाबला बेचारा 'प्रिवी' भी क्या करता? तब के कितने राजा इनके दरबार में मंत्री-संतरी हो गए हैं।

लालकिले का मैदान शक्ति का परिचायक है। इसने शाहजहाँ, औरंगजेब से लेकर नादिरशाह तक की शक्ति यहाँ देखी है। आखिरी मुगल बादशाह जफर के वंशजों को इसी मैदान में तोप से उड़ाकर हमारे आका अंग्रेजों की शक्ति भी इसने देखी है। वतन के लिए मरते और वतन को चापलूसी से मारते देखा है इस मैदान में।

यही है वह मैदान, जहाँ से लेजाकर सुभाषचंद्र बोस के साथियों को लालकिले में हो रहे अभियोगों में पेश किया गया। यही है वह मैदान, जहाँ हर वर्ष जनवरी के अंतिम सप्ताह में होनेवाले दूसरे बड़े राष्ट्रीय पर्ववाले दिन चौदह किलोमीटर दूर राजपथ से चले आ रहे सेना के जवान परेड समाप्त होने पर जूते उतारकर छालों को दबाते देखे जाते हैं। मैदान साफ-साफ देखता है कि शाही आलम आज भी कायम है।

यह मैदान कभी पतंगबाजी और गिल्ली-डंडा के राष्ट्रीय टूर्नामेंट के लिए विख्यात था। यहाँ सलूनों पर अभी भी पेच लड़ाए जाते हैं। आज भी रंग-बिरंगी पतंगें उड़ाई जाती हैं। क्या मजबूत सद्दी प्रयोग की जाती है, क्या तीखा सीसे से गुजारा गया माँजा इस्तेमाल होता है। जिस दल ने पतंग बढ़ा ली, वह विजेता, जिसकी कट गई, वह परास्त। माँजे पर माँजा कैसे रगड़ा जाए कि डोर दूसरे की कटे, अपने की नहीं, यही मैदान सिखाता है, तभी तो कुछ सोचकर ही नेताओं ने इस मैदान में वार्षिक उत्सव मनाने की परंपरा रखी है।

गिल्ली-डंडा क्रीड़ा का वर्णन कवियों ने राम और कृष्ण के संदर्भ में भी किया है। इस मैदान ने इसे भी राष्ट्रीय खेल बनाया है—गुल्ली कैसे उड़े, गुच्ची कैसे पटे, डंडा कैसे चले, अन्नस पर कैसे पड़े; सब यहीं से सीखते हैं।

लालकिला मैदान में संध्या समय चंपी होती है, चंपी का भी राष्ट्रीय महत्त्व है। चंपी करके दल बदल दिया जाता है। सरकारें बदल जाती हैं या देर तक टिकी रहती हैं।

हे लालकिला मैदान! तुम यह सब खेल दिखाते रहे, सिखाते रहे, तुम्हारे शिष्य सीखते रहे, तुम कुछ नहीं माँगते, कुछ नहीं कहते हो, वे रहते हैं, तुम सहते हो, वे फलित होते हैं, तुम पद-दलित होते हो। वे अपनी कठोरता तुम्हें दे, तुमसे आर्द्रता पाते हैं। वे खुश होते हैं, तुम खुश्क होते हो।

और हे भारत के दिल, दिल्ली के वासियो! चलो-चलो, बढ़ते चलो। चलो-चलो, बढ़ते चलो, सजते चलो, लालकिला मैदान तुम्हें पुकारता है।

चलो आँधी या तूफान में लालकिला मैदान में। वही तुम्हारा भविष्य है। जय हिंद, जय लालकिला! जय लालकिला मैदान!

६५, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३ पश्चिम विहार
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९८८२२५

इस अंक के चित्रकार

कृष्ण कुमार 'अजनबी'

सुप्रसिद्ध चित्रकार एवं लेखक। रेखाचित्र-संग्रह 'मेरी बोलती तसवीरें', अनूदित नाट्य 'जगन्नाथ प्रिय नाटकम्' तथा एक व्यंग्य उपन्यास (उड़िया में), अनूदित कहानी-संग्रह 'अलौकिक और अन्य कहानियाँ' (हिंदी में)। कई रेखाचित्र प्रदर्शनियाँ आयोजित। छत्तीसगढ़ सीडी फिल्म 'क्रिकेट खेल होंगे महाभारत' के गीत एवं संवाद-लेखन के अलावा देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ एवं रेखाचित्र प्रकाशित।

ग्राम-पोस्ट : देवभोग, जिला : रायपुर-४९३८९० (छ.ग.)
दूरभाष : ९६९११९४९५३

कहानी

एक कहानी मेरी भी

● श्रद्धा थवाईत

सालों से मेरी दिनचर्या में सुबह की सैर अपना खूँटा गाड़े खड़ी है। चाहे बादल बरसे या पूस की कनकनाती ठंडी हवा चले, मेरी सुबह की सैर कभी बंद नहीं होती। उस दिन भी मैं सूर्योदय के साथ ही निकल पड़ा था। कुछ दूर जाते ही मैंने देखा कि एक क्षीणकाय बूढ़ा दौड़ा जा रहा है, उसके कमजोर शरीर पर सिर्फ मैली सी एक धोती थी। वह नंगे पाँव दौड़ रहा था, पर उसकी दौड़ उसकी उम्र और जर्जर काया से जवान थी।

उसके पीछे मेरा अर्दली दौड़ता आ रहा था। बूढ़े के चेहरे पर किसी दर्द और जुनून के गहरे भाव थे। वह कुछ अस्पष्ट से शब्द भी तेज आवाज में चिल्लाता जा रहा था। शब्द गोंडी बोली के थे। मुझे लोगों को समझने का जुनून है। इससे उपजे अधिकाधिक भाषा-बोली जानने के जुनून से मेरा गोंडी बोली से भी कुछ-कुछ परिचय हो गया है।

मुझे इतना समझ आया कि वह बूढ़ा, 'बूढ़ा देव! मैं आ रहा हूँ...मेरे सल्फी मैं आ रहा हूँ...' कहता दौड़ रहा है। उस बूढ़े के चेहरे में कुछ खास था। मैं रुक गया, कुछ देर पलटकर उसे देखता रहा। धीरे-धीरे वह दौड़ते हुए मेरी आँखों से ओझल हो गया, पर उस बूढ़े का चेहरा किसी पत्थर पर उकेरे निशान-सा मेरे मन पर उभर आया। कानों में भी उसकी जुनूनी आवाज गूँजने लगी। अब मुझसे आगे दौड़ा न गया, मैं वापस आ गया।

साढ़े नौ बजे मेरा अर्दली मड़कम पदामी हाजिर था। मेरे दिलोदिमाग में उस बूढ़े का जुनूनी चेहरा बार-बार उभर आ रहा था। मैंने उससे पूछा, 'सुबह क्या हुआ था? वह बूढ़ा कौन है?'

'साहबजी, वे मेरे बाबा हैं।'

'वे ऐसे क्यों दौड़ रहे थे?'

'बाबा जन्म भर गाँव में रहे हैं। उन्हें गाँव की मिट्टी, घर-आँगन, खेत सब बुलाते हैं। सातों दिन, आठों पहर गाँव की याद करते रहते हैं। आजकल उन्हें गाँव जाने के दौरे से पड़ने लगे हैं।' उसने जवाब दिया।

'हाँ! कुछ ऐसा ही चिल्ला भी रहे थे—बूढ़ा देव!...मैं आ रहा हूँ, मेरे सल्फी मैं आ रहा हूँ। वे यही कह रहे थे न।' मैंने अपने गोंडी बोली के ज्ञान को जाँचने के लिए पूछा।

'हाँ साहबजी! बाबा गाँव के माँझी थे। हमारे घर में बूढ़ा देव और माई विराजे थी। बाबा की मानता थी कि जब मेरा बेटा होगा तो वे बूढ़ा देव को पुजई देंगे, पर हम तो अब गाँव से दूर यहाँ हैं, उधर जा नहीं सकते। पर बाबा ने गाँव जाने की रट लगा ली है।' उसने अपनी समस्या बताई।

कहानी लेखन एवं अध्ययन में रुचि। समाचार-पत्रों व इंटरनेट पर रचनाएँ प्रकाशित। रायपुर (छत्तीसगढ़) में निवास। छत्तीसगढ़ राज्य वित्त सेवा अधिकारी के रूप में कार्यरत। 'साहित्य अमृत' युवा कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त।

मैंने दूसरे की समस्या को हल्के में लेने के सामान्य मानवीय व्यवहार का उदाहरण बनते हुए तुरंत हल सुझाया, 'तो यहाँ पुजई दे दो।'

'यहाँ तो पुजई दे चुके, साहबजी! पर बाबा के बूढ़ा देव तो गाँव के घर में हैं।' मुझे तत्काल जवाब मिला।

आज उस बूढ़े के जुनूनी चेहरे का रहस्य जानने के लिए मैंने बात करने का इरादा कर रखा था। मुझे लग रहा था कि सिर्फ इतनी ही बात उस गहन दर्द और जुनून को भरे चेहरे का कारण नहीं हो सकती, इसीलिए मैंने फिर उसे बात करने के लिए उकसाते हुए कहा, 'अरे, तुम्हारे घर के उस पत्थर में ही बूढ़ादेव थोड़े हैं, भगवान् तो सब जगह हैं। क्या यहाँ, क्या वहाँ? अब भी तुम कितनी पुरातनपंथी बातों को मानते हो, पदामी!' पदामी चुप रहा।

पदामी की आँखें जमीन में गड़ गईं, जैसे सोच रहा हो कि उसका कुछ कहना मेरी बात का विरोध तो नहीं लगेगा, फिर कुछ देर रुककर उसने कहा, 'साहबजी, आप बूढ़ादेव को नहीं मानते हैं, इसीलिए नहीं जानते। बूढ़ादेव गाँव-घर के देवता हैं, यदि नाराज हो जाएँ तो समूल नाश कर दें। बाबा डरते हैं कि वे बूढ़ादेव को छोड़ आए हैं तो देव जरूर नाराज होंगे। बूढ़ादेव बार-बार बाबा के सपने में आते हैं, उन्हें गरियाते हैं, मारते हैं। माँ को खोने के बाद अब हम सबको खोने के डर में बाबा अचानक ही ऐसे चिल्लाते हुए दौड़ पड़ते हैं।' अब पदामी की आवाज में कहीं खो जाने से आनेवाली गहराई आ गई थी। ऐसा लगने लगा, जैसे आवाज किसी गहरे कुएँ से आ रही हो।

आज अवकाश है, कहीं जाने की जल्दी नहीं। मैंने पदामी को उसके मन के कुएँ में उतरने दिया। वह मेरे सामने उकड़ूँ बैठ गया, कहीं डूबा हुआ सा। मेरे भीतर के लेखक कीड़े को इसमें एक कहानी दिखने लगी, इसीलिए मैंने उसे और कोंचा। 'अच्छा तो, बूढ़ादेव के प्रकोप के

डर से तुम्हारे बाबा गाँव जाना चाहते हैं?'

'बस यही कारण नहीं है, साहब।' अब उस भोले-भाले आदिवासी की आवाज किसी गहरी घाटी से आने लगी। 'बाबा बताते हैं, साहब, जब वे माँ के घर शादी से पहले रहने के लिए गए थे तो माँ ने सल्फी का एक पेड़ जंगल में उस जगह लगाया था, जो बाद में उनके घर का आँगन बना। बाबा से वह हमेशा कहती थी कि यह सल्फी हमारे प्यार की निशानी है। इसका ध्यान रखना। जब तक यह अच्छे से फूलेगा-फलेगा, वो मानेंगी कि बाबा उनसे प्यार करते हैं।' जवाब में बाबा कहते, 'जब तक माँ उनके बूढ़ादेव को पूजती रहेंगी, बाबा उनसे प्यार करते रहेंगे।' जब भी बाबा सल्फी का रस निकाल सल्फी बनाते, पहला दोना माँ को ही देते। वह सल्फी का पेड़ दोनों की आत्मा से जुड़ा था। कभी-कभी बचपन में मेरे को सल्फी से जलन होने लगती कि दोनों मेरे से ज्यादा इस सल्फी से प्यार करते हैं।'

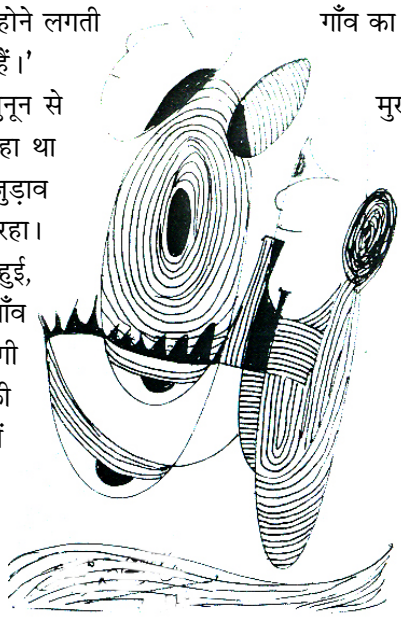

पदामी की बातों और बूढ़े के दर्द तथा जुनून से सराबोर चेहरे में मैं कोई संबंध नहीं जोड़ पा रहा था और न समझ पा रहा था कि जब गाँव से इतना जुड़ाव है तो यह उन्हें गाँव ले क्यों नहीं जाता? मैं सुनता रहा। वह उकड़ूँ बैठा था, आँखें दूर अनंत में देखती हुई, आवाज खोई-खोई हुई। वह कहता रहा, 'जब गाँव छोड़ना पड़ा तो माँ रो-रोकर पागल-सी होने लगी थी। वह कभी बूढ़ादेव के पास जाती तो कभी सल्फी को बाँहों में भर जोर-जोर से रोतीं। मुझसे कहतीं कि छोड़ दे हम दोनों को अपने गाँव, अपने जंगल में। यहीं जनमे हैं, यहीं मिट्टी बन जाएँगे। मैं कैसे उन्हें समझाता कि अब यह जंगल अपना नहीं रहा।'

'जब तुम्हारे माँ-बाबा को अपने गाँव से इतना प्यार था तो तुम्हें उन्हें गाँव में ही छोड़ देना था। बीच-बीच में खुद जाकर देख आते। बड़े पेड़ अपनी जमीन पर ही पनपते हैं, दूसरी जगह उनकी जड़ें फिर से जम नहीं पातीं। अपने घर में तुम्हारे माँ-बाबा खुश तो रहेंगे। उन्हें अभी भी भेज दो।' सुबह उसके बाबा का जुनूनी चेहरा याद आते ही यह वाक्य मेरे जबान से निकल गया, लेकिन इसका जो उत्तर आया, वह मेरे लिए अकल्पनीय था।

'मैं भी तो बेटे का दिल रखता हूँ, साहब। कैसे छोड़ देता उन्हें गाँव में मरने के लिए। आप कभी 'उधर' गए नहीं हैं, इसीलिए ऐसा कह रहे हैं। आपके लिए उधर नया है साहेब। मैं यदि माँ-बाबा को गाँव में छोड़ देता तो वहाँ के लोग मेरे माँ-बाबा को मारने में चार दिन भी नहीं लगाते···मैं पुलिस में आ गया हूँ, न साहब। कभी उधर गया और पकड़ में आ गया तो वे लोग मेरे को उसी क्षण मार डालेंगे। अब उधर ऐसा ही होता है, साहब।'

इतना कहते हुए पदामी की आवाज कहीं डूब सी गई, बुदबुदाती हुई आवाज में जो सुनाई आया उसका मतलब था, 'यहाँ लाकर भी कहाँ बचा पाया माँ को···और बाबा को भी तो पल-पल की मौत जैसी जिंदगी ही दे पा रहा हूँ।'

माहौल कुछ ज्यादा ही भारी लगने लगा। मैंने जितना सोचा था, कारण उससे कहीं अधिक गंभीर था। आखिर ये नक्सलवाद सिर्फ उस बूढ़े को ही नहीं, समाज को भी दर्द दे रहा है। मैंने माहौल कुछ हल्का करने के लिए पूछा, 'कहाँ है तुम्हारा गाँव?' जो जवाब मिला, वह मेरे अर्दली का जवाब नहीं था। वह जवाब में किया प्रश्न था, अपनी जमीन से जबरदस्ती काट दिए गए इनसान का, 'गाँव अब हमारे हैं कहाँ, साहब! आपने कभी उधर के गाँव देखे हैं, साहब?'

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं था, पर मैंने इस प्रश्न में छुपे अर्थ को भाँपते हुए, कुछ अकचकाते हुए जवाब दिया, 'अरे हाँ, भाई! मैं भी गाँव का ही हूँ। मेरा बचपन गाँव में ही बीता है।'

'साहब, आप इधर के गाँव के हैं। उधर तो जिला मुख्यालय आपके गाँव के बराबर होगा। उधर दस-पंद्रह घरों का एक गाँव हो जाता है। अब उधर के गाँवों में वहाँ के लोग ही बचे हैं। बाकी सभी या तो हमारे समान बाहर आ गए हैं या राहत शिविर में रहते हैं। पूरा-का-पूरा गाँव उधर का ही हो गया है।' पदामी ने कुछ तल्खी से कहा। अब मुझे पदामी की बात की गंभीरता समझ में आ रही थी। उसकी आवाज में उभर आई तल्खी का कारण समझ आ रहा था। फिर भी मैंने उसके ही शब्दों में सुनने के लिए कहा, 'ये क्या इधर, उधर लगा रखा है? क्या मतलब है इसका?'

मेरे इरादों से अनजान वह बोलता गया। साहब— 'उधर सब वहाँ के लोगों का नाम नहीं लेते, डरते हैं, साहब! जैसे नाम लेते ही वे सामने आ खड़े होंगे। उधर के लोगों को आप लोग 'नक्सली' कहते हैं, साहब।'

'तो तुम पुलिस में आने के बाद कभी उधर नहीं गए?' मैं भी उसके समान ही बात करने लगा। अब मुझमें किसी कहानी को पाने का लोभ नहीं था। अब तक मैं नक्सलवाद के कारण और निदान की चर्चाएँ सुनते और करते आया था। पुलिस का पक्ष जानता था, पुलिस मुठभेड़ के प्रभावितों की आवाज सुनी थी, बुद्धिजीवियों का पक्ष सुना था, पर उस क्षेत्र से कटने के लिए मजबूर हुए किसी रहवासी की आवाज नहीं सुनी थी। मेरे पास उस पक्ष को सुनने का मौका आया था, इसीलिए मैं उसे और कोंचने लगा। 'दो बार गया था साहब, एक बार माँ-बाबा को लाने। उन्हें बचाने के लिए मैं यहाँ लेकर आया, पर कोई मतलब नहीं निकला, साहब। मेरी माँ की जड़ें तो सल्फी के पेड़ से जुड़ीं थीं, जैसे ही दोनों अलग हुए, माँ सूखती गई, कितना समझाया, साहब कि उधर खतरा है, नहीं जाने दे सकता, पर माँ अकसर बाबा से कहतीं, 'अब तो मैं तुम्हारे बूढ़ादेव को नहीं पूजती और तुम भी मेरे सल्फी को छोड़ आए। अब मैं नहीं जीऊँगी।' जब तब माँ थी, तब अकसर माई माँ की कपाल में चढ़ जाती और सल्फी माँगती। 'उनके अपने पेड़ की सल्फी

का रस।' माँ कुछ खाती, न पीतीं, बस 'सल्फी' की रट लगातीं।'

मैं अपनी कुरसी पर कसमसाते पर सुनने की जिज्ञासा रखे बैठा रहा। 'बेटा हूँ, साहब, मुझसे माँ का हाल देखा नहीं गया, एक दिन बिना बताए निकल गया, रात के अँधेरे में छुपते-छुपाते गाँव पहुँचा। सोचा था कि चुपचाप सल्फी का रस निकाल लाऊँगा, पर सल्फी की जड़ें भी तो माँ से जुड़ी थीं साहब, वो सूख गए थे। मैं वापस आ गया, यह सोचते हुए कि माँ को कुछ नहीं बताऊँगा, पर शायद जड़ से जड़ की बात माँ तक पहुँच गई। मेरे आने से पहले ही माँ चल बसी थी।'

मेरी कसमसाहट और बढ़ गई। मैंने सोचा, उफ! इसका अनुभव कितना दर्दनाक है। इस समस्या ने ऐसी कई कहानियों को जन्म दिया होगा, जिससे हम सब अनजान हैं। इस समस्या से प्रभावितों की चर्चा में यह पक्ष तो सदैव उपेक्षित ही रहा है। पहले मैंने किसी कहानी की खोज में उसे कुरेदा था, लेकिन अब मैं बस इसका पक्ष जानना चाहता था। इतने कष्ट को अभिव्यक्त करने में कोई शब्द समर्थ नहीं हो सकता।

'अच्छा, तुम्हारे बाबा तभी से गाँव जाने की जिद पकड़ने लगे हैं।'

'हाँ साहब! बाबा पहले मेरी स्थिति समझते थे, पर जब से माँ गई हैं, तब से बाबा को अकसर दौरे पड़ने लगे हैं। वे कहते हैं, 'मैंने सल्फी को छोड़ दिया, इसीलिए तेरी माँ चली गई। बूढ़ादेव को छोड़ दिया, इसीलिए बूढ़ादेव नाराज हैं, कहीं तुम लोग भी न चले जाओ,...मनाना होगा,...पुजई देना होगा, मैं गाँव जा रहा हूँ।' और बाबा बस किसी भी पल चिल्लाते हुए दौड़ पड़ते हैं।'

पदामी बोले जा रहा है, जैसे कोई पका फोड़ा फूट गया हो। रिसते मवाद की बू मेरे जेहन में उतरने लगी। पहले तो मैंने किसी कहानी की खोज में उसके जख्मों को कुरेदा था, पर बाद में मुझमे कहानी का नहीं, नक्कारखाने में तूती की इस आवाज को सुनने का विचार ही छाया रहा, जो मैं उसके जख्म कुरेदता रहा। 'नक्सलवाद एक नासूर है', आज तक यह वाक्य कई बार पढ़ा, सुना है, खुद भी कहा है, पर उस दिन जब इस नासूर के दर्द का एक छोटा सा हिस्सा मेरे सामने आया तो मैं आपादमस्तक हिल गया।

पदामी का फोड़ा अब भी रिस ही रहा था। 'साहब, अब भी मानवाधिकार वाले उधर के लोगों को ही जुल्मों का शिकार और 'बेचारे' मानते हैं। मैं पहले एस.पी.ओ. बना, फिर पुलिस में आ गया। मैंने यही पाप किया, साहब। आपने कहा है न कि बड़े पेड़ एक जगह से उखड़कर दूसरी जगह नहीं पनपते, इसीलिए मुझे अपने माँ-बाबा को खोना पड़ा। मैं तो नया पेड़ हूँ, पनप गया। लेकिन कड़ी धूप में छाँव की जरूरत तो सभी को होती है, साहब! मेरे को भी थी, लेकिन मेरी छाँव तो छीन ली गई।'

मैं हतप्रभ बैठा रहा। कुछ न कह सका। तभी पदामी ने आगे कहा, 'अच्छा साहब! आप तो कहानी कहते हैं न, कहिए न, एक कहानी मेरी भी, कि वो मानवाधिकारवाले, मेरे जैसों का दर्द भी सुन सकें।

एफ-५, पंकज विक्रम अपार्टमेंट,
शैलेंद्र नगर, रायपुर-४९२००१ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ०८८९४००९९२०

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

उमड़ता है खयालों में समंदर

● विनय मिश्र

: एक :

जो डूबा है वही तारा तलाशूँ,
मैं अपने में तेरा होना तलाशूँ।

जवाबों से गई उम्मीद जब से,
सवालों में कोई रस्ता तलाशूँ।

तुम्हारे लौटने तक भी तुम्हीं हो,
खुदा का शुक्र है मैं क्या तलाशूँ?

मेरा चेहरा अगर मिल जाए मुझको,
तो फिर गुम है जो आईना तलाशूँ।

तेरी मौजूदगी महसूस कर लूँ,
कोई ठहरा हुआ लम्हा तलाशूँ।

मैं सूरज की तरह जलने लगा हूँ,
नदी में धूप की छाया तलाशूँ।

बुरे दिन हैं मगर ये जिद है मेरी,
इन्हीं में कोई अच्छा सा तलाशूँ।

: दो :

मैंने जितनी दुनिया छानी,
सारी दुनिया पत्थर-पानी।

इन आँखों का खारा पानी,
देता मीठी याद पुरानी।

तुमसे ही मेरी दुनिया है,
अब तुमसे क्या बात छुपानी।

प्यार का मौसम ही ऐसा है,
आते रहते हैं सैलानी।

कैसे देखूँ आँख उठाकर,
अपनी बस्ती की वीरानी।

मैं ही करता हूँ पतझर में,
बीते मौसम की दरबानी।

नइया कैसे पार लगेगी,
लहरों पर तेरी निगरानी।

खुद आई है मुझसे मिलने,
भूली-बिसरी एक कहानी।

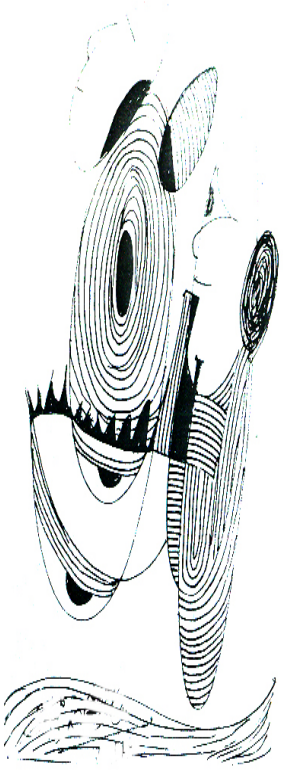

: तीन :

सफर को मंजिलों में रख लिया है,
मिला जो अनुभवों में रख लिया है।

तुझे ऐ जिंदगी खोने से पहले,
बचाकर आँसुओं में रख लिया है।

कहाँ तक याद के मंजर खँगालूँ,
सँजोकर कागजों में रख लिया है।

इशारों में कहीं सबकुछ कहा है,
कहीं सब चुप्पियों में रख लिया है।

बनी रहती है बढ़ने की जरूरत,
वो किस्सा चिट्ठियों में रख लिया है।

तुम्हें महसूस करती है हवा भी,
तुम्हें जो खुशबुओं में रख लिया है।

यहाँ तक मैं दु:खों से भर गया हूँ,
उदासी को सुखों में रख लिया है।

: चार :

तेरी रचना हूँ, तेरा संसार हूँ,
तेरा ही चेहरा तो आखिरकार हूँ।

एक सपना ही सही, पर हूँ तो मैं,
जिंदगी को दे रहा आकार हूँ।

तुम मेरी उम्मीद हो बहती हुई,
मैं तुम्हारी नाव की पतवार हूँ।

मैं चमकता हूँ अँधेरे में बहुत,
रोशनी की जादुई मीनार हूँ।

तुम नदी हो और सागर की तरह,
मैं तुम्हारे बोध का विस्तार हूँ।

एक बँटवारे में हूँ दोनों तरफ,
एक आँगन में उठी दीवार हूँ।

कुछ नहीं बाकी है खोने के लिए,
आज वो उजड़ा हुआ घर-बार हूँ।

जाने-माने रचनाकार। 'सच और है' (गजल-संग्रह); 'समय की आँख नम है' (गीत-संग्रह); 'सूरज तो अपने हिसाब से निकलेगा' (कविता-संग्रह); 'इस पानी में आग' (दोहा-संग्रह); 'पलाश वन दहकते हैं' स्व. मंजु अरुण की रचनावली का संपादन। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज.) के हिंदी विभाग में कार्यरत।

: पाँच :

ये देखा है तुम्हारा नाम लेकर,
उमड़ता है खयालों में समंदर।

जरूरी भी नहीं है कहना सबकुछ,
कई बातें हैं इन बातों के बाहर।

यहाँ से किस तरफ जाता है रस्ता,
किसी से पूछने में भी लगा डर।

भरा है जो उसे बाजार कहिए,
जो खाली है वही तो अपना है घर।

नहीं मालूम था तुम मुझसे मिलने,
चले आओगे इतनी दूर चलकर।

कई रातों की बारिश में करे क्या,
उदासी का अकेला एक छप्पर।

नहीं है चाँद में कुछ भी अनोखा,
घड़ी बस वो हुआ करती है सुंदर।

बी-१६१, हसन खाँ मेवाती नगर
अलवर-३०१००१ (राज.)
दूरभाष : ०९४१४८१००८३

पिंजर

मूल : **साहिब सिंह गिल**

अनुवाद : **फूलचंद मानव**

उस दिन अमरीका में 'राष्ट्रपति दिवस' मनाया जा रहा था। जगह-जगह जश्न हो रहे थे। राष्ट्रीय झंडा फहराया जा रहा था। राष्ट्रपति अपने भाषण में अमेरिका के गणतंत्र का गुनगान कर रहे थे। उस अवसर पर देश-प्रदेश से आई पीड़ित माएँ अमेरिका के साथ लगती मैक्सिको की सीमा पर 'सेक्स सलेवरी' के खिलाफ प्रदर्शन कर रही थीं। अगवा हो चुकी बेटियों के चित्र उनके गले में लटक रहे थे।

स्वेतलाना, जो सेक्स सलेवरी को निज पर भोग चुकी थी, राष्ट्रपति से मुखातिब होकर कह रही थी, 'हे शहंशाहे-आलम! आपके आँगन में ये क्या गुल खिल रहे हैं। दूसरे देशों की चिंता भूल जाओ। पहले अपने देश के कचरे की सफाई करो।

'लिंकन ने कभी इस धरती पर गुलामी की जंजीरें तोड़ी थीं। आज उसी धरती पर गुडियापटोले खेलने वाली उम्र की लाखों बेटियाँ गुलामी की जंजीरों में जकड़ी वेश्या का जीवन जी रही हैं। वेश्या की फिर भी अपनी इच्छा होती है, इन गुलामों की तो इच्छा भी कोई नहीं। हर समय लुट रही हैं। दिन-रात रूई (कपास) की तरह धुनी जा रही हैं। कमाई कोई और ले जाता है। चार-पाँच डालर में पंद्रह-पंद्रह मिनट की शिफ्ट लगाने के लिए सुबह से बिठा दी जाती हैं। और रात के उस समय तक बहती हैं, जब तक डालर बरसते हैं। दिन-रात, चौबीसों घंटे, हफ्ते के सातों दिन, वर्षों तक आधी भूखी, मुरदार की तरह कोंची जाती रहती हैं। दो-तीन साल में पिंजर भर रह जाती हैं। फिर उस पिंजर की 'शक्ति' न जाने कहाँ खपा देती हैं।

'गरीब देश में चकले में बैठकर एक दिन के दो हजार रुपए लेती हैं। अमरीका पहुँचकर वही तीस हजार डालर मौसी की हथेली पर टिकाती हैं। जितनी सुंदर और कमसिन होती है, उतनी अधिक कमाई देती है। इसीलिए मासूम, छोटी उम्र की लड़कियाँ ही अगवा की जाती हैं।

'वे मर्द के बराबर की इनसानी जिंदगी नहीं जी रहीं। सच्ची बात तो यह है कि उनके साथ व्यवहार पशु से अच्छा नहीं हो रहा। पशु-सी, बेची और खरीदी जाती हैं। सौदागर गरीब देशों से उन्हें कौड़ियों के मोल लाते हैं। उन्हें अमरीका में बेचकर, डॉलर इकट्ठे कर ले जाते हैं।

'लता से कली की तरह तोड़कर चकले पर बिठा दी जाती हैं। इस देश में ऐसे अपराध की सजा तीस साल है, लेकिन मिलती किसी को नहीं। यह कानून फाइलों की कब्र में दबा हुआ है। इस धरती पर लाखों अपराध होते हैं। अमरीका में इनकी संख्या हजारों में है।

'बादशाह सलामत! आप दो बेटियों के पिता हैं। और चकले में बैठनेवाली भी किन्हीं विवश माँ-बाप की संतान हैं। आप मैक्सिको के बॉर्डर तक कई बार हो आए हैं। इनमें से कई गरीबों, गायों के शव लावारिस देखे होंगे। उन्हें देख पत्थर भी रो पड़े। क्या उनकी हालत पर आपको रोना नहीं आया?

'किस्मत की शिकार माँओं के पिंजर पृथ्वी के दूसरे छोर से देख लिए। आपके कोर्ट में इनसाफ की भीख माँगने आई हैं। जीते जी इनका मिलाप नहीं करवा सके। रब के वास्ते, उनकी झोली में अस्थियाँ ही डाल दो।'

स्वतंत्रता प्रदर्शनी के बाद पत्रकारों से मुखातिब थी—'मेरे पिता को, जो पहली सरकार के स्तंभ थे, मारकर मुझे और मेरी छोटी बहिन को राजनीतिक गुंडे ले गए। रह गए दोनों माँ और बीरा, नरक भोगने के लिए। पिता से क्या बदला लिया? बदला तो हमसे लिया, जिन्हें पढ़ने की उम्र में 'सेक्स स्लेब' बना दिया।'

रूस के गिर जाने पर कानून कहीं नहीं रहा। गुंडाराज आ गया। अर्थतंत्र धड़ाम आ गिरा। बेकारी बढ़ गई। पहले औरतें काम पर थीं, बेकार हो गईं। रोजगार की तलाश में लोग बाहर जाने की कोशिश करने लगे। अमरीका सबके लिए आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। अमरीका के नाम पर माफिया लाभ उठा गया। वैसे नर्स, बेबी सिटर आदि के नाम पर ले जाते और कच्चे मांस के सौदागरों को बेच देते हैं।

रूस के साथ ही पूर्वी यूरोप के देशों का आर्थिक ढाँचा बिखर गया। वहाँ भी पूर्वी यूरोप के लोग ट्रैवल एजेंटों के गलत प्रचार का शिकार हो रहे थे। उन्हें समीप की पश्चिमी यूरोपीय मंडी में लाकर बेच देते। लेकिन पैसे कम मिलते। पहले बड़े शहरों की माँग पूरी होती। बाकी को अमरीका के लिए जहाज भरकर मैक्सिको सिटी में एकत्र करते रहते हैं।

मुझे व तीन और लड़कियों को बॉर्डर के पास मैक्सिको के एक शहर में ले गए। पेशे की ट्रैनिंग के लिए एक मैडम को सौंप दिया। छोटी मुझसे ही बिछुड़ गई। हमारे चलने के समय वह आँखें भरे खड़ी थी। लेकिन पत्थर दिल लोगों से डरती चूँ-चाँ नहीं कर पाई। माँ-बाप से दूर किया था, बहिन का सहारा भी न रहने दिया।

वहाँ संदेह की तलवार हर समय सिर पर लटकती रहती। दिन-रात धंधा कर उनके लिए नोट छापती। हमें दो वक्त की भरपेट रोटी नसीब

नहीं होती थी। काम के समय मात्र चॉकलेट के एक-दो पीस खा लेते। साथ कोक पी लेतीं। अमरीकियों जैसी दिखने के लिए मेमोंवाला, गोरियों का पहनावा डाल लेती। मैकअप का सामान खत्म नहीं होने देते थे। मुँह से निकालते ही आ जाता।'

'दिनभर तितली बनी रहतीं। ठीक से निजी ध्यान देने पर ग्राहक बढ़ जाते। कभी कोई सौदागर भी आ जाता। उससे अच्छे हाथ रँग लेती।

मेरे साथ की चार लड़कियों को दूसरे सेंटर में ले गए। माह भर वहाँ उन्हें आरंभिक ट्रेनिंग दी। फिर सभी सिखलाई केंद्रों की लड़कियों को बड़े पैमाने पर पंद्रह-बीस के टोलों में बाँटकर अगली ट्रेनिंग के लिए नई जगह भेज देते थे।

तुम अमरीका कैसे पहुँच गई? मैं जानना चाहती थी। माफिया मैक्सिको से सीमा कैसे पार करवाता है। सिखलाने के बाद लड़कियों के व्यापारी आने लगे। कभी हमें 'बीच पर' मंडी दिखाने ले जाते। शनि व रविवार को वहाँ अच्छा मेला लगता था। अमरीका से बहुत लोग मनोरंजन के लिए आते थे। छोटे व्यापारी एक-दो लड़कियों का सौदा करते। बड़े सौदागर थोक में सौदा कर लेते। सीमा पार करके आगे जहाँ-जहाँ माल 'डिलीवर' करना होता, बात कर लेते।

वह कोर्स पूरा कर लेने पर मुझे और रोजी को एक अन्य लड़की के साथ एक नए शहर भेज दिया। न जाने हममें क्या कमी रह गई थी। हो सकता है, हमसे उन्हें बगावत की बू आई हो, और किसी खास कोशिश के लिए भेजा हो। वहाँ मासियों का डंडा चलता था। छोटी-छोटी बात के लिए सर्कस के जानवरों की तरह हरेक पर पटा चलता। छाँटे से पीटते। पीटने के कारण शरीर पर नीले निशान पड़ जाते। यूनीफार्म में रहना पड़ता। सिर पर बेसवाल की टोपी। ऊपर जींस की कमीज, नीचे जींस की पैंट। देखने वाले को छात्राएँ या खिलाड़ी लड़कियाँ नजर आतीं। हमारे धंधे के बारे में पता नहीं चलता था। असल शिक्षा प्रैक्टिकल के लिए मर्दों के सामने हाजिर रहतीं। उन्होंने विश्व प्रसिद्ध खजुराहो-सी मूर्तियों के आसन सिखाए। वे पशुओं जैसे लोग थे। नशा करते और अपना स्टेमिना बनाते। साँस पक्का करते, जैसे लंबी दौड़ के लिए तैयारी कर रहे हों। शुरू में कोई-कोई बेहोश भी हो जाती थी। हम पानी की फुहार मारकर उसे होश में कर लेते। नए सिरे से फिर शुरू करते। मेरा रोना निकल आता। दया तो क्या करनी थी। तरह-तरह के दु:ख देते। जागते रहना पड़ता, भूखी रहतीं। जब तक उनके अनुसार 'सीधी न हो जाती' बुरी तरह से पेश आते। कभी अपने दु:ख के साथ छोटी बहन याद आ जाती। उसकी चिंता करती। वह छोटी उम्र की थी, उस पर न जाने क्या बीतती होगी? बड़े दुख की बात है कि संशोधन करनेवाली महिलाएँ थीं। महिलाएँ भी वे, जो हमारी तरह कष्ट झेल चुकी थीं। मेडल खलनायक के तलवे चाटने के कारण मिला होता। यदि कहीं माँ जैसी मोह दिखातीं, उसके पीछे भी एक रहस्य होता। कोर्स के अंत में खलनायक को इनमें से किसी के बारे में बुरी रिपोर्ट मिलने पर उसका अंत मौत था। न कोई दाद न फरियाद। हमें सेंटर में भेजा ही इसके वास्ते था, सीधी करने के लिए। कई महीने इस तरह मैक्सिको में लग गए।

कोर्स पूरा हो गया। न जाने हम दोनों को एक अन्य कसबे में, जिसका नाम 'टी' से शुरू होता है, क्यों भेज दिया? वे शहर में टॉप का माल चुनकर रखते। वहाँ से आगे अमरीका भेजते थे। उनमें मैं भी थी। हम अमरीका पहुँचकर चकले का काम सफलतापूर्वक चला सकती थीं। शहर किले-सा था। पहरा लगा रहता। किले की तरफ से चिड़िया नहीं फटक सकती थी। अंदर जाने का एक दरवाजा था, बाहर के लिए दूसरा। गेट पर हर समय पहरा लगता। यदि कोई बाहर से भूलकर भी जा घुसता, उसकी जान की खैर नहीं थी। हमारा बाहर जाना-आना बंद। जाना गाड़ियों में ही हो पाता, वह भी धंधे के लिए। पुलिस पूरा सहयोग देती, मानो सरकारी अदारा हो।

रोजी की माँ बहुगुणी थी। बेटी की तलाश में उसने सारी दुनिया छान दी। खोजते-खोजते वह हमारे शहर आ पहुँची, जहाँ उसकी रोजी थी। पूरे यत्न करके भी वह शहर में दाखिल नहीं हो पाई। पुलिस तक पहुँची, फिर भी किसी ने नहीं जाने दिया। इतना पता चल सका कि रोजी ठीकठाक है। वहीं से अमरीका भेज दी गई है। रोजी की माँ पीछे-पीछे जाना चाहती थी, मगर बीजा नहीं मिला। सिर्फ फोन पर माँ-बेटी की बात हो सकी थी। रोजी रो रही थी। उसका मन भर आया, बोल नहीं पाई। हिचकी लग गई थी। इधर माँ की रुलाई निकल गई। जोर-जोर से फूटकर रो रही थी। पास बैठे पिता का बुरा हाल था। आँसू बहाने पर मन हल्का हुआ। फिर कहीं कुछ बात हो सकी।

रोजी ने कहा, 'माँ, मुझ पर कठोर पहरा लगा है, सुबह-सवेरे कार में अड्डे पर छोड़ आते हैं। आधी रात तक···घंटे-दो घंटे में ही शरीर मुरदा हो जाता है। फिर पता नहीं मेरी लाश के साथ क्या होता रहता है!'

'हिम्मत कर, बेटी! उड़ारी मार आ। शेरनी बन जा। हर रोज मरने से एक दिन मरना कहीं अच्छा है।' माँ बेटी को लड़ने-मरने के लिए तैयार कर रही थी।

'मुओं ने मेरे पंख नोंच लिये हैं। उड़ारी कैसे लगाऊँ? आप लोग सब्र का घूँट भरो।' रोजी ने जीने की आस छोड़ दी थी। हर समय मौत की प्रतीक्षा रहती।

रोजी की माँ ने कबीले में बता दिया। अगवा होते ही तुरंत पुलिस को या घर में ही फोन कर देते। अपराधी दबोच लिये जाते। उन सबके आँखों के सामने लड़की को उठाया और कार में ढूस लिया। किसी ने आवाज नहीं निकाली। मुँह भी सी दिए गए मानो। एक माह ऐसा ही तीन लड़कियों के साथ हुआ।

मैंने उन्हें कहा, 'बीती बात पर ही पछता रहे हो। पहले हिम्मत नहीं कर सके तो अब पुलिस को रिपोर्ट कर दें। जब आपको पता है, रोजी मैक्सिको के इस शहर में माफिया के नियंत्रण में बँधुआ बनी है, तो दोनों देशों की पुलिस को फोन करो।'

'पुलिस तो खुद धंधे में भाईवाल है। उन्हीं के प्रश्रय में तो जगह-

जगह कारोबार चलता है। जहाँ भाईवाली नहीं होती, वहाँ महीना बँधा होता है। सरकार को पता होता है कि क्या हो रहा है। माफिया के हाथ बहुत लंबे हैं। सरकार में सैल होते हैं। शिकायत करके जान गँवानी है क्या?' श्वेतलाना ने स्पष्ट कर दिया।

तुम अमरीका कैसे पहुँच गई? मैं जानना चाहती थी। माफिया मैक्सिको से सीमा कैसे पार करवाता है। सिखलाने के बाद लड़कियों के व्यापारी आने लगे। कभी हमें 'बीच पर' मंडी दिखाने ले जाते। शनि व रविवार को वहाँ अच्छा मेला लगता था। अमरीका से बहुत लोग मनोरंजन के लिए आते थे। छोटे व्यापारी एक-दो लड़कियों का सौदा करते। बड़े सौदागर थोक में सौदा कर लेते। सीमा पार करके आगे जहाँ-जहाँ माल 'डिलीवर' करना होता, बात कर लेते।

पाँच लड़कियों को अमरीका जाने के लिए चुना गया। उनमें मैं और रोजी शामिल थीं। रोजी माहभर पहले चली गई। चार हम थीं, पाँचवीं मौसी और एक मालिक का आदमी, जो इनचार्ज बनाया गया। हमें बॉर्डर तक वे खुद छोड़ गए। सचेत भी कर गए। किसी ने खिसकने की या पुलिस को सूचना देने की हरकत की, उसका परिवार··· । मैक्सिको से लगता अमरीका का बॉर्डर पार करना आसान है। तीन सौ मील लंबा है। अमरीका से कंट्रोल मुश्किल है। मैक्सिको सरकार सीमा पर रोकना नहीं चाहती। सीमा पार करके लोगों को रोजगार मिलता है। बेरोजगारी की समस्या हल होती है। वहाँ की पुलिस पहले ही बिकी हुई थी। पाँच सौ डालर प्रति व्यक्ति रखवा लिया। उससे अलग दो-ढाई हजार बॉर्डर पार करवाने के लिए, स्मगलरों का पक्का बँधा हुआ था। स्मगलरों की सियासी लोगों से साँठगाँठ थी। आगे रोकना, न रोकना अमरीका की सिरदर्दी समझी जाती है। मन से हम चाहती थीं कि पकड़ी जाएँ। डिपोर्ट हो जाएँ। सरकारी खर्च पर घर पहुँच जाएँगी। माफिया का डर नहीं रहेगा। लेकिन कुछ कर नहीं सकती थीं, असमर्थ थीं। मालिकों की नजर में थीं। सोने के बिसकुटों की तरह बचा-सँभालकर ले गए।

बॉर्डर पर हमें बारह-तेरह फुट ऊँची, काँटेदार तार फाँदनी पड़ी। आगे तपता मरुस्थल था। मरुस्थल क्या पार करना था, हमारी पहाड़ से टक्कर थी। एक को साँप ने डस लिया। हमें एक तरफ अमरीका पुलिस का डर, दूसरी तरफ माफिया का। उन्हें गोली चलाते हुए कुत्ते को मारने जैसा तरस भी नहीं करना था। एक बात सोचती। मरनेवाली खुशकिस्मत है। उनकी 'सेक्स-स्लेवरी' की जून कट गई। हम जीवित सिरे लग गईं। हमारा भाग्य ही बुरा था। हमें गंदगी के कीड़े की जून जीने पर विवश होना पड़ा। मौत के साथ दो-दो हाथ करते मरुस्थल से पार हो गया। दूसरी टोलियों की लड़कियाँ वहाँ पहुँच गईं। मेरी छोटी बहन भी वहाँ मिली।

आगे गैंग के लोग ट्रक लगाए खड़े थे। उन्होंने अपना-अपना माल सँभाल लिया। एक ट्रक 'लॉस एंजेल्स' को चल दिया। हमारी ट्रक पूर्व की तरफ न्यूयॉर्क जानेवाली थी। जिसका माल बुक किया था, वह आगे रेस्ट एरिया में बाथरूम के आगे खड़ा था। संकेत करके वह बाथरूम में चला जाता तथा पीछे-पीछे उस गिरोह का मुखिया भी। दो-एक मिनट में बात हो जाती। एक तरफ होकर संबंधित लड़की को सौंपकर चल पड़ते। पशु की तरह लड़की को पता ही न होता कि उसका रस्सा किस खसम को पकड़ा दिया गया है। अच्छे भविष्य के लिए अमरीका जाने की आस टूटती नहीं थी। रास्ते में तीन-चार रातें निश्चित होटलों में काटनी पड़तीं। पाँच तारा होटल में ठहरते। इन जगहों पर रहते तो संदेह नहीं होता था। हमें न्यूयॉर्क से पचास मील पहले एक कस्बे में उतार दिया। ट्रक आगे निकल गई।

एक दिन अनधिकृत रहनेवाले प्रवासियों के संदेह में पुलिस ने छापा मार दिया। प्रवासी तो नहीं मिला कोई। हम फँस गईं छह लड़कियाँ। हम तीन लड़कियाँ दो-तीन दिन पहले पहुँची थीं। तीनों कमसिन, सुंदर। अन्य वहीं दो-तीन साल से नर्क भोग रही थीं। उनके चेहरे उतरे हुए थे। रंग पीला, शरीर हड्डियों की मूठ बना हुआ था। दिन-रात बहती हुई मरी पड़ी थीं। उन्हें देखकर लगता, सेक्स स्लेव लड़कियाँ दो-तीन साल ही काटती हैं, फिर उनकी हालत पुरानी मुरगियों-सी हो जाती है। कमाकर नहीं देतीं। किसी मरुस्थल में ले जाकर खपा देते हैं। वे डरती हुई मुँह से कुछ नहीं कहतीं। पुलिसवालों ने हमारे ठिकानों की तलाशी ली। तकियों के नीचे गर्भ निरोध और गर्भपात की गोलियाँ निकलीं। काले परदे तानकर हमारे लिए रहने को छोटे-छोटे कैबिन बनवाए थे। कैबिनों पर रात के लिबड़े सने अंडरवियर सूख रहे थे। पुलिस को धंधे के सबूत मिल गए।

अंग्रेजी किसी को नहीं आती थी। मेरी मैडम मैक्सिकों की होने के कारण स्पेनिश जानती थी। पुलिस का काम चल गया। मैक्सिको साथ लगने के कारण पुलिस ने भी स्पेनिश सीखी हुई थी। अपनी काररवाई पूरी करके सरकार ने सेक्स स्लेव होने के आधार पर हमें आजाद कर दिया। दोषियों पर केस फाइल करने के लिए हमारी गवाही ले ली।

तीसरी दुनिया के गरीब और पिछड़े हुए देशों में सेक्स-स्लेवरी की दशा इससे बदतर है। उन्हें हिंदुस्तान, पाकिस्तान, बँगलादेश, नेपाल, भूटान, फिलीपाइन, थाईलैंड आदि से खरीदकर मिडल ईस्ट की मंडी में बेच दिया जाता है। पत्रकारों ने बहुत से प्रश्न पश्चिमी देशों के बारे में पूछे।

'सैम! तुम कैसे फँसे?' न्यूयॉर्क टाइम्स के पत्रकार ने स्वेतलाना के साथवाली बरिडा से पूछा। 'मैं पाँच-सात साल की माँ की गोद में खेल रही थी। पापियों ने ऐसा छल खेला, मेरे माँ-बाप इनकार नहीं कर पाए। बस सोच लिया कि कोई गोद ले ले और अमरीका पहुँच जाऊँ। जी भरकर खाऊँगी। यहाँ की गरीबी से निकलूँगी। हमारे दरवाजे पर बँधी

बकरी देखकर एजेंट ने हमारी गरीबी भाँप ली। निर्धन माँ-बाप का मनोविज्ञान समझ गए। इतने सुंदर बच्चे को गोद लेने के लिए अमरीकन युगल तरसते हैं। घर में भूख से क्यों इसे मार रहे हो। हमें 'गोद' दे दो। सुनकर माँ का चेहरा खिल उठा। उन्होंने पाँच सौ मैक्सिकन रुपए मेरी माँ की हथेली पर दिए और मुझे लेकर चले आए। बाद में पता चला, वे ट्रैवल एजेंट नहीं, लॉसतीनो कबीले के 'कंजर' कहलाने वाले ठग थे। साल-दो साल घर में काम लेते रहे। मैं छोटे बच्चों को सँभाल लेती थी। बरतन धो देती। कभी सफाई कर देती। जब देखा, मैं रोती-धोती नहीं, घरवालों को भूल गई हूँ। मेरे साथ बारह-चौदह साल के लड़कों को लिटा दिया। दर्द होता तो रोती, चिल्लाती-चीखती। मुँह में कपड़ा ठूँस देते। उनका मकसद अपने नए-नए लड़कों को कंजर का काम सिखाना था। धीरे-धीरे मुझे भी ताँगेवाली घोड़ी की तरह इन्होंने सीधा कर लिया। दो-चार साल में मुझ पर निखार आ गया। देखनेवाले के मन को भाने लगी।

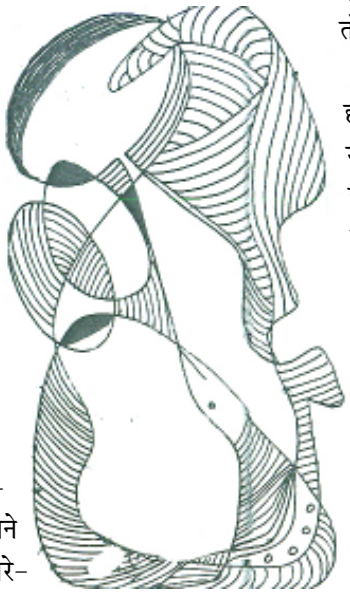

'लालनीनो का सरदार बेचने के लिए मुझे बीच पर पड़ते होटल में ले गया। एक तविन्स्की नाम का अमरीकी सौदागर उसे मिल गया। दस हजार डालर में उसे मेरी बाँह पकड़ा दी। मुझे कहा गया, 'बरिडा! यह तेरे नए डैड हैं। तुम्हें गोद ले लेंगे। मौज करोगी। ऐश लूटना। तेरी तो किस्मत खुल गई।'

बीच के होटलों में अमरीका और अन्य देशों के व्यापारी हफ्ते के आखिरी दिनों में आकर ठहरते और माल बेचते-खरीदते थे। ऐश करनेवाले भी आ जाते, उनसे कमाई हो जाती। लविन्स्की ने थोड़ी ही दूर एक गाँव में दस-पंद्रह लड़कियों से अच्छा धंधा खोल रखा था। मेरा 'नया डैड' कोई पचास-साठ साल का था। एक रात शराब में धुत्त मेरी कैबिन में आ गया। मुझे वस्त्रहीन कर लिया। रो रही थी किस्मत को, बिलखती रही। कल तक तुम्हारी बेटी थी। फिर आज···? यों ही लॉलनीनो वाले सरदार के घर भी हुआ। एक बार रात को उनका छोटा बेटा आ गया। मुझे लगा, मेरा वीर, मेरा भाई, मेरे साथ आ लेटा हो। हैं···!

'मैं धंधा करती। कभी भाई आता। कभी बाप। सबने शर्म उतार रखी थी। न किसी को मुझमें बहन का रूप दिखा, न बेटी का। पूँजीवादी बाजार में फर्क नहीं पड़ता। मानवीय संबंध टूट जाते हैं। सिर्फ डालर का रिश्ता रह जाता है।'

मुझमें संवेग मर रहे थे। न खुशी महसूस होती, न गम। कोई आए, कोई जाए। सब जंगली जानवर दिखते थे। मेरे अंदर 'जगज्जननी' मर चुकी थी। बाकी थी तो एक प्लास्टिक की गुड़िया। मर्द की वासना-तृप्ति के लिए।

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

ललित निबंध

जियबो मीत पुनीत बिनु

● श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी

व्यापक अर्थ में देखें तो परिवारजनों और संबंधियों को छोड़कर अन्य सभी परिचित जन मित्र ही कहे जाएँगे। पड़ोसी भी मित्रों की ही कोटि में आएँगे। यह और बात है कि उनमें से अनेक 'अमित्र' हों, क्योंकि 'अमित्र' होने के पूर्व वे भी मित्र ही रहे होंगे। मित्रता अनायास हो जाती है। रघुवंशकार तो इसे भी पूर्वजन्म से जोड़ते हैं और 'मनो हि जन्मांतर संगतिज्ञ' कहकर मन को जन्मांतर संगतियों का ज्ञाता बताकर किसी के प्रति अनायास उमड़ आए प्यास और किसी सर्वथा अपरिचित के प्रति देखते ही मन में उठे उपेक्षा-भाव का कारण सिद्ध करते हैं। मित्रता के विपरीत अभिन्नता एक अनुभवजन्य नकारात्मक प्रतिक्रिया है। मित्रता उभयपक्षीय होती है। अमित्रता एकपक्षीय भी हो सकती है।

मित्रता मनुष्यों तक ही सीमित न रहकर पशु-पक्षियों तक भी विस्तृत हो सकती है। कोटिबद्ध करें तो वे भी मित्र, शत्रु अथवा तटस्थ हो सकते हैं, हमारे अपने स्वार्थों एवं विचारों से मेल खाने या न खाने के अनुसार। मित्रों को घर में भी बसाया गया और उनको सब प्रकार की सुरक्षा दी गई। शत्रुओं को नष्ट करने का उद्योग चला। शत्रु-मित्र की विभाजक रेखा कभी-कभी इतनी क्षीण रही कि बड़े-बड़े भ्रमित हो गए। इस भ्रम का सबसे बड़ा शिकार साँप हुआ। अपनी विषैली प्रजातियों के कारण प्राय: सभी साँप मनुष्य की घृणा और हिंसा के शिकार होते रहे तथा अब भी हो रहे हैं। जबकि चूहे जैसे हानिकारक जीवों का शिकार करके वे मनुष्य का भला ही करते रहे और विषम परिस्थितियों में ही मनुष्य पर आक्रमण करने को बाध्य हुए। इसके विपरीत बिल्ली चूहों का शिकार करने से अधिक मनुष्य की अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की हानि करती रही, दूध-घी के छीके, अलमारियों की जालियाँ बिल्लियों की ही देन है। इतना ही अच्छा है कि शास्त्रकारों ने बिल्ली के जूठे को जूठा नहीं माना। कुत्ता मनुष्य का संभवत: सबसे पुराना मित्र है।

वैज्ञानिकों की मानें तो यह मित्रता सत्ताईस हजार से लेकर चालीस हजार वर्ष तक पुरानी है। कुत्ते ने मनुष्य को सुरक्षा प्रदान की, उसे सुख की नींद सोने का अवसर प्रदान किया। अपनी श्रवण एवं घ्राण-शक्ति की सूक्ष्मता के कारण वह इतना सजग रहा कि 'श्वान निद्रा' सजगता का पर्याय बन गई। उसकी ये शक्तियाँ कालांतर में और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हुईं। अपने स्वामी के लिए लड़ते-लड़ते वीरगति तक को प्राप्त हो जानेवाले इस जीव की छोटी-बड़ी अनेक प्रजातियाँ विकसित हुईं और उन सबका उपयोग किया गया। घोड़ा मनुष्य का दूसरा अत्यंत पुराना मित्र है। उसने मनुष्य को अधिक वेगवान बनाया, जिससे युद्ध और शांति दोनों में अत्यंत उपयोगी बना रहा। चेतक, बुसीफेलस और हीन-फिनीन जैसे अनेक घोड़े इतिहास के पृष्ठों में अपनी वीरता, स्वामिभक्ति, त्याग तथा बलिदान के कारण स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गए। स्थल का सबसे बड़ा पशु हाथी भी मनुष्य का मित्र बना और अपनी शक्ति, धैर्य एवं स्मरणशक्ति के कारण तथा बुद्धि के देवता गजाननजी के प्रतीक के रूप में समाज में पूजा जाता रहा।

साहित्य के जाने-माने रचनाकार। एक दर्जन से अधिक ग्रंथ प्रकाशित। भारत के अतिरिक्त सोमालिया एवं इथियोपिया में भी अध्यापन। अनेक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों और विश्वविद्यालय के रजत एवं स्वर्ण पदकों से विभूषित। संप्रति पूर्णकालिक लेखन।

अपनी ही समस्याओं में उलझे मनुष्य ने इन पशुओं से जैसे किनारा कर लिया है। घोड़ों की जगह यांत्रिक कारों आदि ने ले ली तो हाथियों को टैंकों ने निष्कासित कर दिया। जंगल कटते चले गए तो उनके भोजन की व्यवस्था इतनी कठिन हो गई है कि बड़े-बड़े जागीरदार भी उन्हें देवालयों को दान कर देना ही अधिक अच्छा समझने लगे हैं। अपने दिखावटी दाँतों के कारण वह तो ऐसी विभीषिका में फँस गया है कि अस्तित्व-रक्षा के लिए एक प्रकार से अंतिम संघर्ष कर रहा है। यही स्थिति बैल, भैंसे, गधे, खच्चर और ऊँट आदि की भी हुई। ट्रक, ट्रैक्टर, लोडर आदि ने इनकी उपयोगिता को निरस्त कर दिया तो ये समाज के लिए भार बनकर नामशेष होने लगे।

शुक-सारिका तो अनादिकाल से ही घरों एवं आश्रमों की शोभा बढ़ाते रहे हैं। जगज्जनी जानकी की विदा के समय उनके द्वारा पाले हुए ये पक्षी इतने दु:खी हुए कि इन्होंने परिजनों को भी अधीर कर दिया—

सुक सारिका जानकी ज्याये। कनक पिंजरन्ह राखि पढ़ाये॥
व्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुवि धीरजु परिहरह न केही॥

बेटी की विदा सदैव अत्यंत कष्टकारी रही है। कल्पना करें शकुंतला के हाथ से दूब चरनेवाले मृग-शिशु की, उसकी विदा के समय क्या दशा हुई होगी। कालांतर में तो ये इतने प्रबुद्ध हो गए कि शास्त्रार्थ तक करने लगे। शास्त्रार्थ-दिग्विजय के लिए निकले आचार्य शंकर ने पनिहारिनों से मंडन मिश्र का घर पूछा तो उन्होंने यही तो कहा था—

स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।

द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्ध: जानाहितं मण्डन मिश्र धामम्॥

अनेक ऐसी घटनाएँ अब भी होती रहती हैं, जिनमें आग लगी, आग लगी...की रट लगाकर इन पिंजड़े में बंद पंछियों ने मोहल्ले भर को जगाकर सुरक्षा के लिए दौड़-धूप करने के लिए सचेष्ट कर दिया, पर अपनी रक्षा में लगे लोग इनके पिंजड़ों को हटाना भूल गए या आग ने ऐसा घेर लिया कि बचा पाना संभव ही न रहा और ये कर्तव्य-पालन करते हुए लपटों के ग्रास बन गए। फिर भी इनका निधन व्यर्थ नहीं गया, सारा मुहल्ला इनके लिए न जाने कब तक आँसू बहाता रहा।

ऐसे परितापग्रस्त निदाघ में शुद्ध मित्रता शीतल समीर की ऐसी बयार प्रतीत होती है कि व्यक्ति अंतर्मन से आनंदित और पुलकित हो उठता है। उभयपक्षीय मन की निर्मलता की प्रतीक ऐसे मित्रता ही वास्तविक मित्रता है, जो मानवमात्र का अभीष्ट है और मानवता की कसौटी है। हृदयों का ऐसा सम्मिलन वाणी को आनंद-सरोवर में ऐसा सराबोर कर देता है कि सामान्य से सामान्य शब्द भी मधुरससंपन्न हो जाता है। एक-सा रहना, एक-सा सोचना, समाज के प्रति एक-सा सकारात्मक भाव रखना, सबके प्रति सेवाभाव एवं कल्याण-कामना रखना यही तो मानव-जीवन है, जिसके लिए देवता भी मनुष्य होकर धराधाम पर आने को लालायित रहते हैं।

अब जीवन की कृत्रिमता, आबादी का बढ़ता हुआ दबाव, जनसंख्या-विस्फोट, भू एवं वन-माफियाओं की दुर्दम लोभ-वृत्ति, तस्करों की उद्दाम लालसा इनके प्रति भी असहिष्णु हो रही है। वन-क्षेत्र के तेजी से सिमटने के चलते वन्य जीव शायद ही अस्तित्व में बच पाएँ। बंदरों को पकड़ने की मुहिम चली तो उन्हें पकड़ तो लिया गया, पर उन्हें खिला पाना शासन-प्रशासन के वश का भी नहीं रहा। जीव-दया और पशु-अधिकार के नाम पर पालतू जीवों को मुक्त कराने के लिए अति उत्साही महापुरुष आगे आए तो सपेरे मदारी, सर्कसवालों आदि की जीविका तो संकट में पड़ी ही, उनके द्वारा पालित-पोषित जंतु भी असहाय हो गए। पुनर्वास की किसी ठोस योजना के अभाव में उनकी स्थिति मुक्त कराए गए बँधुवा मजदूरों से भी बदतर हो गई। वे अब कहाँ जाएँ? उन्हें कोई पाले भी तो किसलिए? अपने ही स्वार्थ के चश्मे से सबको देखनेवाला मानव-समाज यह सुविधापूर्वक भूल जाता है कि यह पृथ्वी केवल उसके लिए न होकर उन सभी जीव-जंतुओं के लिए है, जिन्हें प्रकृति ने यहाँ बसाकर जीने का अधिकार दिया है। धरती उनको भी उत्तराधिकार में मिली है। उन्हें उससे बेदखल करना मानव-निर्मित कानून में भले न आए, पर है तो घोर नैतिक अपराध और पाप ही।

मानव-मित्रों की बात चलती है तो स्वार्थ की छाया से ग्रस्त वे 'मित्र' भी स्मृति को घेर लेते हैं, जो एक-न-एक बहाने पैसा लेकर अंतर्धान हो जाते हैं। कभी कोई दुबारा दिखे भी तो पैसे वापस करने के लिए तो शायद ही हो, यह सूँघने के लिए कि आपको पैसों का स्मरण है कि नहीं। स्मरण हुआ तो बड़ी 'ईमानदारी' का प्रदर्शन करते हुए यह कहकर आपको असमंजस में डाल देंगे कि 'भाई साहब, आपका पैसा अब तक वापस न कर पाने का बहुत दु:ख है। आपके सात सौ देने हैं, अब ऐसा कीजिए कि तीन सौ और दे दीजिए तो एक साथ पूरे एक हजार आपको देकर मोक्ष पाऊँ। अब देर नहीं होगी, बस अधिक-से-अधिक एक मास।' अब आप पर है कि आप अनुभव का विश्वास करें या उनके आश्वासन का, पैसा वापस पा जाने के व्यामोह में या तो तीन सौ और सौंप दें या सात सौ को 'गया' मानकर मौन धारण कर लें। गेंद आपके पाले में है। अतीत का लेखा-जोखा चले तो उन 'मित्रों' को भुला पाना भी अत्यंत कठिन होता है, जो अपने छोटे-से-छोटे काम के लिए भी आपका सहर्ष बलिदान कर देने में शायद ही हिचकें और उसके बाद भी 'मित्रता' का उपदेश देते रहें। अपना गला छुड़ाकर आपको फाँसी के फंदे तक पहुँचा देनेवाले, अपने अधीनस्थों को अनेक अवैध कार्य करने के लिए बाध्य करनेवाले और मौके पर बिना हिचक स्वयं को निर्दोष सिद्ध करके बच निकलनेवाले अधिकारी मित्रों से प्राय: सभी प्रकार के अधीनस्थों का पाला पड़ा रहता है। अनेक तो ऐसे समय में महत्त्वपूर्ण प्रपत्र आपके हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत कर देंगे, जब आप इतने व्यस्त हों कि उन्हें पढ़ना तो दूर रहा, ठीक से देख पाने का समय भी आपके पास न हो। लेकिन उनकी प्रवृत्ति से अनभिज्ञ न होने के कारण उनके तत्काल हस्ताक्षर कर देने के लाख दबावों को नकारते हुए या तो आपने उनसे बाद में आने को कहकर पिंड छुड़ाया होगा या फिर सब काम छोड़कर उनके ही प्रपत्र निबटाने में लग गए होंगे। किसी पर हस्ताक्षर करने में आपने असहमति जताई होगी तो वे तत्काल बहुमत की दुहाई देने लगे होंगे कि और सब तो हस्ताक्षर कर रहे हैं, आपको ही क्यों आपत्ति है? कहकर आपको निरुत्तर करने की कोशिश की होगी और शायद हिम्मत बटोरते हुए आप, 'आपत्ति यह है कि जिस दिन मामला पकड़ में आ जाएगा, उस दिन आप सब एक हो जाएँगे और फँसूँगा मैं अकेला' कहकर उनके धिक्कार के पात्र बने होंगे। परंतु जब मामला (जिसे पकड़ में आना ही था) पकड़ा गया होगा और आपको समझाने वाले कारागार के 'सम्मानित' अतिथि बन गए होंगे, तब आपको लगा होगा कि इस सार्वजनिक भर्त्सना से तो उनका दुर्भावप्रेरित धिक्कार ही श्रेयकर था। ऐसे कटु अनुभवों से सज्जनता और उदारता का भाव तिरोहित होता जाता है तथा अविश्वास का ऐसा वातावरण बन जाता है कि व्यक्ति अंतर्मुखी होकर जैसे समाज से विरत ही हो जाता है।

ऐसे परितापग्रस्त निदाघ में शुद्ध मित्रता शीतल समीर की ऐसी बयार प्रतीत होती है कि व्यक्ति अंतर्मन से आनंदित और पुलकित हो उठता है। उभयपक्षीय मन की निर्मलता की प्रतीक ऐसे मित्रता ही वास्तविक मित्रता है, जो मानवमात्र का अभीष्ट है और मानवता की कसौटी है। हृदयों का ऐसा सम्मिलन वाणी को आनंद-सरोवर में ऐसा सराबोर कर देता है कि सामान्य से सामान्य शब्द भी मधुरससंपन्न हो जाता है। एक-सा रहना, एक-सा सोचना, समाज के प्रति एक-सा सकारात्मक भाव

रखना, सबके प्रति सेवाभाव एवं कल्याण-कामना रखना यही तो मानव-जीवन है, जिसके लिए देवता भी मनुष्य होकर धराधाम पर आने को लालायित रहते हैं। आचार्यों, नीतिकारों, व्यवहारियों, सहृदय रचनाकारों, प्रबुद्धजनों, महात्माओं सभी ने एक स्वर से ऐसे मित्रों के लक्षण बतलाकर उन्हें मानवता के लिए काम्य बतलाया है और उन्हें धरा का आभूषण स्वीकार किया है। 'अमियस्य कुतो सुखम्' कहकर जिस सुखद मित्रता की संस्तुति की जाती है, वह ऐसी ही अंतरंग मित्रता है। प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसा बहुत सा होता है, जिसे वह दूसरे के साथ साझा करके हल्का हो जाना चाहता है, पर सबसे कह नहीं सकता। केवल उससे ही कह सकता है, जो उसके रहस्य को उसकी इच्छा के बिना किसी पर प्रकट न करे और न उसका दुरुपयोग ही करे। ऐसे दुर्लभ मित्र की सबको तलाश रहती है, पर कोई अत्यंत भाग्यशाली ही इस तलाश में सफल हो पाता है। आज के इस स्वार्थपरक, गलाकाटू युग में ऐसे काम्य मित्र कितने विरल हैं!

मित्रों का एक वर्ग अदृश्यता वाला भी है। यह वर्ग उन पत्र मित्रों का है, जो दूर देशों के बीच पत्र सेतु बना लेते हैं। इससे भाव तो आर-पार आ-जा सकते हैं, पर व्यक्ति शायद ही कभी मिल पाए। पत्र मित्र देश में भी होते हैं। उनसे भी मिल पाना प्रायः कठिन होते हुए भी परिस्थितियोंवश संभव भी हो जाता है। इन मित्रताओं से विचारों का आदान-प्रदान होता है, जीवनदर्शन का अनुशीलन-परिशीलन होता है और मानवता के प्रति एक विराट् फलक का निर्माण होता है। यह मित्रता स्थूल से अधिक सूक्ष्म और दीर्घजीवी होती है। महान् व्यक्तियों के पत्रों के संग्रह इसीलिए पठनीय होते हैं कि वे अंतरंग क्षणों के साक्षी होते हैं और अंतर्मन प्रतिबिंब होने के कारण अत्यंत प्रेरणादायी होते हैं।

'यानि कानि च मित्राणि कर्तव्यानि शतानि च' कहकर और अनेक उदाहरणों तथा कथाओं-बोधकथाओं के माध्यम से समझाकर तंत्रकारों ने मित्रता को जीवन की सुगंध निरूपित की है। इस कार्य में लोकभाषाएँ भी सक्रिय रही हैं—

'मित्र तो ऐसे चाहिए जैसे लोटा-डोर।
अपनो गला फँसाय के लावे पानी बोर॥'

कुओं की अत्यंत विरलता और अन्य सुविधाओं की प्रचुरता के कारण इन पंक्तियों का साधारणीकरण कठिन है। लोटा और डोर तो लोग जानते हैं, पर उनका परस्पर संबंध कितने लोग जानते हैं?

अंतरंग मित्र की पुनीत मित्रता उसे जीवन का अभिन्न अंग बना देती है, इतना अभिन्न कि उसके बिछोह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कालचक्र इन मित्रताओं को भी खंडित करता है, जोड़े को बिछुड़ाकर एक को परलोकगामी कर देता है और दूसरे को हतप्रभ तथा अपूर्ण बनाकर छोड़ देता है। जानेवाला सारे मायामोह से मुक्त हो जाता है, पर जीनेवाले के लिए गलियाँ बंद हो जाती हैं। उसे अपना बहुत कुछ छूट गया, सूख गया लगने लगता है। इतना कि प्राकृत नर काव्य न लिखने की प्रतिज्ञा किए बैठे कविता-कामिनि कंत गोस्वामी तुलसीदास भी इतने विचलित हो गए कि उन्होंने अपने दिवंगत मित्र टोडरमल पर चार दोहे लिख ही दिए—

चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप।
तुलसी या संसार में, अथयो टोडर दीप॥
तुलसी मन थाला बिमल, टोडर गुनगन बाग॥
इन दोउ नैनन सीं चिहौं, उमगि-उमगि अनुराग॥
तुलसी राम स्नेह को, सिर पर भारी भारु।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतारु॥
राम-धाम टोडर गए, तुलसी भए असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच॥

फिर हम जैसे सामान्य जन कहाँ ठहर सकते हैं। बस यही लगता रहता है—'तुम इतनी जल्दी क्यों चले गए?'

द्वीपांतर, ला.ब. शास्त्री मार्ग, फतेहपुर-२१२६०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०५१८०-२२२८२८

हाइकु

बाढ़ में नाव

● दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

व्यंग्य पत्नी का
बना देता व्यक्ति को
कवि तुलसी।

धागा डालिए
सुई तभी है सुई
अन्यथा शूल।

खिला करते
भरे तलाब में ही
पुष्प कमल।

खट्टी केरियाँ
पकते ही हो जातीं
मीठी रसीली।

देता है गन्ना
चरखी में पिले ही
गुड़ीला रस।

खिल उठतीं
पाते ही सूर्य-स्पर्श
युवा कलियाँ।

बादल देख
नाच उठती धरा
वृक्षों के मिस।

मेघ ही आता
न जाती धरा कभी
प्यासी हो भले।

महिला नहीं
पूछा करती स्वास्थ्य
प्रेमाकुलता।

उमड़ा मेघ
दिन को करे रात
सूर्य को ढाँक।

बाढ़ में नाव
खेवें तीरे-तीरे ही
धीरे-धीरे ही।

सिविल लाइंस, कोटा-३२४००१ (राजस्थान)
दूरभाष: ०९४६०५७०८८३

संत पीपाजी की सामाजिक चेतना

● ललित शर्मा

वीरता की अभिव्यक्ति का माध्यम केवल युद्ध करना ही नहीं होता, अपितु यह अभिव्यक्ति जनसेवा, सच्ची भक्ति, साधना तथा विराट् सामाजिक चेतना जाग्रत् करने के माध्यम से भी होती है। पश्चिम भारत के मध्ययुगीन भक्तिकाल में महान् समाज सुधारक राजर्षि संत पीपाजी ने अपनी उक्त प्रकार की सेवा व चेतना भावना से यह सिद्ध कर दिखाया कि समाज और भक्तिसुधार की कर्ममयी भावना ऐसी भी हो सकती है, जिसके करने से व्यक्ति सदैव के लिए काल, कर्म जैसे शत्रुओं के लिए अपराजेय हो जाए।

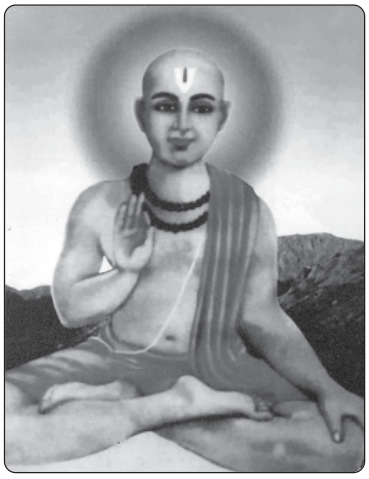

संत पीपाजी महाराज

राजस्थान के झालावाड़ जिला मुख्यालय के निकट आहू और कालीसिंध नदियों के संगम पर बना प्राचीन जलदुर्ग गागरोन संत पीपाजी की जन्म और शासन स्थली रहा है। पीपाजी खींची राजवंश के एकच्छत्र शासक थे। इसी नदी-संगम पर उनकी भक्ति-साधना की गहन गुफा, समाधि और विशाल आश्रम एवं मंदिर है। उनका जन्म १४वीं सदी के अंतिम दशकों में गागरोन के खीची चौहान राजवंश में हुआ था। वे यहाँ के वीर, धीर व कुशल शासक थे। शासक रहते हुए उन्होंने कई शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, परंतु युद्धोन्माद, हत्या, रक्तपात तथा जल से जमीन तक के रक्तपात को देखकर उन्होंने तलवार एवं गागरोन की राजगद्दी का त्याग कर दिया था। इसके पश्चात् उन्होंने काशी जाकर स्वामी रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण किया और संत कबीर, संत रैदास, संत धन्ना, संत सैन के गुरुभाई बने।

संत पीपाजी का जीवन-चरित्र देश के महान् समाज-सुधारकों में अग्रणी है । उनकी समाज-सुधार की सुंदर विचारधारा और अद्वितीय कर्म भावना के कारण ही वे कई भक्तमालाओं के आदर्श महापुरुष बनकर लोकवाणियों में गाए गए। संत पीपाजी ने अपनी पत्नी सीता सहचरी के साथ राजस्थान में भक्ति एवं समाज-सुधार की चेतना का अलख जगाने का विलक्षण कार्य किया। उन्होंने उत्तरी भारत के सारे संतों को राजस्थान के गागरोन में आने का न्योता दिया। स्वामी रामानंद, संत कबीर, संत रैदास, संत धन्ना सहित अनेक संतों की मंडलियों और धर्म-यात्रा संघों का पहली बार राजस्थान की धरती पर आगमन हुआ एवं युद्धों, वर्गों तथा धर्म-आडंबरों व भेदभावों में उलझते राजस्थान में भक्ति और समाज-सुधार की एक महान् क्रांति-चेतना का सूत्रपात हुआ। पीपाजी और सीता सहचरी ने उसी समय अपना समस्त राज्य-वैभव त्यागकर गागरोन से गुजरात (द्वारका) तक संतों की धर्मयात्रा का नेतृत्व किया। वहाँ उन्होंने परदुखकातरता, परपीड़ा तथा परव्याधि की पीड़ा की अनुभूति करनेवाली वैष्णव विचारधारा को जन-जन के लिए समान भावों से सिद्ध किया। कालांतर में गुजरात के सुप्रसिद्ध भक्त नरसी मेहता ने उनकी इसी महान् विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होकर 'वैष्णव जन तो तेने कहिये रे, पीर पराई जाणै रे' पद लिखा, जो महात्मा गांधी के जीवन में भी प्रेरणादायी सिद्ध हुआ।

भक्त शिरोमणि मीराबाई संत पीपाजी की भक्ति-साधना से बड़ी प्रभावित थीं, तभी तो उन्होंने लिखा, ''पीपा को प्रभू परच्यौ दिन्हौ, दियो रै खजानापूर।'' वहीं भक्तमाल लेखन की परंपरा का प्रवर्तन करनेवाले नाभादास ने पीपाजी के उदात्त जीवन-चरित्र पर देश में सर्वप्रथम 'छप्पय' की रचना कर उन्हें बड़ा सम्मान दिया।

मध्यकाल में देश की सामाजिक स्थिति बड़ी विषम हो गई थी। भृत्यों ने स्वामियों को पकड़ लिया। धर्म तथा सच्ची भक्ति रसातल की ओर जाने लगी। पंडित मठाधीश हो गए। खलों ने सज्जनों को पराभूत कर दिया। जाति-वर्ण में भेद हो गए। अधम-उत्तम का कोई पारखी नहीं रहा। ऐसे समय में, विशेषकर अपने गुरु स्वामी रामानंद की आज्ञा से शिष्य पीपाजी ने पश्चिम भारत को सँभाला और अपनी भक्ति-साधना, आत्मविश्वास, साहस तथा निर्भीकता के साथ प्राचीन एवं रूढ़ मान्यताओं व अवधारणाओं को तोड़कर समाज में चेतना जगाने में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। उन्होंने पूर्ण समर्पित भाव से गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती पैदल घूमकर ब्रह्मज्ञान, नैतिक तथा समन्वय भावों का अलख जगाया, जो उनके निम्न विचारों और वाणियों से प्रमाणित होता है। निम्न बिंदुओं के माध्यम से हम उनकी सामाजिक अंतश्चेतना को देखेंगे।

जातिपाँति का खंडन

संत पीपाजी जीवमात्र की समानता के प्रबल पक्षधर थे। उनके मतानुसार ईश्वर के समक्ष सभी जीव समाज में समान हैं। 'ईश्वर के दरबार में छोटे-बड़े तथा राजा-रंक का कोई भेदभाव नहीं है।' उनकी वाणी में एक बात पता चलती है—

संतो एक राम सब माही।
अपने मन उजियारो। आन न दीखे काही॥
एकै धाम रुचिर अर साँसा। छोट-मोट तन माही॥
एकै मारग तें सब आया। एकै मारग जाही॥
एकौ माता-पिता सबही के। विप्र छुद्र कोई नांही॥
पीपौ जो जन भरम भलाने। तैढुलरात सदा ही॥

उनका मानना है कि 'विप्र-शूद्र सब एक ही मार्ग से आए हैं तथा सभी के माता-पिता भी एक है तो भेदभाव किसलिए?' परंतु यह बात उन्होंने केवल वैचारिक धरातल पर ही नहीं की, वरन् उन्होंने इसकी क्रियान्विती भी करके दिखाई। इस आशय का उदाहरण इस प्रकार है— दौसा में एक बार वे रंगजी नामक भक्त के निवास पर थे, उसी दौरान गोबर की तलाश में दो स्वपच (शूद्रा) स्त्रियाँ वहाँ आईं। पीपाजी ने उन्हें बुलाकर तथा अपने पास बैठाकर उनसे कहा, ''तुम मानव काया पाकर भी उसका दुरुपयोग कर रही हो, जिस शरीर से दिव्य प्रेमरत्न धन संचय करना चाहिए, उसी से गोबर-कूड़ा-करकट, संसारी विषयों का संग्रह कर रही हो। तुम अपना सबकुछ ईश्वर-भक्ति को अर्पण कर दो।'' पीपाजी के इन उपदेशों का उन शूद्र महिलाओं पर तत्काल ऐसा प्रभाव हुआ कि वे सर्वस्व त्यागकर भक्ति मार्ग पर अग्रसर हो गईं। यह घटना संत पीपाजी के जाति-पाँति के खंडन तथा समाज-समन्वय की पहल थी। के सिद्धांत के महान् कार्यों को प्रकट करती है, जो तत्कालीन समाज में एक अद्वितीय समाजोत्थान समन्वय की पहल थी।

मूर्तिपूजा के प्रति अविश्वास

उनकी मान्यता है कि ''जब ईश्वर समाज के सभी प्राणियों में परिव्याप्त है, तब ऐसी स्थिति में किसे त्यागा जाए और किसे पूजा जाए?'' उनके अनुसार, ''जो मूर्ति स्वयं ही नश्वर है, उसकी क्या पूजा की जाए?'' उनकी मान्यता है, पूजा तो उस अलख निरंजन, अविगत और अविनाशी परमतत्त्व की करनी चाहिए, जो समूचे मानवता का परम स्रोत है। अत: सार तो ईश्वर की उपासना मात्र में है, उसके प्रकारों के भ्रमजाल में उलझने में नहीं। अंध-धार्मिकता के प्रति उनका खंडन स्पष्ट है। अपनी वाणी के माध्यम से उन्होंने साफ-साफ कहा कि कलियुग में यदि (संत) कबीर न होते तो लोक की मिथ्या धारणाएँ तथा कलियुग की अंधविश्वासी मान्यताएँ मिलकर सच्ची भक्ति को रसातल में पहुँचा देते—

जै कलि नाम कबीर न होते।
तौ लोक बेद अरू कलिजुग मिलि करि।
भगति रसातलि देते॥
भगति प्रताप राखिए कमनि। निज जन आप पढ़ाया॥
नाम कबिरा साच प्रकास्या। तहाँ पीपै कछु पाया॥

सच्चे गुरु की महत्ता

संत पीपाजी ने समाज को सही दिशानिर्देश के साथ भक्ति-साधना के निर्देश हेतु श्रम-साधना और कर्म की अनिवार्यता को अत्यावश्यक माना है। उनका मानना था कि ''सच्चा गुरु वही है, जो सभी समाज, धर्म में समन्वय भाव रखता है।'' उनके मतानुसार, परमतत्त्व को सद्गुरु की सहायता से ही अर्थात्, रूप में अनुभूत किया जा सकता है—

सद्गुरु साँचा जौहरी, परसे ज्ञान कसौट।
पीपा सुघोई करे, दे अणभेरी चोट॥
लोह पलट कंचन करियो, सद्गुरु रामानंद।
पीपा पद रज है सदा, मिट्यो जगत् को फंद॥
सुआरथ के सब मितरे पग-पग विपद बढ़ाय।
पीपा गुरु उपदेस बिनु, सोच न जाण्यो जाय॥

श्रम साधना और कर्म का महत्त्व

अपनी दृढ सामाजिक चेतना शक्ति से पीपाजी ने चतुर्वर्ण के प्रतिरोध स्वरूप एक नवीन पाँचवाँ वर्ण सृजित किया, जिसमें श्रम की प्रधानता, कर्म का महत्त्व और हिंसा तथा युद्ध का त्याग था। उन्होंने इस नवीन पाँचवें वर्ण को श्रमिकवर्ण नाम दिया, जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के मध्य का था। यह एक ऐसा नवीन सामाजिक वर्ण था, जिसमें ये ऊँच-नीच तथा जाति बंधन से पूर्णतया मुक्त थे। यह नवीन वर्ण नित्य प्रति श्रम कर्म करते हुए मुख से परात्पर राम का उच्चारण करता तथा समाज में सौहार्द से रहता था। पीपाजी का यह मौलिक सामाजिक कार्य उस युग में वास्तव में चतुर्वर्ण परंपरा के विरुद्ध एक प्रतिरोधात्मक आंदोलन था, जिसमें कतिपय वर्ण-व्यवस्था में सुधार और परिवर्तन किया गया था। उनकी वाणी में इस आशय की अनुगूँज है—

हाथा से उद्यम करे, मुख सौ ऊचरै राम।
पीपा साधा रो धरम, रोम रमारै राम॥

वे सामाजिक चेतना में समन्वय के महान् आख्याता इसलिए हैं कि उन्होंने उस ब्रह्म से साक्षात्कार कराया, जिसकी खोज में बँधा मानव आजीवन भटकता है। उन्होंने समाज को सच्चे अर्थों में ब्रह्म के स्वरूप की पहचान पर जोर देते हुए कहा कि उस ब्रह्म की पहचान तो स्वयं उसके मन में अनुभव करने से है—

उण उजियारा दीप की, सब जग फैली ज्योत।
पीपा अंतर नैण सो, मन उजियारा होत॥

रूढ़ियों का दृढ विरोध

पीपाजी की सामाजिक चेतना में रूढ़ियों की समाप्ति का कार्य अति महत्त्वपूर्ण है। उस युग में यह भी कम आश्चर्यजनक घटना नहीं थी कि पीपाजी के साथ ही उनकी जीवन-संगिनी भी संन्यास लेकर साध्वी बनी। इतना ही नहीं, रानी सीता सौलंकी ने अपने संत पति का साथ देकर समाज के पतिव्रत धर्म का अच्छी प्रकार निर्वाह किया। यह वह युग था, जब यवनों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार, व्यभिचार हो रहे थे और राजपूतों में सर्वाधिक परदाप्रथा थी। उसी समय पीपाजी ने अपनी पत्नी सीता सहचरी की परदाप्रथा सर्वप्रथम तोड़कर समाज में यह प्रामाणित किया कि जिसमें आत्मबल, समाज-सेवा और ईश्वरभक्ति के सच्चे भाव हैं, उन्हें परदा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में सैकड़ों बरसों पूर्व का यह एक ऐसा अद्वितीय समाज-सुधार था, जिससे नारी समाज में जागृति और

इच्छाशक्ति के भाव उत्पन्न हुए, जिस कारण उन्होंने (महिलाओं) आवश्यकता होने पर युद्ध व संघर्ष कर स्वरक्षा ही नहीं की वरन् अनेक राज्यों का शासन भी सफलतापूर्वक संचालित किया। इस बारे में पीपाजी ने अपनी वाणी में भी कहा है—

जहाँ पड़दो तहाँ पाप, पड़दो बिन पावै नाहीं।
जहाँ हरी हाजर आप, पीपा तिहो पड़दौ किसौ॥

समाज की रूढ़ि में पीपाजी के इस कार्य की महत्ता पर प्रसिद्ध सामाजिक विचारक मैक्स आर्थर मैकालिफ ने सुंदर टिप्पणी लिखी— ''Probably the first effort in modern time in India to abolish the tyranny of the Parda by Pipa" बाद में पीपाजी ने आजीवन सीता सहचरी को बिना परदे के ही समाज में सार्वजनिक रूप से रखा जबकि उस युग में राजपूतों में घोर परदाप्रथा का प्रचलन था तथा उस प्रथा को तोड़ना कोप का भागी बनना था।

समाज-चेतना

पीपाजी के जीवन की सबसे बड़ी सामाजिक विशेषता यह है कि वे समाज सुधार व सच्ची भक्ति-साधना का आख्यान करने के लिए राजा होते हुए अपना र्स्वस्व वैभव त्यागकर संत बने। भारतीय मध्ययुगीन इतिहास के पन्नों में इस प्रकार का पहला और दुर्लभ उदाहरण कहीं देखने को नहीं मिलता। पीपाजी जिस खींची चौहान क्षत्रिय जाति के थे, उसमें युद्ध की प्रधानता थी। उनके गुरु स्वामी रामानंद का विचार यह था कि उन्हें उनके वैष्णव आंदोलन में उस समय के पीड़ित-शोषित वर्ग, अंत्यजों तथा राजपूतों के कल्याण के लिए एक वीर और आदर्श शिष्य की आवश्यकता थी। क्योंकि विशेष रूप से राजपूत शासन करने और मारकाट करने में सबसे आगे थे। मध्ययुग में सत्ता हाथ से जाने के बाद भी वे लड़ने-झगड़ने में सबसे आगे थे। वे आपस में लड़ते और शोषण करते पाए जाते थे। विशेषकर यह बड़ी समस्या उत्तरी भारत (राजपूताना-गुजरात, सौराष्ट्र-मालवा) में थी। अत: यह समस्या कैसे सुलझाई जाए, यह विडंबना भी थी। इसी समय उस समस्या को सुलझाने के लिए उन्हें योग्य शिष्य पीपाजी मिल गए, जिन्होंने गुरु के निर्देश पर उस क्षेत्र के अनेक राजपूत राजाओं, सरदारों को भक्ति मार्ग में दीक्षित करके समाज सुधार समन्वय के कार्यों की ओर मोड़ दिया। इससे समाज में शांति-सहभागिता स्थापित हुई और नवीन सामाजिक चेतना का उद्‌भव हुआ। स्वयं पीपाजी ने कटे-फटे वस्त्रों की सिलाई का कार्य कर समाज में स्वावलंबन की भावना को विकसित किया।

दुर्व्यसन की भर्त्सना

पीपाजी समाज में व्यक्ति के आचरण व जीवन-मूल्यों के विघटन के प्रति बड़े सजग और जागरूक थे। वे नशीली वस्तुओं के सेवन, मांसाहार को वर्जित कर्म मानते थे। उन्होंने इन दुर्व्यसनों से दूर रहने की महत्त्वपूर्ण बात भी की—

जीव मार जीमण करै, खाता करै बखाण।
पीपा परतख देख ले, थांली मांहि मसाण॥
पीपा पाप न कीजिए, अलगौ रहिए आप।
करणी जासी आपणी, कुण बैटो कुण बाप।

उन्होंने दृढतापूर्वक समाज के उन संतों की भी तीव्र भर्त्सना की, जो मठाधीश बनकर व वैभवशाली वस्त्र धारण कर मन में कपट रखते हैं। उन्होंने कबीर की भाँति ऐसे संतों के मुख पर कालिख पोतने की बात का भी खुलकर समर्थन किया—

पीपा जिनके मन कपट, तन पर उजरौ भैस।
तिन को मुख कारौ करो, संत जनाँ का लेख॥

उन्होंने सामाजिक समन्वय की मिसाल हरे-भरे गुलदस्ते से दी। उन्हें अपने देश से अथाह स्नेह था। इस देश की मिट्‌टी को अपनी आँखों का काजल बनाकर उन्होंने सदियों पहले भारत की बहुरंगी छवि को देखकर बहुत सुंदर भावाभिव्यक्ति की थी—

फूल बगीचा में धणा, सबरो सुंदर रूप।
पीपा जद मिल सब छबै, भासै रूप अनूप॥

यत्पिण्डे तत ब्रह्माण्डे का सूत्र

संत पीपाजी समाज में फैले बाहरी आडंबरों, थोथे कर्म कांडों, रूढ़ियों के प्रबल विरोधी थे। उनका मानना था कि ईश्वर निराकर, निर्गुण है, वह बाहर-भीतर, घट-घट में व्याप्त है। वह अक्षत है और जीवात्मा के रूप में प्रत्येक जीव में व्याप्त है। मानव मन (शरीर) में ही सारी सिद्धियाँ और वस्तुएँ व्याप्त हैं।'' उनका यह विराट् चिंतन 'यत्पिण्डे तत ब्रह्माण्डे' के विराट् सूत्र को मूर्त करता है और तभी वे अपनी काया में ही समस्त निधियों को पा लेते हैं। फिर किसी बाहरी मंदिर या तीर्थ, पूजा की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। पवित्र गुरुग्रंथ साहिब में समादृत गागरोन की इस महान् विभूति का यह पद इसी भावभूमि पर खड़ा हुआ भारतीय भक्ति-साहित्य का कंठहार माना जाता है—

अनत न जाऊ राजा राम की दुहाई।
काया गढ़ खोजता मैं नौ निधि पाई।
काया देवल काया देव, काया पूजा पाँति।
काया धूप दीप नइबेद, काया तीरथ जाती॥
काया मांहै अड़सढि तीरथ, काया मांहे कासी।
काया मांहै कंवलापति, बैकुंठवासी॥
जै ब्रह्मंडे सोई प्यंडे, जै खोजे सो पावै।
पीपा प्रण वै परमततरै, सद्‌गुरु मिले लंखावै॥

पीपाजी ने समाज के लोकव्यापी समन्वय के लिए अनेक पदों तथा विचारों में अनुपम अभिव्यक्ति दी, जो आज भी प्रासंगिक है। अत: यह कहना असंगत न होगा कि संत पीपाजी का रचना संसार लोकमंगल, सामाजिक चेतना तथा भक्तिसाधना के सच्चे भावों पर आधारित है। आज जब धर्म, नस्ल, जाति, क्षेत्र जैसे तमाम भेदों के साथ मानवता विरोधी ताकतें सक्रिय हैं, ऐसे में महान् संत पीपाजी की विचारधारा और वाणी की राह ही हमें समन्वयता तथा अखंड मानवता के पक्ष में ले जा सकती हैं।

'अनहद' जैकी स्टूडियो
१५ मंगलपुरा, झालावाड़-३२६००१

संगीतकार जेनको

मूल : **हेनरिक सेनकीविच**
अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

दुनिया में वह पतला-दुबला आया था। चारपाई के इर्दगिर्द खड़े पड़ोसियों ने माँ और बच्चे को देखकर अपने सिर हिलाए। उन सबमें से अधिक अनुभवी—लोहार की पत्नी ने अपने ढंग से बीमार जच्चे को सांत्वना देनी शुरू कर दी।

''तुम आराम से लेटी रहो,'' उसने कहा, ''और मैं पवित्र मोमबत्ती जलाती हूँ। तुम्हारा सबकुछ समाप्त हो चुका है; विनीत प्यारी, तुम्हें दूसरी दुनिया के लिए तैयारी करनी होगी। किसी को जाकर पुजारी को बुला लाना अच्छा रहेगा ताकि वह तुम्हें अंतिम धर्म-विधि की शिक्षा दे सके।''

''और नन्हे का तुरंत बपतिस्मा करना चाहिए,'' दूसरी ने कहा, ''मैं तुम्हें बताती हूँ कि पुजारी के आने तक यह जीवित नहीं रहेगी और यह सुखकर होगा कि बिना बपतिस्मा किया हुआ भूत कहीं मँडराता न फिरे।''

उसने बोलते हुए मोमबत्ती जलाई, शिशु को लिया, उसे पवित्र पानी का छींटा दिया, तब तक उसने अपनी आँखें नहीं झपकाईं; साथ ही ये शब्द कहे, ''मैं पिता के नाम पर तुम्हारा बपतिस्मा करती हूँ और तुम्हें जॉन का नाम देती हूँ; पिता के बेटे और पवित्र भूत के नाम पर (मरनेवाले के लिए प्रयोग की जानेवाली अस्पष्ट प्रार्थनाओं के साथ)। और अब, ओ ईसाई आत्मा, विदा हो जाओ, चली जाओ इस संसार से और जहाँ से आई थी, वहीं लौट जाओ। आमीन।''

ईसाई आत्मा इस संसार को छोड़कर जाने की जरा भी इच्छा नहीं रखती थी; इसके विपरीत, उसने अपनी टाँगों को, जितनी जोर से मार सकती थी, मारना शुरू कर दिया और रोने लगी—इतनी अच्छी आवाज में कि वहाँ बैठी औरतों को वह बिल्ली के बच्चों की बोली प्रतीत होती थी।

पुजारी बुलाया गया था। उसने अपना कर्तव्य निभाया और चला गया। माँ मरने की बजाय रोग-मुक्त हो गई और एक सप्ताह के बाद अपने काम पर चली गई।

शिशु का जीवन धागे पर लटक रहा था। वह कठिनाई से साँस लेता प्रतीत हो रहा था, परंतु जब वह चार वर्ष का हुआ तो छत पर कोयल तीन बार बोली जो पोलैंड के अंधविश्वासियों के अनुसार एक शुभ शकुन था और उसके बाद परिस्थितियाँ इस प्रकार बदलीं कि वह दस वर्ष का हो गया। वह पतला और कोमल था; उसका शरीर ढीला और गाल खोखले थे। सूखी घास की तरह उसके बाल उसकी स्पष्ट और उभरी हुई आँखों पर गिरते थे—आँखों में दूर की दृष्टि थी जैसे वह दूसरों से छिपाई गई चीजों को देखती हों।

सर्दियों में बच्चा चूल्हे के पीछे सिकुड़कर बैठा था; सर्दी के कारण कोमलता से रोता था—कभी-कभी भूख से भी, जब 'मम्मी' के बरतन या अलमारी में खाने के लिए कुछ नहीं होता था। गरमियों में वह छोटी सफेद कमीज में, जो कमर पर रूमाल से बँधी होती थी, इधर-उधर दौड़ता-फिरता था; सिर पर तिनकों की बनी टोपी होती थी। सन जैसे उसके बाल छिद्रों से बाहर झाँकते थे और उसकी दृष्टि पक्षी की तरह इधर-उधर झपटती थी। उसकी माँ, विनीत जीव, जो कठिनाई से गुजर करती थी, और एक अद्‌भुत छत के नीचे चिड़िया की तरह रहती थी, निस्संदेह लोक व्यवहार से उसे प्यार करती थी, फिर भी बहुत बार उससे झगड़ती और उसे प्रायः 'चेंजलिंग' कहा करती थी। आठ वर्ष की आयु में उसने अपना जीवन जीना आरंभ कर दिया; कभी भेड़ों के झुंड को चराता, कभी जंगल में खुंबियों के लिए निकल जाता—जब घर में खाने के लिए कुछ भी न होता। वह केवल परमात्मा को धन्यवाद देता कि इन साहसी यात्राओं में कोई भेड़िया उसकी चीर-फाड़ नहीं करता था। वह विशेषतया अकाल प्रौढ़ लड़का नहीं था और गाँव के तमाम बच्चों की तरह बुलाए जाने पर मुँह में अंगुली डालने की उसकी आदत थी। पड़ोसियों ने भविष्यवाणी की थी कि वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगा या यदि वह जीवित रहता है तो भी अपनी माँ को आराम नहीं दे पाएगा क्योंकि वह कभी भी कठोर परिश्रम करने के योग्य नहीं होगा।

उसमें एक विशेष अनोखापन था। कौन कह सकता है कि इस असमान स्थान में यह उपहार क्यों दिया गया, परंतु संगीत को प्यार किया जाता है और उसका प्यार उत्कंठा थी। वह प्रत्येक वस्तु में संगीत सुनता था; वह हर ध्वनि पर ध्यान देता था और वह जितना बड़ा हुआ, उसने स्वर-ताल की ओर उतना ही अधिक ध्यान दिया। यदि वह पशुओं की देखभाल करता अथवा मित्रों के साथ जंगल में बेर इकट्ठे करने जाता, वह खाली हाथ लौटता और तुतलाकर कहता, ''ओ मम्मी, वहाँ कितना सुंदर संगीत था। वह बजा रहा था—ला-ला-ला!''

''मैं तुम्हारे लिए भिन्न धुन बजाऊँगी, अरे, निकम्मे बंदर।'' उसकी माँ क्रोध से चीखती और उसे करछुल से मारती थी।

छोटा बच्चा चीखता और संगीत को दोबारा न सुनने का वचन देता, परंतु जंगल के बारे में और अधिक सोचता था कि वह कितना सुंदर था और ऐसी आवाजों से भरा था जो गाती और गूँजती थीं। कौन था, क्या गाता और गूँजता था, वह ठीक तरह नहीं बता सकता था। चीड़ के पेड़, जंगली वृक्ष, भोजपत्र के पेड़, सारिका पक्षी, सभी गाते थे; सारे-का-सारा जंगल गाता था और प्रतिध्वनियाँ गाती थीं—चरागाहों में घास के तिनके गाते थे, कुटी के पीछे उद्यान में चिड़ियाँ चूँ-चूँ करती थीं; चैरी के पेड़ खड़खड़ाते और कर्कश आवाज करते थे। शाम को वह समस्त प्यारी आवाजें

सुनता था जो केवल देहात में ही सुनाई देती हैं और वह सोचता था कि सारा गाँव धुन से गूँज रहा था। उसके साथी उसपर हैरान होते थे क्योंकि वे इस प्रकार की सुंदर आवाजें नहीं सुनते थे। जब वह घास उछालने का काम करता तो सोचता था कि पवन उसके डंडे के काँटों से गुजरकर गाती है! निरीक्षक जब उसे निकम्मा खड़े देखता, बालों को माथे से पीछे किए हुए, हवा के संगीत को काँटे पर उसे सुनता पाता तो उसके स्वप्न को तोड़ने और उसे होश में लाने के लिए पट्टी की कुछ चोटें मारता था, परंतु इससे कोई लाभ न होता। अंत में पड़ोसियों ने उसका नाम 'संगीतकार जेनको' रख दिया।

रात के समय जब मेढक टर्राते, चरागाहों के पार कर्कश आवाजवाले पक्षी चीखते, दलदल में बगुले झपटते और भेड़ों के पीछे मुरगे बाँग देते तो बच्चों को नींद नहीं आती थी; वह इन्हें खुशी से सुन नहीं सकता था और परमात्मा ही जानता है कि वह इन सब आवाजों में मिली हुई किन अनुरूपताओं को सुनता था। उसकी माँ उसको अपने साथ गिरजा नहीं ले जा सकती थी क्योंकि वहाँ जब भी बाजा बजता तो बच्चे की आँखें धुँधली और गीली हो जाती थीं या फिर खुलकर चमकने लगती थीं जैसे कि दूसरी दुनिया ने उन्हें प्रकाशयुक्त कर दिया हो!

चौकीदार, जो रात को गाँव में गश्त लगाता था और तारे गिनता था अथवा जागते रहने के लिए कुत्तों से धीमी आवाज में बातें करता था, ने कई बार जेनको की छोटी सफेद कमीज को अँधेरे में कलबरिया की ओर तेजी से उड़ते देखा था। बच्चा कलबरिया में नहीं जाता था, परंतु दीवार के साथ झुककर सुना करता था। अंदर संगीत पर जोड़े, प्रसन्नतापूर्वक घूमते थे और कभी-कभी एक आदमी चीखता—''हुर्रे!'' पाँव पटकने की आवाज और लड़कियों की कृत्रिम आवाजें सुनाई देती थीं। सारंगी कोमलता से कल-कल कर रही थी और बड़े बाजे के गहरे स्वर गूँज रहे थे, खिड़कियाँ रोशनी से उत्साहित थीं और नाचघर में लकड़ी का हर तख्ता चर-चर करता प्रतीत होता था, गाता और बजाता मालूम होता था और जेनको इन सबको सुनता था। वह ऐसी सारंगी को पाने के लिए क्या कुछ नहीं देता, जो ऐसी ध्वनि पैदा करती है—ऐसा संगीत उत्पन्न करती है! काश! यह कहीं मिलती, किसी तरह उसे बना पाता? यदि उसको हाथ में लेने की आज्ञा दे दे तो··· ? परंतु नहीं, वह सुनने से अधिक कुछ नहीं कर सकता था और उसने तब तक सुना जब तक चौकीदार ने अँधेरे में उसे आवाज नहीं दी—

''ओ छोकरे, जाओ अपने बिस्तर पर।''

फिर छोटे, नंगे पाँव अपने कमरे की ओर बढ़ते और वायलिन की आवाज उनके पीछे-पीछे आती।

यह उसके लिए महान् अवसर होता जब वह फसल की कटाई पर अथवा किसी विवाह पर सारंगी को बजते सुनता। ऐसे अवसरों पर वह अँगीठी के पीछे सरक जाता और रात को बिल्ली की आँखों की तरह अपनी चमकीली बड़ी आँखों से सामने देखता हुआ, कई दिनों तक एक शब्द भी नहीं बोलता था।

अंत में उसने एक पतले तख्ते से सारंगी बनाई और उसमें घोड़े के बालों के 'तार' लगाए, परंतु वह इनती सुंदर नहीं बजती थी, जितनी कलबरियावाली। तारें नरमी से टन-टन की आवाज करती थीं; वह मक्खियों अथवा बौने की तरह भिनभिनाती थीं। फिर भी वह उसे प्रात: से रात तक बजाता था, भले ही ठोकरों और मुक्कों से नीला-पीला हो जाता था, लेकिन कर भी क्या सकता था, वह तो उसका स्वभाव बन गया था।

बच्चा पतला और पतला होता गया; उसके बाल घने होते गए, उसकी आँखें अधिक घूरनेवाली हो गईं और आँसुओं से तैरने लगीं; उसके गाल और छाती पहले से खोखली हो गई। वह कभी भी और बच्चों की तरह नहीं लगा; वह अपनी छोटी विनीत सारंगी की तरह था जो कठिनाई से सुनी जाती थी। इससे अधिक, फसल से पहले वह भूखा रहता था और मुख्यत: कच्चे शलजमों को खाकर जीता था या फिर अपनी इच्छाओं पर गुजर करता था—उसकी वायलिन के प्रति तीव्र इच्छाएँ। ओह! इन इच्छाओं का बुरा फल मिला!

ऊपर किले में एक सिपाही के पास सारंगी थी जो अपनी प्रेमिका और साथी नौकरों को खुश करने के लिए शाम को बजाया करता था। जेनको प्राय: बेलों में खिसककर संगीत सुनने या कम-से-कम सारंगी को एक नजर देखने के लिए नौकरों के बड़े कमरे के दरवाजे तक पहुँच जाता था। सारंगी दरवाजे के ठीक सामने दीवार पर लटकी होती। जब बच्चा उसको देखता था, उसकी सारी आत्मा उसकी आँखों में आ जाती थी—वह अलभ्य खजाना था जिसको प्राप्त करने में वह असमर्थ था, भले ही वह उसे पृथ्वी पर अत्यंत मूल्यवान वस्तु समझता था। उसको एक बार अपने हाथ से छूने या फिर इसको पास से देखने की मूक लालसा उसमें उभरी। यह विचार आते ही विनीत बचकाना दिल खुशी से उछल पड़ा।

एक शाम नौकरों के बड़े कमरे में कोई नहीं था। वहाँ का परिवार काफी समय से विदेश में रह रहा था, घर खाली था और सिपाही अपनी प्रेमिका के साथ कहीं गया हुआ था। जेनको बेलों में छिपा, कई मिनटों तक आधे खुले दरवाजे से अपनी इच्छा के लक्ष्य को देखता रहा था।

पूर्णिमा का चाँद आकाश में तैर रहा था; उसकी रश्मियाँ कमरे में रोशनी की धाराएँ फेंक रही थीं और सामनेवाली दीवार पर गिर रही थीं। धीरे-धीरे वे उस स्थान की ओर बढ़ीं जहाँ वायलिन लटक रही थी और उसपर पूरी तरह से गिरीं। अँधेरे में बच्चे के लिए वह साज के चारों ओर चाँदी का प्रभामंडल सा प्रतीत हो रहा था। वह साज को इस प्रकार प्रकाशित कर रहा था कि जेनको देखकर चुँधिया गया; तारें, गरदन और दिशाएँ स्पष्टतया नजर आ रही थीं, खूँटियाँ जुगनुओं की तरह चमक रही थीं और कमान जादूगर के चाँदी के डंडे की तरह था। वह कितना सुंदर था—लगभग जादू का! जेनको ने भूखी आँखों से देखा। सींखचे की बेल से सटा, अपने हड्डीदार घुटनों पर कोहनियाँ टेकीं, वह खुले मुँह से निश्चल इस एक वस्तु को देख रहा था। अब उसे डर ने घेर लिया और अगले क्षण शांत न करने योग्य इच्छा ने उसे आगे बढ़ाया। क्या यह जादू था या नहीं था? वायलिन अपनी यशस्वी किरणों के साथ उसके पास आती हुई जान पड़ती थी, उसके सिर पर मँड़राने के लिए!

केवल पुन: तेजी से चमकने के लिए, एक क्षण के लिए यश पर

अँधेरा छा गया। जादू, यह वास्तव में जादू था! इतने में पवन चरचराई, वृक्ष खड़खड़ाए, बेलों ने कोमलता से कानाफूसी की और बच्चे को ऐसा लगा कि वह कह रही हो—'जाओ, जेनको जाओ, वहाँ कोई नहीं है, जेनको जाओ।'

रात साफ और चमकीली थी। बाग में जोहड़ के पास बुलबुल ने गाना शुरू किया—धीरे-धीरे फिर जोर से ऊँचे-ऊँचे। उसका गीत कह रहा था—'जाओ, साहस करो, उसे छू लो।' एक ईमानदार काला कौआ बच्चे के सिर पर कोमलता से उड़ा और काँव-काँव करने लगा—'नहीं, जेनको नहीं।' कौआ उड़ गया, परंतु बुलबुल रह गई और बेलें अधिक स्पष्टता से चिल्लाईं, 'वहाँ कोई नहीं है।'

सारंगी अब भी चाँद की किरण के रास्ते में लटक रही थी—झुकी हुई आकृति कोमलता से और ध्यानपूर्वक निकट आती गई और बुलबुल कहती रही, 'जाओ, जाओ, उसे ले लो।'

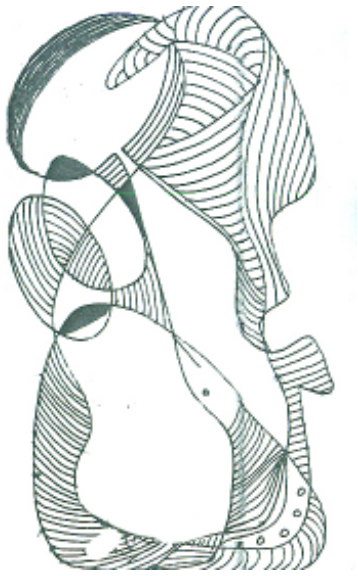

दरवाजे के रास्ते पर सफेद कमीज टिमटिमाई। काली बेलों से वह जल्दी से छिपाई न जा सकी। किनारे पर कोमल बच्चे की दु:खी तेज साँस सुनाई देती थी। एक क्षण के बाद सफेद कमीज लुप्त हो गई और केवल एक नंगा पाँव अभी तक सीढ़ियों पर खड़ा था। एक बार काला कौआ पुन: पास से काँव-काँव करता उड़ गया—'नहीं, नहीं'; जेनको पहले ही अंदर जा चुका था।

जोहड़ में मेढक जैसे एकाएक मौन हो गए थे वैसे ही एकाएक टर्राने लगे मानो किसी चीज ने उन्हें डरा दिया हो। बुलबुल ने गाना और वृक्षों ने कानाफूसी करना बंद कर दिया। इस बीच जेनको अपने खजाने की ओर धीरे-धीरे बढ़ा, परंतु डर ने उसे पकड़ा हुआ था। बेलों की छाया में उसने अपने को सुरक्षित पाया, मानो जंगल की झाड़ियों में जंगली पशु हो—अब वह फंदे में फँसे जंगली पशु की तरह काँपा। वह शीघ्रता से हिलडुल रहा था—उसकी साँस छोटी थी।

पूरब से पश्चिम तक चमकती गरमियों की बिजली मकान को थोड़ी देर के लिए जगमगा देती थी और विनीत जेनको लगभग अपने घुटनों और हाथों पर काँपते हुए अपने सिर को आगे सारंगी के पास दबाए हुए नजर आता था, परंतु गरमियों की बिजली रुक गई, एक बादल चाँद के आगे से गुजरा और फिर अँधेरे में कुछ भी दिखाई या सुनाई नहीं दिया।

फिर थोड़ी देर के बाद, अँधेरे में एक धीमी दर्द भरी आवाज सुनाई दी, मानो किसी ने अकस्मात् तार को छू दिया हो और उस समय कमरे के कोने से कर्कश उनींदी आवाज आई, ''कौन है वहाँ?''

दीवार के साथ दियासलाई ने रगड़ खाई, छोटी ज्वाला निकली और फिर—'ओ, परमात्मा!' फिर कठोर गालियाँ, मुक्कों की बौछार, बच्चे की चीख-पुकार; 'ओह, परमात्मा के लिए!' कुत्तों का भौंकना, खिड़कियों के सामने लोगों का बत्तियाँ लिये हुए इधर-उधर भागना, सारे घर में कोहराम मच गया।

दो दिन के बाद विनीत जेनको न्यायाधीशों के सामने खड़ा था। क्या उसको चोरी के लिए अभियुक्त ठहराया जाए? वस्तुत:।

जैसे ही वह कटघरे में खड़ा हुआ, न्यायाधीश और मकान मालिक ने दोषी को देखा—मुँह में अंगुली डाले, भयानक छोटी, दुर्बल, गंदी, पराजित आँखों से घूरता हुआ और बता पाने में असमर्थ कि वह वहाँ क्यों और कैसे पहुँचा था या वे लोग इसके साथ क्या करनेवाले थे, खड़ा था।

न्यायाधीश ने सोचा कि ऐसे छोटे हतभाग्य व्यक्ति पर मुकदमा कैसे चलाया जा सकता है, जो केवल दस वर्ष का है और कठिनाई से अपनी टाँगों पर खड़ा हो सकता है? उसे जेल भेजा जाए या क्या''? बच्चे के साथ ज्यादा कठोरता से पेश नहीं आना चाहिए। क्या यह उचित नहीं रहेगा कि इसे चौकीदार के हवाले कर दिया जाए और वह इसे कुछ कोड़े मारे, ताकि यह पुन: चोरी न करे और मामला यहीं समाप्त हो जाए!

''ठीक है, बहुत अच्छा विचार है।''

स्टाच चौकीदार को बुलाया गया।

''इसको ले जाओ और चेतावनी के तौर पर कोड़े लगाओ।''

स्टाच ने अपना बेढंगा बड़ा सिर हिलाया और अपने बाजू के नीचे कुत्ते के पिल्ले की तरह जेनको को लेकर खलिहान की ओर चल दिया।

या तो बच्चे ने सारे मामले को समझा नहीं या फिर वह बोलने से डर रहा था; किसी भी हालत में वह बोला नहीं और एक भयभीत पक्षी की तरह अपने चारों ओर देखता रहा। वह जान भी कैसे सकता था कि वे इसके साथ क्या करना चाहते थे? जब स्टाच ने उसे पकड़ा, खलिहान के फर्श पर लिटाया और उसकी छोटी कमीज को बेंत से ऊपर उठाया तो जेनको चीखा ''मम्मी।'' और हर कोड़े पर चिल्लाया, ''मम्मी, मम्मी।'' परंतु हर बार धीमे और दुर्बलता से; कुछ कोड़े खाने के बाद वह चुप हो गया और मम्मी को पुकारना बंद कर दिया।

विनीत टूटी हुई सारंगी!

भद्दे, दुष्ट स्टाच! बच्चे को क्या किसी ने इस तरह से कभी पीटा है? विनीत बच्चा हमेशा से दुबला और पतला रहा था और कठिनाई से साँस उसके शरीर में थी।

अंत में उसकी माँ आई और बच्चे को अपने साथ ले गई, उसे उठाकर ले जाना पड़ा। अगले दिन जेनको नहीं जागा और तीसरे दिन तख्ते पर घोड़े के कपड़े से ढके उसके प्राण पखेरू शांति से उड़ गए!

वह लेटा हुआ था, खिड़की के सामने उगे चैरी के पेड़ पर अबाबील चिड़िया बोल रही थी; खिड़की के शीशे से होती हुई सूर्य की किरण आ रही थी और बच्चे के भोथरे बालों और रक्तहीन चेहरे को चमका रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि बच्चे की आत्मा को स्वर्ग में जाने के लिए किरण रास्ता बना रही थी।

उसके लिए, उसके अंतिम समय में वह चौड़े और सौर पथ से जाएगा इसके विपरीत कि जीवन में कँटीले रास्ते पर चलता। व्यर्थ पड़ी हुई छाती अब भी कोमलता से ऊपर-नीचे हो रही थी और ऐसा लगता था कि बच्चा खिड़की से आती हुई बाहरी दुनिया की प्रतिध्वनियों के प्रति अभी भी सचेत था। शाम हो गई थी; घास सुखाने के बाद किसान-लड़कियाँ गाती हुई पास से लौट रही थीं; पास में नदी मंद-मंद शब्द उत्पन्न कर रही थी।

जेनको ने अंतिम बार गाँव की संगीतमयी प्रतिध्वनियों को सुना। घोड़े के कपड़े पर उसकी बगल में सारंगी पड़ी थी जो उसने लकड़ी के पतले तख्ते से बनाई थी। एकाएक मरते हुए बच्चे का चेहरा चमक उठा और उसके होंठ—सफेद होंठ धीमे से बोले, ''मम्मी!''

''बोलो मेरे बच्चे।'' माँ ने सिसकियाँ भरते हुए कहा।

''मम्मी, परमात्मा मुझे स्वर्ग में असली सारंगी देगा।''

''हाँ, हाँ, मेरे बच्चे।'' माँ ने उत्तर दिया। वह अधिक कुछ न कह सकी क्योंकि उसके दिल में एकाएक दु:खमयी शोक उमड़ पड़ा था। वह केवल बड़बड़ाई, ''जीसू, मेरे जीसू!'' और मेज पर सिर रखकर रोने लगी—इस तरह रोने लगी जैसे मृत्यु ने उसका खजाना लूट लिया हो!

और यह ऐसे हुआ। जब उसने सिर उठाकर बच्चे की ओर देखा तो छोटे संगीतकार की आँखें खुली थीं, परंतु उसकी आकृति गंभीर, पवित्र और कठोर थी। सूर्य की किरण लुप्त हो चुकी थी।

''परमात्मा तुम्हें शांति प्रदान करे, नन्हें जेनको।''

□

अगले दिन बेरन और उसका परिवार इटली से किले में लौट आया। औरों के साथ घर की बेटी और उसका मंगेतर भी था।

''इटली कितना रमणीय देश है!'' भद्र पुरुष ने कहा।

''हाँ, और वहाँ के लोग! वह कलाकारों का देश है। इसको जानकर उनके गुणों को प्रोत्साहित करना आनंददायक है।'' युवा महिला ने उत्तर दिया।

जेनको की कब्र पर बबूल के पेड़ खड़खड़ा रहे थे।

जीत की हार

लघुकथा

● बिर्ख खडका डुवर्सेली

''बाबूजी क्यों पैदल जाएँगे? आइए, मैं पहुँचा दूँगा।'' जब दूसरे रिक्शेवाले ने जोर देकर कहा तो मैं उसकी ओर मुड़ गया। देखा, लगभग सत्तर साल का बूढ़ा; चेहरे पर झुर्रियाँ थीं, लेकिन मुख पर मुसकान।

''ठीक है, चलो!'' कहकर मैं रिक्शे पर बैठ गया और सब्जियों के झोले को आगे रखा। वह रिक्शा हाँकने लगा।

''मालूम है, मैं तो केवल पाँच रुपए ही दूँगा।'' उसे मैंने स्पष्ट बताया। दुर्गागढ़ी से चंपासरी मोड़ की दूरी एक किलोमीटर से ज्यादा नहीं है। पहले रिक्शेवाले केवल पाँच रुपए ही भाड़ा लेते थे।

''आपको आपके घर तक पहुँचा दूँगा, मैंने कहा न। मुझे एक पैसा भी देने की जरूरत नहीं है।'' उसने रिक्शा खींचते हुए अपनी बात कही तो मैं चकित हो गया।

''क्यों?'' पूछना पड़ा।

तभी रिक्शे की चेन खिसक गई, रिक्शा रोककर ठीक करने लगा और बोला, ''बाबूजी, मुझे भी सेवा करने का मौका दीजिए...'' फिर वह रिक्शे पर बैठा और खींचने लगा। मुझे लगा, मेरी स्मृतिशक्ति क्षीण हो गई है। अकसर भूल जाता हूँ वादे और इरादे। मैं मस्तिष्क पर जोर देकर सोच रहा था कि वह मेरे घर के आगे पहुँच गया और बोला—

''यही है न आप का घर!''

जब मैंने पाँच रुपए का सिक्का निकाल उसे दिया तो हाथों से न लेने का संकेत करते हुए वह बोला, ''मुझे भी सेवा करने का मौका दीजिए। हो सके तो एक गिलास पानी पिलाइए। याद है आपको, चार-पाँच महीना पहले आपने पानी पिलाया था।''

तब मुझे कुछ-कुछ याद आने लगा। मेरे घर के पास एक क्लब है—दुर्गा मल्ल जन कल्याण संघ। वहाँ प्रत्येक महीने के अंतिम रविवार को चिकित्सा शिविर का आयोजन होता है, मेरी देख-रेख में। समाज सेवी चिकित्सकों की टोली नि:शुल्क सेवा प्रदान करती है, दवाएँ मुफ्त में देने की व्यवस्था है। तब शायद यह रिक्शावाला आया होगा। उसने बताया भी, ''बाबूजी, यहाँ डाग्दर बाबू सब आते हैं, मैंने भी दिखाया था। दवाओं का झोला लेने आपके साथ इस घर में आया था। तब मैंने आपसे पानी माँगकर पिया था।''

''क्या हुआ था... ?...हाँ...पेट की गड़बड़ी थी। डॉ. कार्की ने देखा था शायद।'' उसने बताया, ''दवा मुफ्त में मिली थी, मैं अच्छा हो गया।'' मैंने उसकी पत्नी, बड़े बेटे, छोटे बेटे तथा बेटी के बारे में पूछा तो वह बोला, ''पत्नी ठीक ही है, छोटा बेटा कुछ सुधर गया है। बेटी की शादी नहीं हुई है...और बड़ा बेटा बंबई से नहीं लौटा है, शायद आएगा ही नहीं, बंबई में लोगों ने बिहारियों पर हमला किया था सुनता हूँ, तब से उसका कुछ भी अता-पता नहीं है।'' उसकी आँखों में आँसू छलक गए।

सब्जियों के झोले को भीतर रखने के लिए घुसा और एक गिलास पानी लेकर निकला, उसे दिया। अंत में मैंने दस रुपए का एक नोट निकालकर उसे दिया और कहा, ''लेना होगा, नहीं तो मैं नाराज हो जाऊँगा।'' मेरी जिंदगी में उस दिन जीत की हार हुई थी।

आमा खडकालय
दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर
दार्जिलिंग-७३४००३
दूरभाष : ०९७४९०५२८५७

कहानी

तिनका-तिनका घरौंदा

● मंजुरानी जैन

दिल्ली एयरपोर्ट पर उतरी तो आदतन अपना मोबाइल स्विच ऑन कर लिया। यंत्रवत् एक ट्रॉली उठाई और आकर एयरपोर्ट के बैगेज-क्लेम एरिया में अपने सामान के आने के इंतजार में खड़ी हो गई। मैंने विमान से बाहर निकलते ही अपना वाट्स-एप मोबाइल ऑन कर लिया था। पर न तो कोई संदेश दिखाई दिया और न ही फोन बजा। बहुत देर तक जब वह नहीं बजा तो उसकी ओर ही नजर टिकी रही, 'क्या हो गया? यह मोबाइल ऐसे ही चुप क्यों पड़ा है अब तक?'

अचानक ही किसी ने धक्का मारा तो खयाल आया कि अपना बैग कलेक्ट करने के बाद कस्टम से भी पार होना है। वायुयान से बाहर निकलते ही मन में न जाने कैसी ऊल-जलूल बातें चक्कर काटने लगी थीं। एक अजीब सी बेचैनी···। बस जल्दी से घर पहुँचने की इच्छा थी। बार-बार फोन करने की कोशिश में लगी थी। पर शायद वह भी माँ की तरह बीमार पड़ गया था। 'माँ ने भी तो खबर नहीं ली।' ओह! माँ को क्या पता कि मैं उनके पास आ रही हूँ। न जाने किस हालत में होंगी? मैं भी तो यों ही बस एक सूटकेस लेकर जल्दी में चली आई थी। हैरान परेशान···। किस्मत से वीजा दस साल का था, इसीलिए जल्दी से टिकट भी रिजर्व हो गया था। पहले जो फ्लाइट मिली, उसी से चली आई थी।

आखिर मुझे अपना बैग दिख ही गया, जैसे ही मेरे करीब पहुँचा, मैंने उसे उठा लिया। ट्रॉली पर रखकर चल दी कस्टम की तरफ। मेरा सामान इतना कम देखकर ऑफिसर ने कुछ सवाल किए, मेरे यह बताने पर कि मैं अपनी बीमार माँ को देखने भारत आई हूँ, उसने ग्रीन चैनल से बाहर जाने की अनुमति दे दी। रात का एक बज चुका था। एयरपोर्ट के अंदर से ही प्रीपेड टैक्सी करके मैं घर की ओर चल दी। दिल्ली के अजीबो-गरीब किस्से सुनकर भी इस समय मेरा ध्यान केवल माँ तक पहुँचने पर था और आधे घंटे में मैं घर के सामने थी।

टैक्सीवाले से निपटकर मैं मुड़ी। देखा तो फाटक खुला था, एकदम चौपट। देखकर धक्का सा लगा। माँ कभी ऐसा होने ही नहीं दे सकती, वह तो बड़ी सतर्क हैं, फिर? लॉन पार करके जाली का दरवाजा जो बाहर की तरफ खोला तो वह भी खुल गया। दूसरे दरवाजे को धक्का दिया तो देखकर अजीब सी आशंका ने मुझे घेर लिया, अंदर रेखा दी, धीरज और पुराना नौकर रामू बैठे दिखाई दिए। रेखा दी दौड़कर मेरे पास आईं, ''अरे निम्मी! कैसे आई अकेली? बैठ, ले पानी पी ले।'' अपने घर में मैं खुद को पराया सा महसूस करने लगी थी। मैंने पूछा, ''माँ···माँ कहाँ हैं, दी?''

सुपरिचित रचनाकार। पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित एवं दिल्ली पाठ्यक्रम के रैपिड रीडर में सम्मिलित। संप्रति कई वर्षों तक मुंबई विश्वविद्यालय में चीफ लाइब्रेरियन के पद पर कार्य।

रेखा दी ने मुझे गले लगा लिया, वह रो पड़ीं। धीरज ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और पकड़कर मुझे सोफे पर बैठा दिया। खुद भी पास बैठ गया। मैं सकते में थी। माँ इतनी सीरियस थीं, मेरा अंतर्मन शायद स्वीकार नहीं कर पाया था। धीरज ने बताया, ''मौसी, सबकुछ बड़ी जल्दी से हो गया। नानी को कल हल्का-सा बुखार था। रेखा आंटी (पड़ोसन) उस दिन दोपहर नानी के लिए कुछ बनाकर ले आई थीं, उन्हें देकर शाम को वो शॉपिग करने मार्केट चली गई थीं। रामू काका भी सब्जी लेकर तभी बाहर से आए थे। उन्होंने देखा, नानी बाथरूम से आते वक्त बीच में ही बेसिन के पास बेहोश होकर गिरी पड़ी थीं। उन्हें स्ट्रोक हो गया था शायद! शरीर पसीने से बेतहाशा भीगा पड़ा था। रामू काका ने तुरंत मम्मी को फोन किया और मम्मी ने मुझे। मैं उसी समय यहाँ के लिए चल पड़ा। मैं रास्ते में ही था तो फिर मम्मी का फोन आया कि उन्हें मिलिटरी हॉस्पिटल ले जाया गया था। सो मैं फिर से मुड़ा और वहीं पहुँच गया। डॉक्टरों ने बहुत कोशिश की, पर एक घंटे में सब खत्म···'' एक साँस में धीरज ने मुझे सबकुछ बता दिया। उसका गला भर आया था। मुश्किल से उसने अपने आँसू रोके और उठकर बाहर की तरफ चला गया।

मैं उसके पास गई। कंधे पर हाथ रखा। उसे ढाढ़स बँधाया। मन में बड़े सवाल थे, पर पूछने की हिम्मत मुझ में भी कहाँ थी। धीरज यहीं दिल्ली में रहता है। क्या उसे कभी नानी की खबर लेने का समय नहीं मिला? माँ ऐसे ही अपनों का मुँह देखे बिना ही संसार से विदा हो गईं? अंदर से कुछ उबल पड़ा था, जो आँखों से धार बनकर बह निकला।

''धीरज बेटा! तू आता रहता था नानी के पास?'' मैंने यों ही प्रश्न कर डाला धीरज से।

''नहीं मौसी! आपको तो पता है, रोज सुबह आठ बजे निकलकर रात देर तक ही लौट पाते हैं, मैं और मोनिका दोनों। संडे को भी कहाँ

समय मिल पाता है बहुत! कभी-कभी ही मिलना होता था। इस बार तो काफी देर हो गई थी।'' उसने अपनी मजबूरी जताई। अपनी जगह वह ठीक भी था। उसके चेहरे पर अपराध-भावना साफ दिखाई दे रही थी।

''मम्मी कैसी हैं?'' मैंने अपनी छोटी बहन नीता के विषय में पूछा।

''बहुत कमजोरी है, उन्हें भी दो हफ्ते पहले मिला था, जब उनका कीमो-ट्रीटमेंट होना था। अब अगले सप्ताह फिर से है। पंद्रह दिन में एक बार होता है, इसलिए कल सुबह की फ्लाइट से मम्मी-पापा दोनों चल देंगे वहाँ के लिए। सब तरफ...!'' उसका गला रुँध आया। मैंने उसे गले लगा लिया।

लेकिन फोन पर तो खबर ली ही जा सकती थी। कभी-कभी वह फोन तो कर ही सकता था। आजकल तो सबके हाथ में मोबाइल रहता है।

किसी से कुछ भी पूछने का हक नहीं था मुझे। मैं किसी को क्या कहती? खुद इतनी दूर अपनी ही गृहस्थी और जिंदगी में मशगूल! करती भी तो क्या? और नीता? बेचारी, उसे तो कैंसर जैसे रोग से जूझना पड़ गया। उसकी कीमोथैरैपी चल रही थी। मुंबई से इतने शॉर्ट-नोटिस पर अपनी ऐसी स्थिति में तुरंत आ जाना उसके लिए ही कहाँ संभव हो पाता? मन मसोसकर रह गई थी मैं। बस रातभर सोचती रही, 'काश! माँ किसी तरह मेरे पास ही रह जाती!'

दिल किया अस्पताल जाकर मॉर्ग में रखी निर्जीव माँ को अभी देख आऊँ। पर यह भी कोई समय है। आँखों के सामने उनकी छवि ही घूमती रही, कभी किचन में कुछ बनाते और कभी कपड़े समेटते, तो कभी घर सँगवाते। अस्सी पार करने के कारण थकी-थकी रहतीं। पर कुछ-न-कुछ करते रहना उनका स्वभाव था। रामू काका रोकते तो उन्हें डाँट देतीं, ''तो क्या हाथ-पाँव डालकर यों ही बैठ जाऊँ, दूसरों के भरोसे?'' काका चुप हो जाते।

उनका नियम था कि शाम को क्लब जरूर जातीं। गाड़ी खुद ही चलातीं। पर ऐसे चलातीं कि उनके साथ कार में बैठते डर-डर कर रास्ता कटता था। क्लब में बड़े उत्साह से तंबोला भी खेलतीं और अकसर जीत भी जाती थीं। हँसकर अकसर मुझे बताती थीं, ''पता है, गीता! मैं जीतती हूँ तो कुछ स्त्रियों की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं। उन्हें बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। क्या करूँ, अपनी-अपनी किस्मत, हमेशा जीतती भी तो मैं ही हूँ।''

''तो माँ, मत खेला करो न! दूसरों को ही खेलने दिया करो। क्या करोगी ये थोड़े से पैसे जीतकर? क्या पैसे की कोई कमी है तुम्हारे पास?'' मैं और नीता दोनों ही उन्हें समझाने का प्रयत्न करतीं। उस पर वे तुरंत रियक्ट करतीं, ''अरे! तुम दोनों तो बड़ी अजीब बातें करती हो, एग्साइटमेंट भी तो कोई चीज होती है, भई! पाँच पैग के नशे का मजा आता है। कुछ मनोरंजन चाहिए न मुझे भी, यह तुम क्या समझोगी?''

हम दोनों एक-दूसरे की तरफ देखकर हँस देतीं। उनका बोलना जारी रहता, ''अब और रह भी क्या गया है जिंदगी में! तुममें से एक भी आस-पास होती तो...!''

उन जीते हुए पैसों को वे अपने ही हाथ से कढ़ाई किए हुए बटुए में रखते हुए बातें करती रहतीं। रात को सोते समय उसमें रखे सारे पैसे निकालकर फिर से गिनतीं और मुसकराकर उस बटुए को सहेजकर वापस अलमारी में रख देतीं। साथ ही अपनी आँखों में तैर आए पानी को अपनी मुसकराहट से ढकने की कोशिश करतीं तो हम चुप हो जाते।

वे सच ही तो कहती थीं। अकेलेपन की पीड़ा को ऐसे ही बैठे-बैठे कैसे झेल पातीं? लोगों का क्या, वे तो समझते हैं कि बूढ़े आदमी को किसी खुशी का कोई अधिकार नहीं होता, पर यह कोई नहीं जानता कि उसे दूर करने के लिए बचपने में वापस लौटना ही उसके जीने का एकमात्र पर्याय है।

रात यों ही सब सोचते-सोचते बीत गई। सुबह रेखा के यहाँ से चाय आ गई, पर किसी ने हाथ नहीं लगाया। सब ऐसे ही बैठे रहे। ग्यारह बजे तक नीता भी पहुँच गई। उसकी हालत देखकर मन का दुःख दोगुना हो गया। हम दोनों एक-दूसरे से लिपट गईं। मन में इकट्ठा हुआ लावा आँसू की धार बनकर बह निकला। मैं सँभली। इस हालत में उसे दुःखी करना ठीक नहीं था। पर वह रुकने का नाम नहीं ले रही थी, ''देखो न दी, मैं माँ को बता नहीं पाई। एक बार कोशिश भी की तो उन्हें लगा, आपको कुछ हो गया था। कहने लगी कि अच्छा, तो मैं चली जाऊँ उसके पास? पर मैं भी कहीं जाकर उसका काम न बढ़ा दूँ! भगवान् यह सब देखने से पहले मुझे उठा ले तो बड़ी कृपा होगी उसकी। और उनकी यह प्रार्थना शायद भगवान् ने जल्दी ही सुन भी ली।''

माँ का दिल कभी हमारे घर में नहीं लगा। आती भी तो कुछ ही दिनों में अपने घर जाने की जिद करतीं। हमारे घर के ढर्रे से वे कभी एडजस्ट नहीं कर पाईं। मैं कॉलेज से घर लौटती तो उनका दोपहर की चाय का समय होता। उस समय हमारा सोना और उनके सोने के समय हमारा डिनर करना, उन्हें कभी नहीं भाया। वे भुनभुनाती रह जाती थीं। काम पर जाने के कारण हमारी दिनचर्या उनसे काफी अलग थी। जब भी हमारे घर रहने आती थीं तो आने से पहले ही वापस जाने के टिकट की जुगाड़ में लग जातीं।

धीरज सुबह अपने मम्मी-पापा के आने से पहले ही हमारे पड़ोसी और कुछ मित्रों के साथ अस्पताल में माँ के पार्थिव शरीर को घर पर लाने के लिए निकल चुका था। बारह बजे तक वे सब वापस भी आ गए थे।

हम अवश होकर माँ के स्पंदनहीन शरीर को अंतिम यात्रा के लिए तैयार करने में लग गए। विदा की अंतिम वेला भी आ गई। उनके पार्थिव शरीर को विदा होते, गेट पर खड़े तब तक देखने की कोशिश करते रहे,

जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गईं।

तीन दिन बाद ही चौथा या तेरहवीं की रस्म कर दी गई। मैं कुछ दिन नीता के साथ मुंबई में बिताकर यू.एस. वापस जाना चाहती थी। उसकी इस बीमारी के दौरान चाहकर भी मैं इंडिया नहीं आ पाई थी और अब भी जल्दी ही लौटना था। सभी सगे-संबंधी आए, चाची भी आई थीं, गले लगकर बहुत रोईं, बोलीं—

''बस बिटिया, सब पके फल हैं , चला-फिरा भी नहीं जाता, फिर भी सोचा, इसी बहाने तुम सबसे मिलना हो जाएगा। कल किसने देखा? तुम सबकी छवि को आखिरी बार अपनी आँखों में तो समेट लूँ, इसीलिए हिम्मत करके आ गई। आगे तो अब क्या मिलना होगा?''

किसी समय दूरियाँ बनाकर रखनेवाले सगे-संबंधी सब जैसे करीब आ गए थे। समय के साथ-साथ शिकवे-शिकायतें ठंडे पड़ चुके थे। वह तो सब जीवन रहते ही चलता है।

नीता को अपने ट्रीटमेंट के कारण मुंबई जल्दी लौटना था। मेरे पास भी बस एक सप्ताह बाकी था। घर का पूरा सामान भी ठिकाने लगाना था। वर्षों से जो सामान बड़े शौक से जोड़कर माँ ने घर बनाया था, उसका क्या करूँ, समझ नहीं पा रही थी। मेरी बहन नीतू यानी धीरज की माँ की हालत ठीक नहीं थी और मैं खुद एक परदेसी। हम दानों बहनें फिर यहाँ कभी आ भी पाएँगी, पता नहीं था। और मिलने का आधार भी रहेगा या नहीं, यह भी पता नहीं था।

धीरज व उसकी बहू दोनों प्राइवेट फर्म में सॉफ्टवेअर इंजीनियर थे। और नानी माँ के घर से बहुत दूर, शहर के दूसरे सिरे से अपने छोटे से बच्चे के साथ कैसे समय निकालकर इस घर की देखरेख करते! सबकुछ बड़ा मुश्किल था।

घर के पुराने सामान को ठिकाने लगाना तो उनके लिए दूर की बात थी। धीरज से पूछा तो उसने साफ मना कर दिया, ''नहीं मौसी, हमारा घर तो सैट है। सब नए तरह का सामान हमने एक-एक करके अपनी पसंद से खरीदा है। घर में और जगह ही कहाँ है?'' सबके पास सबकुछ था। जिन्हें जरूरत थी, वे दिल्ली से इतना दूर रहते थे कि वहाँ से ले जाने में जितना खर्च होता, उतने में तो वे नया खरीद लेते। मन पर पत्थर रखकर जिसे जो चाहिए था, हमने बाँटना शुरू कर दिया। कुछ सस्ते दामों में निकाल दिया। पुराना फर्नीचर, माँ की अच्छी जरी की साड़ियाँ, बरतन और अन्य सामान रामू काका और उनकी बेटी की गृहस्थी के लिए दे दिए। पापा के जाने के बाद वही तो एक थे, जो माँ के बुढ़ापे में काम आ सके थे। दिनभर घर का काम करते कुक, माली, खरीदारी और पूरे घर की देख-भाल, सब का रोल वही अदा करते थे। माँ की डाँट भी वही चट करते थे। आसानी से कोई भी काम माँ को पसंद नहीं आता था।

नीता सबकुछ मुझ पर छोड़कर मुंबई वापस लौट गई। उसकी हालत ऐसी थी कि उसे इस समय किसी प्रकार की चीज में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मुझे भी यहाँ से निकले ३०-३५ साल बीत गए और इस देश से इतनी दूर कुछ ले जाने की सोचती, तो उसका करती भी क्या? मेरी इकलौती संतान एक बेटी ही तो है। माँ का वो तंबोले से जीते पैसोंवाला बटुवा और उनके एक जोड़ी जड़ाऊ झुमके जरूर याददाश्त के तौर पर नीता से कहकर मैंने अपने पास रख लिए थे। बाकी सब उसे सौंप दिया था। पापा की कितनी सारी किताबें, क्या करूँ उनका? आजकल लोग किताबों को भी बोझ ही समझते हैं। कुछ शौकीन लोगों को माँ ने पहले ही दे दी थीं, बाकी और का जिम्मा मैंने रामू काका को ही सौंप दिया था। सब घर के आँगन में रखवा दी थीं। मेरे पास समय नहीं बचा था कि किसी अच्छी सी लाइब्रेरी से संपर्क करके उसे ही सौंप देती। मुंबई नीता के यहाँ जाने का दिन भी आ गया और आनन-फानन में कुछ घर का सामान भी नहीं सँभला तो वह भी घर के बाहर ही यह सोचकर रखवा दिया कि जिसे जरूरत होगी, ले जाएगा। बँगला बेचना था। पापा के एक करीबी मित्र के बेटे ने उसे खरीदने में दिलचस्पी दिखाई थी और यह सौदा नीता के ठीक हो जाने पर ही संभव था। मैं जो कुछ कर सकती थी, कर चुकी थी।

बारह बजे मेरी फ्लाइट थी, धीरज मुझे लेने सुबह ही आ पहुँचा था, ''मौसी! चलिए, मेरे घर में थोड़ी देर रुककर नाश्ता-पानी के बाद मैं आपको एयरपोर्ट छोड़ आऊँगा और मुंबई एयरपोर्ट पर पापा आपको लेने आ जाएँगे। अब आप जरा भी परेशान न हों।''

मैं बुरी तरह थक चुकी थी, पस्त थी। अपना सूटकेस लिये मैं धीरज की कार में बैठी, फिर उतरी और भागकर घर के बाहर आँगन में खड़े होकर अपने घर को आखिरी बार निहारा, जिस घर में हमारा सुंदर-सा बचपन बीता था। चलते-फिरते, हँसते-ठहाके लगाते मम्मी-पापा और हम सब···एक चलचित्र की तरह आँखों में घूम गया। जिस घर का कोना-कोना हमारी यादों में सजा था, बसा था, उसे इतनी आसानी से कितना जल्दी यों ही तार-तार करके हम अपनी राह पर बेदर्दी से आगे बढ़ चले थे। लगा जैसे बँगला ही नहीं, बल्कि यहाँ बसी यादों का भी हम सौदा करो रहे थे। रामू काका के गले लगकर बेबस-सी मैं फूट-फूटकर रो पड़ी।

उन्होंने सिर पर हाथ फेरा, ढाढ़स बँधाया, ''बिटिया, सब्र कर लो, बस यही ठीक रहेगा। जो आया है, उसका जाना तय है। कभी इधर आना हो तो अपने इस गरीब काका से मिलने जरूर आना।''

धीरज मुझे सहारा देकर बाहर ले आया, ''चलो मौसी! अब देर हो रही है।''

असली मायनों में मैं अपने इस आशियाने से आज विदा हो रही थी। अब तक एक आस थी, सहारा था, जब-तब ही सही लौटकर आने का एक बहाना था। नजरें घर पर ही टिकी थीं। भारी मन से कार में बैठ गई। कार चल पड़ी और नम आँखों से मैं रामू काका और सड़क के किनारे रखे तिनका-तिनका बिखरे अपने घर को नजरों में समेटती अलविदा···जब तक ओझल नहीं हो गई।

१०, नरुला बिल्डिंग,
पहला माला, २१वीं
रोड, चैंबूर, मुंबई-४०००७१

जीवों से नेह लगाएँ

● बसंता

सुपरिचित कवि एवं लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, सरदार वल्लभभाई पटेल महाविद्यालय, कैमूर (बिहार)।

प्रतिबिंब

दर्पण में देखने पर प्रतिबिंब दीखता है,
सुंदर हो या कुरूप, हर व्यक्ति रीझता है।
महिलाएँ तो दर्पण की चिरसंगिनी सदा से,
अकसर निहारती हैं सूरत बड़ी अदा से।

कुछ भी न फर्क पड़ता, दर्पण न झूठ बोले,
यह अनासक्त रहता, यह किसी को न तौले।
दर्पण के हम ऋणी हैं, प्रतिबिंब जो दिखाता,
दु:ख में न दु:खी होता, सुख में न मुसकराता।

दर्पण कभी न तोड़ें हम क्रोध के आवेश में,
दर्पण हमारा साथी, हर रूप और वेश में।
दर्पण सदा हम रखें, घर में सतत सजाकर,
दर्पण तो बहुत निर्मल, रखता नहीं फँसा कर।

हर उम्र का है साथी, बालक, जवान, वनिता,
हर वक्त यह सजग है, इसमें है बड़ी शुचिता।
यह काम है हमारा, इसकी नित करें सफाई,
तन-मन को साफ रखें, इससे करें मिताई।

हम सोच के वितान को ऊपर जरा उठाएँ,
प्रतिबिंब है वह किसका, दरशाती जो दिशाएँ।
इस सृष्टि के कण-कण में बहुत कुछ दिखता है,
इस प्रकृति के ऐश्वर्य पर हर व्यक्ति रीझता है।

जंगल, पहाड़, नदियाँ और मेघ की घटाएँ,
ये मुदित भाव में हो नित खुशी जो लुटाएँ।
प्रतिबिंब उसी ईश का यह प्रकृति है दिखाती,
उस ईश की विभूति कण-कण में नजर आती॥

न जाने कब

न जाने कब जीवन का अवसान निकट आ जाए,
इसीलिए प्रभु के चरणों में प्रीति लगाएँ।
न जाने कब जीवन प्रवाह कहाँ किधर मुड़ जाए,
इसीलिए जीवन से दर्प, घमंड भगाएँ।

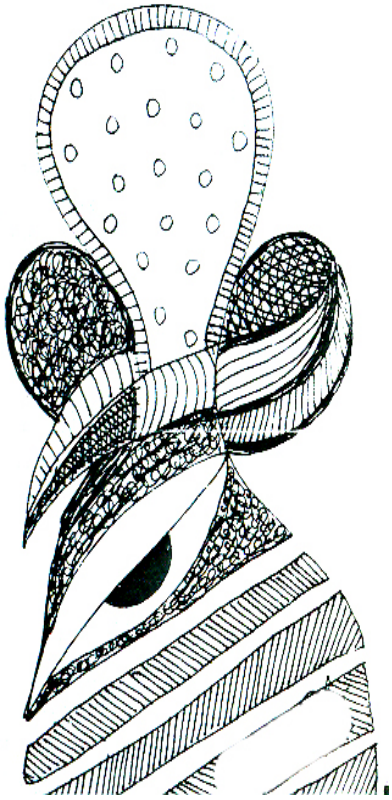

न जाने कब कहाँ मुसीबत में फँस जाएँ।
इसीलिए लोगों का नित दु:ख-दर्द मिलाएँ।
न जाने कब महाकाल की चाल कुटिल हो जाए,
इसीलिए अपनी चाल निष्कपट बनाएँ।

न जाने कब किस जगह प्यास लग जाए,
इसीलिए लोगों की हम नित प्यास बुझाएँ।
न जाने कब कहाँ बुद्धि, विवेक खो जाए,
इसीलिए हम ईश दया की आस लगाएँ।

न जाने कब पाँवों में काँटे चुभ जाएँ,
इसीलिए लोगों की राह में फूल बिछाएँ।
न जाने कब जीवन की धड़कन रुक जाए,
इसीलिए जीवों के प्रति हम दया दिखाएँ।

न जाने कब किसको कौन सी बात लग जाए,
इसीलिए सबके प्रति हम सद्भाव दिखाएँ।
न जाने कब चंचल मन यह कहाँ भटक जाए,
इसीलिए मन पर अंकुश हर समय लगाएँ।

न जाने कब यम का बुलावा आ जाए,
इसीलिए मन में वैराग्य का दीप जलाएँ।
न जाने कब ईश कहाँ किस रूप में मिल जाए,
इसीलिए सब जीवों पर दया दिखाएँ॥

सरदार वल्लभभाई पटेल
महाविद्यालय भभुआ (कैमूर)
बिहार-८२११०१
दूरभाष : ०९४३०५८१२४६

एक तीर्थयात्रा सुवर्णपुर (पर्सा) व जनकपुर

● रुक्मणी संगल

अपने देश व दुनिया को देखने की उत्कट अभिलाषा सदा ही मुझमें हिलोरें लेती रहती है। यह अवश्य है कि समय अथवा परिस्थिति की अनुमति के बिना उसका क्रियान्वयन होना कठिन ही होता है, लेकिन ज्यों ही कोई अवसर मिले तो उसे गँवाना गवारा नहीं। यों भी जीवन एक पहेली है, एक रहस्य है, जिसकी गुत्थी सुलझती नहीं जान पड़ती। जीवन एक संघर्ष है, जीवन एक कहानी है, जीवन एक यात्रा है, जीवन एक पर्व है। यात्रा भी किसी पर्व से कम नहीं, तो क्यों न उस यात्रा में एक और यात्रा-पर्व मनाया जाए। जैसा कि मैंने अभी कहा कि अवसर की कोई किरण दीख जाए तो उसका लाभ उठा लेना चाहिए। उसी कड़ी में अपनी एक धार्मिक (मासिक) पत्रिका में एक आमंत्रण-संदेश प्राप्त हुआ कि सुवर्णपुर में नवनिर्मित प्राणनाथ मंदिर के प्राण-प्रतिष्ठा हेतु पाँच दिवसीय कार्यक्रम में आप सभी सुंदर साथ सपरिवार उपस्थित हों, श्री राजन स्वामीजी बाल ब्रह्मचारी, वेदोपनिषदों के प्रकांड पंडित, उस परब्रह्म के साधक भी वहाँ पहुँच रहे हैं।

उक्त समाचार आयोजन से दो माह पूर्व ही प्राप्त हो गया था, फलत: आरक्षण में भी कोई कठिनाई नहीं थी और सौभाग्य से पतिरूप में मुझे एक ऐसे विद्वान् संत व यात्रा-प्रेमी इनसान मिले हैं, जो हमेशा मेरा साथ देने को तत्पर रहते हैं। धन्यवाद उस विराट् का, उस असीम का, उस सच्चिदानंद परब्रह्म प्रभु का। मैं कृतार्थ हुई। निश्चित तिथि आठ अक्तूबर, ०९ को हमारी यह यात्रा प्रारंभ हुई और अनेक छोटे-बड़े स्टेशनों को पार करते हुए नौ की सायंकाल बिहार के अंतिम स्टेशन 'रक्सौल' पर संपन्न हुई, क्योंकि गाड़ी का यह अंतिम पड़ाव था।

इधर बिहार समाप्त, उधर नेपाल प्रारंभ। दोनों के बीच एक पुल जिसे रिक्शा व ताँगे से आसानी से पार कर लिया जाता है। ताँगे से पुल पार करते हुए हमारे मन के घोड़े भी कल्पना की उड़ान भर रहे थे। एक ओर सुवर्णपुर की जिज्ञासा, दूसरी ओर दूसरी बार दूसरे देश में जाने की उमंग भी। बीच में पुल व एक छोटी सी पुलिस चौकी। दोनों ओर बहता मंद-मादक समीर, कहीं कोई विभाजन नहीं, सभी को प्राण बाँटता चल रहा था। न कोई छोटे-बड़े का भेद, न काले-गोरे का, न स्त्री-पुरुष, न बाल-वृद्ध का और न ही भारतीय-नेपाली, का फिर भी हम इनसान कोई न कोई रेखा अपने ही स्वार्थ कारणों से खींच लेते हैं, यही सब सोचते हुए न जाने कब हम वीरगंज के बस-ठहराव पर पहुँच गए। ताँगा छोड़ा

सुपरिचित लेखिका। धार्मिक, सामाजिक एवं साक्षरता गतिविधियों में सहभागिता। भारत के कोने-कोने में भ्रमण। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख और कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

और ज्ञात किया कि सुवर्णपुर की कोई बस? उत्तर नकारात्मक था। कारण, रात्रि बस सेवा ग्रामों में नहीं होती। इसलिए रात्रि विश्राम वीरगंज के एक राजस्थानी रेस्तराँ में हुआ। यहीं भोजनादि से तृप्त हो शयन किया।

अगली प्रात: अर्थात् दस अक्तूबर को शीघ्र ही प्रात:कालीन नित्य-क्रियाओं की निवृत्ति के बाद बस-ठहराव पर पहुँच गए। वहाँ तो हमें सिक्किम व नेपाल के अन्य शहरों से आए अनेक साथी मिल गए। सभी को सुवर्णपुर के कार्यक्रम में जाना था। बस भी आ गई और ८० प्रतिशत बस हम सुंदर साथ से भर गई, सबके मन भी आनंद से भर गए। यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि प्राणनाथ अर्थात् प्राणों के नाथ, स्वामी, जो संपूर्ण संसार के चराचर का स्वामी है, जिसे सच्चिदानंद या पूर्ण ब्रह्म भी कहते हैं, इनके अनुयायी ही 'सुंदर साथ' के रूप में जाने जाते हैं। परस्पर 'प्रणाम' से संबोधन करते हैं, इसलिए प्रणामी भी कहलाते हैं। महात्मा गांधी भी प्रणामी थे, क्योंकि उन्होंने अपनी माताजी को बाल्यकाल से ही प्रणामी मंदिर में जाते देखा था। यों हम सभी उस अजर-अमर, अविनाशी, दिव्यशक्ति पर किसी-न-किसी रूप में विश्वास करते हैं।

हाँ तो मैं बात कर रही थी सुवर्णपुर जाने की, हम बस में बैठ गए और उसने चलना आरंभ किया। कहाँ शहर की कंक्रीट, कोलतार की सड़कें, काहाँ वह कच्चा मार्ग, वह भी दो दिन पूर्व ही अत्यधिक वर्षा हो जोने से घायल सा, इसलिए दो घंटे की इस यात्रा ने साढ़े चार घंटे का समय लिया। झूला झुलाती यह बस सबको परमानंद देती अपने साथ एक नहर को भी लिये चल रही थी या यों कहूँ कि उस नहर का साथ दे रही थी। 'नहर' के दूसरी ओर झूमती, इठलाती, लहलहाती फसलों से युक्त खेत, इस ओर बस। बस के दूसरी ओर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बसे रात्रि भोजन व विश्राम स्थल, इनमें आ शयन किया।

अगली प्रात: अर्थात् १४ अक्तूबर को जब प्रात:कालीन स्नान-

ध्यानोपरांत 'धनु का धाम' जाने के लिए नीचे उतरे तो धर्मशाला परिसर में ही आकर्षक सी दुकानें सजी दिखाई दीं, जिन पर वहाँ के विशेष छोटे-से-छोटे आकार से लेकर बड़े आकार के पर्स, बैग आदि थे, जो मखमली से कपड़े से तैयार किए जाने के कारण हलके भी थे, हमने भी दो-चार खरीद लिये।

बस-स्टैंड पहुँचकर बस में बैठ गए, कुछ यात्री पहले से विराजे थे, काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद भी चालक नहीं आया, ज्ञात हुआ कि पहले आधा घंटा बाद चलनी थी, लेकिन अब डेढ़ घंटे बाद जाएगी। इतना समय व्यर्थ करना समझदारी न थी, इसलिए बस से उतरकर कुछ और स्थानीय स्थल ही देखने का मन बना लिया, सो पहुँच गए बिहार कुंड। एक बड़ा सा जलाशय, जिसके एक तट पर स्थित राम-सीता की धातु निर्मित प्रतिमाओं से सुशोभित मंदिर था। प्रतिमाएँ श्वेत-धवल वस्त्रों में लिपटी अपनी अनुपम छटा बिखेर रही थीं, चारों ओर सात्त्विकता टपक रही थी। इस बिहार कुंड से ढाई कि.मी. दूर अंदर गाँव में सीताजी का वास्तविक विवाह-स्थल है, ऐसा ज्ञात हुआ, क्योंकि जो विवाह मंडप जानकी मंदिर के साथ है, वह तो निश्चित रूप से बाद में ही विकसित-निर्मित हुआ है। तो क्यों न उसे देखा जाए, ऐसी इच्छा प्रबल हो गई, जबकि दूसरी ओर भास्कर की भास्वरता से मौसम प्रतिकूल हो रहा था, लेकिन उत्साह, उत्सुकता, जिज्ञासा की प्रबलता के सामने सारी प्रतिकूलताएँ घुटने टेक देती हैं और हम दोनों एक ग्राम, एक स्टेडियम व एक निर्मित हो रहे अस्पताल के भवन को निहारते हुए अपने गंतव्य तक पहुँच गए।

सड़क से एक ओर हटकर एक बड़ा सा जलाशय, जिसके जल का उपयोग ग्रामवासी बरतन व वस्त्र धोने में कर रहे थे। जलाश्य से आगे दाईं ओर माता सीता का छोटा सा मंदिर, जिसमें महिला पुजारिन थी, उसने बड़े श्रद्धाभाव से हमें प्रसाद दिया और वह चबूरतेनुमा टीला दिखाया, जिसपर सीताजी के विवाह का हवन हुआ था। राजर्षि जनक की जनकपुरी निश्चित रूप से उस समय वहाँ तक फैली होगी, किंतु आज तो रख-रखाव की दृष्टि से यह ग्राम दरिद्रता के आवरण से आच्छादित ही कहा जा सकता है। शहर में अपने संपूर्ण वैभव के साथ नवनिर्मित मंदिर व विवाह-मंडप का वापसी में मध्याह्न भोजन कर अपने विश्राम स्थल आकर दो घंटे पूर्ण विश्राम किया। बैटरी चार्ज होते ही जानकी-मंदिर व जानकी विवाह-मंडप के दर्शनार्थ चल पड़े। दोनों एक ही विशाल परिसर में स्थित हैं। हाँ, पहले मंदिर फिर विवाह-मंडप। मंदिर में सीता व राम के तीन युगल-स्वरूप विराजमान हैं, तीनों ही सुंदर व भव्य लेकिन भिन्नता लिये हुए है। लगता ही नहीं कि ये पाषाण-प्रतिमाएँ हैं, बल्कि प्राणसंपन्न जीती-जागती हँसी-मुसकराती, दर्शन देती दिखती हैं। विवाह-मंडप में प्रवेश, प्रवेश शुल्कोपरांत हुआ। यहाँ चारों ओर स्तंभों पर तीन-तीन प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। चारों ओर उपवन-वाटिका विकसित की गई हैं, जिसको यत्नपूर्वक सजाया-सँवारा गया है। सबकुछ नव-निर्मित जीवन, थोड़ा आगे राम-मंदिर उससे और आगे दूल्हा-दुलहन मंदिर है।

मार्ग में आया रामानंद चौक, एक न्यारी निराली छवि से संपन्न है। चौक के चारों कोने दो उल्टे रखे धनुषाकार स्तंभों से इस प्रकार जोड़े गए थे कि उनके संधि-बिंदु के उस ऊँचाई पर एक सुंदर सी प्रतिमा से युक्त मंदिर है। स्थापत्य कला का ऐसा अद्‌भुत उदाहरण देख आँखें चकित हो गईं। रामानंद मंदिर के भी दर्शन हुए। यों कहिए, जनकपुर धाम में विचरण करते हम स्वयं सीता-राममय हो गए। वहाँ सब ओर एक ही खुशबू, एक ही पुकार, एक ही दर्शन सीता-राम था।

दुल्हा-दुलहिन मंदिर में प्रवेश करते ही बाईं ओर सीता-राम का युगल स्वरूप प्रतिष्ठित है, सामने दस सीढ़ियाँ चढ़कर किसी संत की प्रतिमा कुछ अन्य प्रतिमाओं के साथ बनी है। वापसी में राजर्षि जनकजी का मंदिर, सामने ही 'धनु-सागर', जो एक छोटी झील सा प्रतीत हो रहा था, कहते हैं कि श्रीराम द्वारा 'धनुष' की प्रत्यंचा चढ़ाते समय धनुष का एक टुकड़ा उसमें गिर गया था, इसलिए उसका नाम 'धनु-सागर' है, जो एक छोटी झील सा प्रतीत हो रहा था। जानकी-मंदिर के आस-पास की अधिकांश दुकानें चूड़ी, माला, बिंदी-सिंदूर जैसी सौभाग्यसूचक वस्तुओं से युक्त थीं। विभिन्न भोजन सामग्री से संपन्न छोटे-बड़े ढाबे, भोजनालय भी थे। हमने भी रिक्शा से सीतामढ़ी स्थित 'पिनौरा' देखने चल पड़े। यह वह स्थल था, जहाँ हल चलाते हुए जनकजी ने पुत्री रत्न को प्राप्त किया था। अब वह स्थल एक जलाशय में परिवर्तित हो चुका है, साथ में एक मंदिर भी है। थोड़ी ही दूरी पर सीताजी का सुंदर मंदिर देखकर अपने विश्राम-स्थल सुविधा होटल वापस आ गए, रिक्शा और रिक्शावाले को अलविदा कहा। हमारा यह विश्राम-स्थल मुख्य बाजार में ही था। अन्य सामान्य बाजारों की भाँति ही यह भी रात्रि में विद्युत्-प्रकाश से प्रकाशमान विभिन्न आवश्यक वस्तुओं के विक्रय-केंद्रों से संपन्न, मार्ग के दोनों ओर जहाँ-तहाँ फल-सब्जी आदि की रेहड़ियाँ भी लगी थीं, इसलिए क्यों न थोड़ी चहलकदमी कर ली जाए, सो चल पड़े और घूमते-फिरते एक अच्छा सा शुद्ध-शाकाहारी भोजनालय देखकर रात्रि भोजन किया और वापस विश्राम स्थल पहुँचकर विश्राम किया।

अगली प्रातः शीघ्र ही जनकपुर पहुँचने के विचार से कक्ष से निकल पड़े 'भिट्ठा मोड़' की बस लेने, क्योंकि वहीं से जनकपुर जाया

जाएगा। कुछ छोटे-छोटे ग्रामों को पार करते हुए प्रात: ८.३० पर 'भिट्ठा मोड़' पहुँच गए। एक ग्राम था 'सुरसंड' तथा दूसरा था जवाहरनगर, जो संभवता 'नेहरूजी' के नाम पर होगा, क्योंकि यहाँ एक केंद्रीय विद्यालय भी था, पर मार्ग दयनीय व असहाय सा ही दिखा, जैसे अपने पुनरुद्धार के लिए याचना कर रहा हो। ग्राम थे तो खेत भी थे।

'भिट्ठा मोड़' बिहार प्रदेश का सीमांत कस्बा, जहाँ से नेपाल की सीमा में वैसे ही प्रवेश हुआ जैसे रक्सौल से हुआ था, बस यहाँ कोई सेतु न था, रिक्शावाले ने नेपाल के जनकपुर जाने के बस-स्थल तक पहुँचा दिया। मध्याह्न के ग्यारह बजते-बजते हम 'जनक-धाम' पहुँच गए। उतरे तो समीप ही था जानकी मंदिर। इसलिए पहले जानकी मांदिर ही गए, क्योंकि यहाँ यात्री-निवास भी है, लेकिन सभी कक्ष भरे होने से हमें कलकत्तावासी गोपाल-धर्मशाला में प्रथम तल पर कक्ष उपलब्ध हो गया। सामान रख, कक्ष को बंद कर हम निकल पड़े और पहुँच गए नेपाल के एक मात्र स्टेशन, जहाँ से प्रतिदिन लौहपथगामिनी २९ कि.मी. दूरी पार कर बिहार के जयनगर आती-जाती है।

क्यारियाँ देख मन गद्‌गद हो गया। सारी थकान दूर हो गई। तुलसी, अदरक, कालीमिर्च की काली चाय से स्वागत हुआ। हमने पहली बार काली चाय पी, पर वह बड़ी उपयोगी रही। संयोग से गोरखपुर के एक सुंदर साथ रेलवे अधिकारी छांग प्रसादजी भी तभी वहाँ पहुँचे थे। दो महिला सुंदर साथ, जिनको शारदा बहन ने पुत्रीवत् स्नेह से पाला-पोसा था, आश्रम में थीं। सबके बीच थोड़ी देर धार्मिक चर्चा, सत्संग हुआ, उन्हीं के स्नेहपूर्ण आग्रह से रात्रि-विश्राम भी वहीं हुआ।

पर्वतीय क्षेत्रों की तर्ज पर सीढ़ीनुमा क्यारियों में गेहूँ की उपज भी की गई थी। तत्काल तोड़कर ताजी बनी सब्जी व चूल्हे पर बने गरमागरम भोजन से हम सबका स्वागत हुआ। सौर ऊर्जा से कक्ष प्रकाशित थे। मार्ग में की गई शाकाहार की अनुपलब्धता की कल्पना धूमिल हो गई। रात्रि-विश्राम मचान टाइप के कक्ष में हुआ, सबकुछ नया, अद्‌भुत जीवन जीने का एक अनुभव। आश्रम में दो गऊमाताजी, जिनका दाना-चारा वहीं उपलब्ध हो जाता है, साथ ही उसका सदुपयोग भी। फिर भी जीवन वहाँ कठिन व दुर्गम रास्तों को पार करता हुआ चलता है।

अगली प्रात: छांग प्रसादजी के साथ ही छुटकन को पुन: पार किया। रातभर में छुटकन के प्रवाह की तेजी मंद पड़ गई थी। हम ठौरी स्टेशन पहुँच गए, जहाँ से सीतामढ़ी का टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी छोटे-छोटे कई स्टेशनों को पार करती गौना हा होते हुए नरकटियागंज पहुँच गई। यहाँ गाड़ी बदलनी पड़ी, बदली हुई गाड़ी रक्सौल होते हुए सीतामढ़ी पहुँची। सीतामढ़ी तक आने में जंगल खूब आए, जो स्टेशन आए, वह भी ऐसा लगता था कि थोड़ा सा जंगल साफ करके बना दिया गया है। इसलिए सारे रास्ते में प्राय: जो स्थानीय यात्री उतरे-चढ़े, सभी लकड़ियों के गट्‌ठर के साथ। मजे की बात यह थी कि उन गट्‌ठरों को डिब्बों के बाहर लटकाया गया था, जिससे अंदर यात्रियों को बैठने में असुविधा न हो। वह दृश्य भी अद्‌भुत था। संभवत: उन लोगों के लिए यह रेलवे की विशेष सुविधा-व्यवस्था है, अच्छा लगा। संभवत: यही यहाँ के लोगों का व्यवसाय भी है।

सायं चार बजे के लगभग सीतामढ़ी पहुँच गए। जनकपुर जाने की जल्दी थी, इसलिए उसी दिन वहाँ जाने की सोच रहे थे, लेकिन समय की ओर से अनुमति नहीं थी। हमने आनन-फानन में अपना विचार बदला, क्यों न सीताजी की सीतामढ़ी को पहले देखा जाए, बस सुविधा-विश्राम नामक होटल के पास रुकी एक कक्ष में सामान रख हम 'भिखना ठौरी' की शारदा बहन से उनके आश्रम दर्शन की अनुमति ले चल पड़े, क्योंकि वे स्वयं अपने कुछ साथियों के साथ कार्यक्रम में आई हुई थीं। बाहर आए, बस ठहराव तक पहुँचे। बस आ गई, हम सब बस में बैठ गए, वह रामनगर तक गई, मार्ग के ठीक न होने के कारण इससे आगे बढ़ने से चालक ने मना कर दिया, सभी सवारी वहीं उतरी, कुछ आस-पास के गाँव के थे, चले गए। हमारी मंजिल अभी पाँच कि.मी. दूर, जिसे पार करने के लिए ग्यारह नंबरी साइकिल के अतिरिक्त कोई साधन न था, सो चल पड़े। वर्षा व बादलों के कारण मार्गों की दशा दयनीय थी, पर पैदल गामियों के लिए अनुकूल मार्ग में आते-जाते कुछ ग्रामवासी, स्कूली बच्चे, दो-चार पुलिया आदि ने थकान न होने दी। अब हम बिहार के अंतिम छोर पर पहुँच चुके थे। यहीं ठौरी स्टेशन भी है, लेकिन आश्रम दूसरी ओर। दोनों के मध्य बहती है छुटकन नदी, यही दोनों की सीमा रेखा है।

किंतु आज अपने नाम के विपरीत लगभग एक फर्लांग विस्तृत (चौड़ा) आकार ग्रहण कर तीव्रगति से प्रवहमान थी। आश्रम में भी हमें चंद घंटे ही ठहरना था, क्योंकि पुन: छुटकन को पार कर स्टेशन आना था। क्या किया जाए? लक्ष्य के इतने समीप आकर भी आश्रम के दर्शन किए बिना जाना भी मुझे स्वीकार न था। छुटकन का प्रवाह इतना तीव्र था कि सावधानी हटी, दुर्घटना घटी वाली उक्ति कभी भी चरितार्थ हो सकती थी। हम अपलक नेत्रों से उसे निहारे जा रहे थे, ऐसा लग रहा था जैसे कोई छोटे बच्चों की तरह नटखट अटखेलियाँ करती, आनंद के झोंकों से झंकृत अपनी ही धुन में अपने किसी प्रियजन से मिलने की आस में बेतहाशा भागी जा रही है। हमने भी ज्यादा समय गँवाना उचित नहीं समझा और उसकी शरारतों में सम्मिलित होने को कदम बढ़ा दिए। अब हम दोनों को दो स्थानीय लोग सावधान करते आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे थे, लगभग उन दोनों का अनुसरण करते हुए हमने विजय पा ही ली। किनारा आ गया, आगे बढ़े

तो छोटा सा बाजार मछली की गंध से गंधित लगा, जैसे शाकाहार तो यहाँ दुर्लभ ही होगा। आश्रम थोड़ा चढ़ाई पर, फिर भी एक फर्लांग की दूरी रही होगी, जिसे कठिनाई से पार किया जा सका। लगा कि सीमांत पर बसे लोग शाकाहार की अनुपलब्धता के कारण ही जीव-भक्षण से अपनी उदरपूर्ति करते हैं।

आश्रम में प्रवेश करते ही चारों ओर हरियाली, सब्जियों के छोटे-छोटे ग्राम, जो अपने छोटे-छोटे विक्रय-केंद्रों से ग्रामों के अस्तित्व का बोध करा रहे थे। एक था जानकी टोला ग्राम, जो जनक सुता सीता की याद दिला रहा था। यहीं से बस ने नहर का साथ छोड़ दिया और चल दी गाँव के बीच से। अब तो थोड़ी देर बाद ही पहुँच गए सुवर्णपुर चौक, यहीं बस पहली बार रुकी, हम लोगों को उतारा और आगे अपनी मंजिल की ओर बढ़ गई।

हम सबने भी अपना-अपना बैग सँभाल अपने निर्दिष्ट गंतव्य की ओर कदम बढ़ाए। मंदिर से लगभग एक किलोमीटर पहले ही गाँव के सरपंच या मुखिया के विशाल घर में पहुँचकर कुछ विश्राम, आवश्यक कार्यों की निवृत्ति व जलपान के बाद मंदिर की ओर प्रस्थान किया। स्वामीजी व उनके साथ उत्तर भारत के अन्य सुंदर साथ, जो पहले ही वहाँ पहुँचे हुए थे, दर्शन, प्रणाम, आशीर्वाद आदि के बाद निजमंदिर में भी गद्दे बिछे थे, सो हमने वहीं अपना सामान टिकाया और स्वयं भी थोड़ा विश्राम किया। रात्रि-भोज हुआ, तत्पश्चात् स्वामीजी की चर्चा सत्संग का लाभ लिया। अगली प्रात: भी जलपानोपरांत चर्चा हुई और अब हम दोनों वहाँ से खिसकने की तैयारी में जुट गए।

यद्यपि अभी तीन दिन का कार्यक्रम शेष था, उसके आनंद से वंचित होने का भी मन नहीं था, दूसरी ओर हमारी यायावरी वृत्ति अन्य स्थलों के दर्शन के लिए विवश कर रही थी। समय की सीमा में बँधा तन-मन भी रुकने में असमर्थ हो रहा था। फलत: हम चल पड़े। जैसे ही हमें आश्रम के द्वार से निकलते देखा, अनेक सुदर साथ विशेषत: स्थानीय रुकने का तथा दूसरे स्थलों के दर्शन का भी आग्रह करने लगे। पर हमने मिखना ठौरी आश्रम देखने की अपनी इच्छा व्यक्ति की और उनके आत्मीय आग्रह को ठुकराने के लिए क्षमा-प्रार्थना की।

सुवर्णपुर वीरगंज से ६० कि.मी. दूर नितांत एकांत सा मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित, न जल के साधन, न विद्युत् के तार और न ही आवागमन के आधुनिक मार्ग व साधन, किंतु ग्रामवासी जिस निष्ठा व श्रद्धा से अपनी सेवा दे रहे थे, वह प्रशंसनीय ही नहीं वंदनीय भी था। अपने कर्तव्य के प्रति सजग उषाकाल में न जाने कहाँ से जल ला-लाकर बड़े-बड़े ड्रमों को भर दिया गया था। पेयजल की भी पूर्ण व्यवस्था, विद्युत् व माइक आदि की संपूर्ण व्यवस्था देखते ही बनती थी। भोजन की तैयारी पूर्ण मनोयोग से हो रही थी। सुंदर साथ की हर सुख-सुविधा का ध्यान रखते ये ग्रामवासी भारतीय संस्कृति के आतिथ्य सत्कार का जीवंत रूप प्रस्तुत कर रहे थे, जो हमारी चेतना में कहीं गहरे पैठ गया। उनकी इस सेवा-भावना से भव्य-भवन जो खड़ा हो गया है, जिसकी चर्चा मैं पहले ही कर चुकी हूँ।

पर उस दरिद्रता में सहजता, सरलता व सादगी से संपन्न आस्था की पराकाष्ठा निहित है। जलाशय से आगे आपको नंगे पाँव ही मंदिर व उसके आसपास जाना पड़ेगा। कहते हैं कि वहाँ की महारानी भी जब माता सीता के मंदिर आती हैं तो जलाशय में चरण पखारकर नंगे पाँव ही आती हैं। बिहार में छठ पूजा महोत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं। इसी संदर्भ में मार्ग में कई स्थलों पर काष्ठ व फूस आदि के घोड़े बनाए जा रहे थे। सूर्य भगवान् को अर्घ्य प्रदान करनेवालों व दर्शकों के लिए बाँस व रस्सी के प्रयोग से विशेष दर्शक दीर्घाएँ निर्मित की जा रही थीं।

वापसी में हम रत्न सागर पर आए। सागर है तो विस्तृत जलाशय तो होगा ही। इस जलाशय का नाम रत्न सागर होने का कारण था इसमें राजर्षि जनक का रत्न भंडार। वहाँ उपस्थित पुजारी-पंडित से थोड़ी बातचीत की। एक-दो कैमरे के बटन दबाए और अब समय की माँग थी विश्राम स्थल की ओर जाने की, क्योंकि आज रात्रि किसी भी समय तक वीरगंज जो पहुँचना था। इसलिए शीघ्रता से भोजन ग्रहण कर, सामान ले वीरगंज की ओर जानेवाली बस में बैठ गए। सारा जनकपुर धाम जनक नंदिनी सीता व राम के रंग में रँगा था, कहीं भी सीताजी की अन्य भगिनियों के होने तक का अहसास उसी में समाहित होकर रह गया था।

'वीरगंज' तक आते-आते बस ने धूल की इतनी परतें जमा दीं कि जनकपुर धाम की पर्त कभी नीचे खो जाती, किंतु हमारी चित्तवृत्ति में तो वही समाई हुई थी, फलत: दूसरी परतें थोड़े से जल से ही बह गईं। रात्रि विश्राम-शयन हमने रक्सौल जंक्शन के समीप के होटल में किया, क्योंकि अगली प्रात: ९ बजे वहीं से गाड़ी ने देहली के लिए प्रस्थान करना था। समय से घर पहुँचकर बच्चों के साथ, सुवर्णपुर व जनकपुर की यादों को समेटे, दीपों के पर्व दीपावली मनाने में व्यस्त हो गए। वह भी सीता-राम से ही जुड़ा है।

२८-बी, प्रेमनगर,
भादसो रोड, पटियाला-१४७००१
दूरभाष : ०९४१७०८८४६६

महाराष्ट्र का नवसंवत्-उत्सव : गुड़ी पड़वा

● मालती शर्मा

भारतभर में गुड़ी पड़वा विक्रम संवत् का प्रारंभ दिवस है। धर्म-कर्म सभी का शुभारंभ दिवस। इस पावन पर्व पर महाराष्ट्र में ऐसा कहते हैं कि यह ब्रह्मा की सृष्टि-रचना का समापन दिवस है। जगत्-निर्माता ब्रह्मा ने चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही यह सारा संसार बनाकर खड़ा किया। इसी दिन से उन्होंने अनंत कालचक्र की गणना की शुरुआत भी की। यहाँ यह ब्रह्मा के दिन-रात, तिथि, वार, वर्ष, षड्ऋतु संवत्सर, कल्प, युग मन्वंतर सभी की अवधि की गणना पत्रा-पंचांग शुरू होने का दिन भी माना जाता है। अग्नि का जन्मदिन भी कहा जाता है।

गुड़ी पड़वा के दिन घर के द्वारों पर गुड़ी उभारना महाराष्ट्र के नव संवत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के उत्सव की अपनी विशेषता है। चैत शुक्ल प्रतिपदा से विक्रम संवत् और शालिवाहन शक संवत् दोनों शुरू होते हैं। पूरे भारत में इस दिन होनेवाले पर्व-उत्सवों की भरमार है, पर महाराष्ट्र में प्रतिपदा और गुड़ी का संबंध लंका विजय के बाद राम के अयोध्या लौटने पर हुए स्वागत-समारोह से जुड़ता है। राम के वनवास काल में सारी अयोध्या पर जैसे उदासी की छाया पसरी थी। १४ वर्ष बाद जब विजयी राम घर लौटे तो अयोध्यावासियों का उत्साह-उमंग उमड़ पड़ी। लंका-विजयी राम के स्वागत में अयोध्यावासियों ने गली-चौराहों पर केशर, चंदन, रोली, हल्दी, गुलाल का छिड़काव किया। राम की लंका-विजय की विजय-पताकाएँ घर-घर पर फहराई गईं। और वह दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का था।

आज भी जन-जन के राजा राम हैं और गुड़ी पड़वा की गुड़ी रामराज्य की कीर्ति-ध्वजा है, जिसे नूतन संवत्सर के दिन राम की लंका विजय की स्मृति में जनलोक फहराकर आज भी रामराज्य की ध्वजा ऊँची करता है। पुणे के जनकवि ग.दि. माडगूलकर ने इस विश्वास और जनभावना को वाणी दी है—

'विजय पताका श्रीरामाची
झड़कती अंबरी
गुंड्या तोरणे धरोधरी
प्रभु आले मंदीरी।'

यहाँ ऐसी भी अनुश्रुति है कि इस दिन शिवाजी ने कोंडना का किला जीता था, उस उपलक्ष्य में भी यश-ध्वजा लहरी, विजयोत्सव मना।

सुप्रसिद्ध वरिष्ठ लेखिका। कविता, लोकवार्ता, लोक-संस्कृति, समीक्षा, बाल साहित्य तथा अद्यतन सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर विगत अड़तालीस वर्षों से अनवरत लेखन। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लगभग नौ सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित, विविध संग्रहों तथा शोध ग्रंथों में शामिल। छोटे-बड़े कई दर्जन पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत। संप्रति लेखन में रत।

पर मेरे विचारों में गुड़ी पड़वा की 'गुड़ी' राम के लंका विजय की कीर्ति-ध्वजा के अतिरिक्त बहुत कुछ है। इस गुड़ी में गुड़ी पड़वा के पर्व से जुड़े अर्थ और अभिप्राय भी अभिव्यंजित हैं।

मेरी समझ से गुड़ी में सृष्टि-रचना की स्मृति, सृष्टि के सर्जनहार ब्रह्मा, उनकी शक्ति और काल गणना का आधार संवत्सर की पूजा है। गुड़ी पड़वा को गुड़ी खड़ी करने के विषय में कोल्हापुर की गंगूबाई नानावरे ने गुड़ी उभारने के दो और संदर्भ बता गुड़ी में लगाई जाती वस्तुओं के प्रतीकार्थ भी बताए। उन्होंने कहा कि यह तिथि ब्रह्माजी का पहला दिन है और सृष्टि की जन्मतिथि भी। प्रतिपदा को ब्रह्माजी ने ब्राह्म मुहूर्त में शुरू करके सूर्योदय तक सृष्टि रचना कर फैलाई थी। इसके आगे गंगूबाई ने कहा कि इसी दिन महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ था और पांडवों में सबसे बड़ा पांडव जुडीधर (युधिष्ठिर) गादी (सिंहासन) पर बैठा था। तो धर्मराज आहे (वह धर्मराज है); महाभारत युद्ध में धर्म और सत्य की जीत हुई, इसलिए उस दिन जनता ने अपने-अपने घरों पर विजय-पताकाएँ फहराईं। पांडव सच्चे मानुष थे, धर्म के लिए लड़े थे। तो यह गुड़ी धर्म-ध्वजा है। यह गुड़ी पाँच पांडव ही हैं, जिन्हें प्रजा अपने-अपने द्वारों पर स्थापित करके पूजा करती है। गुड़ी पड़वा न्याय और सत्य के पक्षधर धर्मराज युधिष्ठिर के राज्याभिषेक का दिन है, इसलिए प्रजा वर्ष प्रतिपदा के दिन धर्म-ध्वजा उभारती है।

दापोली कोंकण की सरिताबाई ठकार ने बताया, ''अरे! गुड़ी का डंडा जो है, वह सबसे बड़ा पांडव जुडीधर है।''

डंडे के ऊपर पीतल-ताँबे का बना जो कलश रखा जाता है, वह अर्जुन है। गुड़ी को लगाए जाते साड़ी खण (चोली) कपड़े भीम है, नीम की डाल सहदेव है और गाठी (शक्कर के बने पदकों की माला)

नकुल है। उन्होंने यह भी कहा कि गुड़ी लोकजीवन में ब्रह्मा माने जाते कुम्हार के चाक चलाने का डंडा है। परजापति कहा जाता है—कुम्हार। भारतीय लोकजीवन, लोकविश्वासों में, कथा कहानियों में, सृष्टि सर्जक ब्रह्मा कुम्हार रूप है, चाक कालचक्र और चाक को घुमाने का डंडा सर्जन-शक्ति, उसी से चाक घूमता है तथा माटी विभिन्न रूपाकार लेती है—छोटे से दीपक से घड़े तक। इस लोकविश्वास के संदर्भ में मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि महाराष्ट्र की गुड़ी सृष्टि सर्जक ब्रह्मा, उनकी शक्ति और कालचक्र का सम्मिलित प्रतीक लोकदेवता है। यह तथ्य रूप अवधारणा गुड़ी पड़वा के यहाँ के लोक प्रचलित पूजा के विधि-विधान और पर्व मनाने की संरचना गुड़ी उभारने में प्रयोग की जाती वस्तुओं से स्वत: ही अभिव्यक्ति होती है।

यहाँ एक दृष्टि में महाराष्ट्र का नवसंवत्
उभारना उसके विधि-विधान देख लिए जाएँ।

यहाँ नववर्ष की प्रतिपदा के दिन तड़
उठना होता है। प्राचीन समय में तो छोटे-छ
गाँवों में बाजा बजानेवाले सुबह तड़के घर
चबूतरों पर ५-७ मिनट शहनाई बजाकर प्रतिप
के दिन जगाते थे और दोपहर को ये त्योहा
लेने आते थे। आजकल स्वयं ही उठना पड़
है। वैसे अभी भी कहीं-कहीं यह प्रथा बची है
इसके बाद घर-द्वार की विशेष सफाई, दरवाज
पर आम के पत्तों-फूलों के धनी-मानी लोगों के
घर में विशेष बंदनवार, जिसे यहाँ तोरण कहते
हैं, लगाए जाते हैं। उसके बाद घरभर का अभ्यंग
स्नान, मराठवाड़ा में पलाश के पत्तों पर बैठव
नहाते हैं। आजकल तो गुड़ी खड़ी करने को
कपड़े सुखाने में काम आता डंडा किसी भी
का हो, चलता है, पर प्राचीनकाल में गुड़ी के लि
बाँस और नया कलश लाते थे। कोंकण में तो अभी भी गुड़ी के
लिए येलू (बाँस का एक प्रकार का डंडा) लेते हैं। मराठवाड़ा में शेवगा (सहिजन) का लंबा डंडा लेते हैं।

डंडा किसी भी वृक्ष का हो, पहले उसे तेल लगाकर गरम पानी से नहलाया जाता है। फिर उस पर हल्दी, रोली से रेखाएँ बनाते हैं। गुड़ी के सिरे पर चाँदी, ताँबे, पीतल का, अब किसी भी धातु (लोहे को छोड़) का बना लोटा, गिलास पंचपात्र उल्टा रखते हैं।

फिर उसे जरी की पल्लू बार्डरवाली साड़ी चुनकर खठा की चोली नीम की डाल फूलमाला और गाठी (शक्कर के १२ पदकों का बना हार) को गुड़ी की डोरी से बाँधते हैं। गुड़ी को कपास से बनी गजमाल या गजवस्त्र, जो कपास की लंबी बत्ती बना, अँगूठे और तर्जनी में हल्दी रोली लगा ६ या १२ आँकड़े बनाकर बनती है, वह भी पहनाते हैं, यों गुड़ी का शृंगार पूरा होता है। महाराष्ट्र में गुड़ी पड़वा को घर के छोटे और नए जनमे बच्चे को गाठी (शक्कर के पदकों से बना हार) अवश्य पहनाया जाता है। यह पाँच वर्ष पहनाना जरूरी है। मेरी पड़ोसन अंजली को तो उसकी दादी अभी तक गाठी पहनाती है। गुडी पड़वा के हर्षोल्लास के वातावरण में बच्चे गाठी के शक्कर के पदक खाते, घूमते, खेलते हैं और प्रसन्न होते हैं।

द्वार पर या बालकनी में गुड़ी उभाने की जगह गृह स्वामिनी रँगोली बनाती हैं। घर का वयोवृद्ध गृहस्वामी गुड़ी उभारता और पूजा करता है। गुड़ी की पूजा धूप, दीप, हल्दी, रोली, अक्षत द्वारा पंचोपचार पूजा होती है, पर गुड़ी की पूजा में संपूर्ण महाराष्ट्र में तेल का दीपक हमेशा दो बत्तियोंवाला जलाया जाता है। सामान्यत: पूरे महाराष्ट्र में गुड़ी को पूरनपोली का नैवेद्य दिखाया जाता है, विशेषकर के मराठवाड़ा में। शेष महाराष्ट्र में श्रीखंड-पूरी, बूँदी-पूरी का प्रचलन बढ़ चला है। इस अवसर पर कोई भी मीठा व्यंजन बनाते हैं।

दोपहर को भोजनोपरांत उपाध्याय, जयोतिषी से पंचांग बँचवाकर भविष्यफल सुना जाता है। यद्यपि भोजन के बाद ही सुनें, ऐसा कोई नियम नहीं है। पर पंचांग सुनना आंशिक और पूर्ण, दोनों तरह का होता है। उसे सुनने के क्रमानुसार सुनने के फलादेश भी बताए गए हैं। तिथि योग सुनने से लक्ष्मी बढ़ती है। वार योग सुनने से आयु बढ़ती है। नक्षत्र योग सुनने से रोगों का, ग्रह योग सुनने से पापों का नाश होता है। पंचांग योगों के फल वर्ष भविष्य आदि सुनने के बाद उपाध्याय की पूजा करके दक्षिणा देते हैं। इस तरह पंचांग-पूजा, भविष्यफल सुनना, शुभ मुहूर्त गुड़ी पड़वा को नए-नए कार्यों का शुभारंभ खरीद-फरोख्त, मिलना-जुलना पूरे दिन आनंदमय वातावरण रहता है।

शाम सूर्यास्त के बाद हल्दी, कुंकुम, अक्षत् डाल गुड़ी उतार ली जाती है। अक्षत डालते हुए गृहस्वामी कहता है, 'पुनरागमना चे' फिर से आने को जाओ, फिर से आओ। यही महाराष्ट्र का विदाई वाक्य भी है। बर, ये तो, अच्छा आता हूँ। यहाँ विदा के वक्त जाता हूँ या चलता हूँ नहीं कहते तो फिर सिर पर मुकुट मसाहिरण्यमय पात्र लिये, जरी बॉर्डर की साड़ी, चोली पहने, प्रकृति पुरुष, टाइम और स्पेस दोनों तत्त्वों की दीपक की दो बत्तियों में ज्योति लिये ब्रह्मा की सर्जन शक्ति और गाठी गजमाल के रूप में वर्षचक्र की षड्ऋतु और १२ महीने धरे संवत्सर देवता से, गुड़ी देवी से लोक फिर से आने का, फिर-फिर आने का आग्रह ही तो कर सकता है और यही वह संवत्सर के दिन करता भी है।

फ्लैट नं. ८, मधु अपार्टमेंट
१०३४/१ मॉडल कॉलोनी, कैनाल रोड
पुणे-४११०१६ (महा.)
दूरभाष : ०२०-२५६६३३१६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक आद्योपांत पढ़ने के बाद लगा कि प्रयुक्त सामग्री वास्तव में साहित्यामृत ही है। साहित्य की विविध विधाओं में जो सामग्री परोसी गई है, वह सामयिक होने के साथ ही हमारी सांस्कृतिक विरासत के दर्शन भी कराती है। कहानियों में रहिला रईस की 'आखिर वो मर्द है' का अंत जिस बर्बरता के साथ हुआ है, वह अत्यधिक कुत्सित और मर्मांतक है। राजा और रंक के मिलन का त्योहार होली से संबद्ध आलेख विशेष रूप से पठनीय हैं। बाबू गुलाबराय और निरालाजी के पत्रों से तब के साहित्यकारों के सौहार्दपूर्ण संबंधों का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही ये उनकी प्रतिभा भी उजागर करते हैं। श्री देवकीनंदन शुक्ल की 'प्रेम की जीत' का कथानक वास्तव में कहानी के शीर्षक की सार्थकता को सिद्ध करता है और दयानंद बाबू जैसे कर्तव्यपरायण पात्रों को प्रस्तुत कर मानवीय संवेदनाओं की अनिवार्यता का प्रतिपादन करता है। 'विमला' कहानी में श्री विष्णुभट्ट महिला उत्पीड़न का ज्वलंत दृश्य प्रस्तुत करते हुए सामाजिक चेतना की सीख देते हैं। अपने व्यंग्य-लेख में श्री गोपाल चतुर्वेदी ने अपनी विशिष्ट शैली में जनसेवकों की कार्यशैली का अनूठा चित्र प्रस्तुत किया है।

—शंकर लाल महेश्वरी, भीलवाड़ा (राज.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक वसंत ऋतु अर्थात् फाग को समर्पित लगा। संपादकीय प्रेरक एवं शिक्षाप्रद लगा। 'काहे फिरत बौरानी हो रामा', 'फागुन आ गया', 'नंदकुँवर खेलत राधा संग होरी', 'ब्रज बीथिन मच रही होरी', 'हाथ लिये पिचकारियाँ', 'रंग-रंग हैं मस्तियाँ', 'लला, फिर आइयो खेलन होरी', 'अवध में फागुन आयो रेऽऽऽ' आदि आलेख एवं रचनाएँ आह्लाद को प्रगट कर रही हैं।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पढ़ा। 'तुम हर बगिया को दो बहार' रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' की कविताएँ पढ़ीं, जो दिल को छू गईं, इन कविताओं की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। मार्च अंक का संपादकीय भी बहुत पसंद आया। कहानी 'देहदान', 'प्रेम की जीत' और लघुकथा 'कड़वा सच' बहुत अच्छी लगी।

—रामप्रकाश राय, गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक प्राप्त हुआ। पढ़कर मन होली के रंगों की तरह प्रफुल्लित हो गया, पहले अंक में भी काफी रोचक कहानियाँ, बाल कथाएँ आदि पढ़कर हमें जीवन के प्रति प्रेरणा मिली। मार्च के अंक में 'लला फिर आइयो खेलन होरी' प्रेमपाल शर्मा द्वारा रचित यात्रा-संस्मरण अति सराहनीय व मन को छू लेनेवाला है। इस संस्मरण में व्यक्ति को न केवल यात्रा, बल्कि जीवन से संबंधित अन्य बातों पर भी प्रकाश डाला है। इस अंक की कई कहानियाँ ऐसी हैं, जिन्हें पढ़कर मैं भावुक हो गई। होली पर कई अच्छे आलेख मन को भा गए।

—गार्गी उपासने, अजमेर (राज.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक प्राप्त हुआ। मुखपृष्ठ पर लगा राधा-कृष्ण का चित्र बहुत अच्छा लगा। अंक की सभी रचनाएँ बहुत ही शानदार और शिक्षाप्रद लगीं। कम शब्दों में अपना भाव स्पष्ट करना बहुत ही कठिन है, परंतु 'साहित्य अमृत' पत्रिका में सभी लेखकों ने इतनी सरल और सहज भाषा का इस्तेमाल करके अपने भाव अभिव्यक्त किए हैं कि कोई भी व्यक्ति उस रचना के मर्म को जान सकता है। कहानी में मनोहर पुरी की 'देहदान', 'प्रेम की जीत' व 'आखिर वो मर्द है' अच्छी लगीं। होली पर केंद्रित सभी रचनाएँ अपने आप में रंगों से भरपूर और आनंदित करनेवाली लगीं। प्रेमपाल शर्माजी का यात्रा-संस्मरण 'लला, फिर आइयो खेलन होरी' बहुत मनोरंजक और ज्ञानवर्धक लगा। दिनकर जोशी का लेख 'अगला जन्म' पढ़कर मन भावविभोर हो गया। कविताओं में रामगोपल शर्मा 'दिनेश' की 'तुम हर बगिया', संजय पंकज की 'फागुन आ गया', अशोक 'अंजुम' की 'रंग-रंग हैं मस्तियाँ' अच्छी लगीं। अन्य सभी रचनाएँ भी पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

—सुरेशानंद, देहरादून (उ.खं.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक आद्योपांत रंगों से सराबोर लगा। कहानियाँ एक से बढ़कर एक हैं, लेकिन 'आखिर वो मर्द है' बेहद पसंद आई। कविताएँ भी सरस और अच्छी हैं। शमीम शैख का हास्य व्यंग्य कमाल का है, उत्तम रचना है। अखिलेश श्रीवास्तव का रिपोर्ताज कुंभ की याद दिला गया। बाल-कहानी 'बिन दिमाग' कमाल की है, लेखिका को बधाई। प्रेमपाल शर्मा का यात्रा-संस्मरण 'लला, फिर आइयो खेलन होरी' शानदार शब्द चित्र कहा जा सकता है। लघुकथाओं में 'कड़वा सच', 'पैसे का डिब्बा' बेहद अच्छी लगीं। कुल मिलाकर पूरा ही अंक पठनीय एवं संग्रहणीय लगा। संपादक मंडल को होली की शुभकामनाएँ।

—भूपसिंह, हरिद्वार (उ.खं.)

'साहित्य अमृत' का फरवरी अंक मुझे डॉ. मालती शर्मा के यहाँ पढ़ने को मिला। उसमें उनका लेख 'बेटी के बिना संसार नहीं' बहुत अच्छा लगा। एक लंबे अरसे के बाद यह लोक परंपरा को आज से जोड़ने वाला लेख पढ़ने में आया है। ***—माधुरी तिक्खा, आगरा***

'साहित्य अमृत' का फरवरी अंक पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इंदौर में 'साहित्य अमृत' जैसी पत्रिकाएँ बहुत कम देखने में आती हैं; यहाँ से कोई भी पत्रिका नहीं निकलती। पूरे अंक के विषय में जितना कहूँ, उतना थोड़ा होगा। डॉ. मालती शर्मा का लेख 'बेटी के बिना संसार नहीं' मुझे बहुत सामयिक लगा। हमें अपनी लोक-परंपराओं को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए जानना चाहिए।

—स्नेहलता जाधव, पुणे

'साहित्य अमृत' के अंक नियमित मिल रहे हैं। पत्रिका हाथ आते ही शुरू से अंत तक पढ़े बिना मन नहीं मानता है। इसके सभी विशेषांक आकर्षक, ज्ञानवर्धक व पठनीय होते हैं। 'साहित्य अमृत' साहित्यिक एवं वैचारिक मूल्यों की एक अच्छी पत्रिका है। इसका पाठक वर्ग पूरे भारत में फैला है। इतना बड़ा संपादकीय किसी पत्रिका में नहीं होता, यह बहुत सटीक व विविधता लिये हुए रहता है। संपादक की निपुणता व कलम को सलाम करता हूँ। ***—राजेंद्र पटोरिया, नागपुर***

वर्ग पहेली (१३९)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २०१७ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते जून २०१७ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१३७) का शुद्ध हल

१ प्रा	ण	२ घा	त	३ क	■	४ चि	५ ना	६ ब
थ	■	स	■	७ रा	८ ह	ता	क	ना
९ मि	त्र	■	१० त	मा	म	■	११ का	म
क	■	१२ नि	■	१३ त	रा	१४ व	ट	■
१५ ता	१६ ना	शा	१७ ह	■	१८ ह	र्ष	ना	१९ द
■	२० म	त	ल	२१ ब	■	ण	■	स
२२ दि	क	■	२३ च	ह	क	■	२४ द	वा
२५ मा	र	२६ डा	ल	ना	■	२७ रि	■	र्षि
२८ ग	ण	क	■	२९ पा	ठ्य	पु	स्त	क

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **सुश्री प्रणीता**
जी–१/६१, गुलमोहर,
तिलंगा के नजदीक
भोपाल–४६२०३९ (म.प्र.)

२. **श्री सुभाष शर्मा**
ए२/१८४, ग्राउंड फ्लोर
सफदरजंग एन्क्लेव
नई दिल्ली–११००२९

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १३७ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), उमेश चंद्र शर्मा (गाजियाबाद), गिरधारी लाल अग्रवाल (यवतमाल), विनीता सहल (मुंबई), फकीरचंद ढुल (कैथल), विजयपाल सेहलंगिया, ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), आलोक सिंह चौहान (देहरादून), रेणु मिश्र (जयपुर), मोहन उपाध्याय (अजमेर), रुक्मणी संगल (पटियाला), प्रभात कुमार गुप्ता (मोहाली), मोहन जगदाले (उज्जैन), ओमप्रकाश चौधरी (नीमच), दिव्या श्रीवास्तव 'लाली' (बालाघाट), मधुरानी (बंगलुरु), बी.डी. बजाज, पुखराज वार्ष्णेय, कुसुम गोयनका (दिल्ली)।

बाएँ से दाएँ—

१. कसूर, जुर्म (४)
४. बहादुर (४)
७. उलझन में पड़ना (३,२)
८. दस गुणा तीन (२)
१०. इस समय (२)
११. श्रीकृष्णचंद्र (४)
१२. स्थान, जहाँ सिक्के ढाले जाते हैं (४)
१३. अभिप्राय (४)
१५. ठीक समय पर होनेवाला (४)
१७. तरकारी (२)
१८. हाथ (२)
१९. चरणों की सेवा करनेवाली (५)
२१. मधुर ध्वनि (४)
२२. विष्णु (४)

ऊपर से नीचे—

१. बेजोड़ (४)
२. दशरथ पुत्र (२)
३. संपत्ति (४)
४. ऊपरी तड़क-भड़क (४)
५. लेकर आना (२)
६. अंधकार (४)
९. अच्छे काम में लगाया जाना (५)
१०. जो नियत समय पर न हो (५)
१३. सजावट का काम करनेवाला (४)
१४. गायब (४)
१५. हिस्सेदार (४)
१६. निंदनीय व्यवहार (४)
१९. एक प्रसिद्ध अन्न (२)
२०. हद (२)

वर्ग पहेली (१३८) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३९)

१		२	३	■	४	५		६
	■	७					■	
८	९	■		■		■	१०	
११				■	१२			
■		■	■	■	■	■		■
१३			१४	■	१५			१६
१७		■		■		■	१८	
	■	१९				२०	■	
२१				■	२२			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

साहित्यिक गतिविधियाँ

मासिक रचना-गोष्ठी संपन्न

२६ फरवरी को भीलवाड़ा में साहित्यिक उन्नयन को समर्पित संस्था 'सामयिकी' की मासिक रचना-गोष्ठी श्री श्यामसुंदर सुमन की अध्यक्षता में आयोजित की गई, जिसमें मुख्य अतिथि श्री वीरेंद्र कुमार लोढ़ा तथा सर्वश्री बंशीलाल पारस, पुनीता भारद्वाज, महेंद्रकुमार शर्मा, गुलाब मीरचंदानी, रेखा स्मित, सुधा तिवाड़ी 'सखी', कृष्णा माहेश्वरी, शशि ओझा, संतोष जोशी, चिरंजलाल देशप्रेमी, शकुंतला शकुन, देवीलाल दुलारा, ओम उज्ज्वल सहित ३५ कवियों ने काव्य पाठ किया। संचालन सुश्री रेखा लोढ़ा ने किया। ☐

'जिस्म रोटी का नंगा होता है' कृति लोकार्पित

२६ फरवरी को मुरादाबाद की साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' के तत्त्वावधान में आयोजित समारोह में वरिष्ठ गजलकार डॉ. स्वदेश भटनागर के गजल-संग्रह 'जिस्म रोटी का नंगा होता है' का लोकार्पण डॉ. माहेश्वर तिवारी की अध्यक्षता में किया गया। मुख्य अतिथि श्री निजाम हातिफ एवं विशिष्ट अतिथि श्री राजीव सक्सेना थे। इस अवसर पर सर्वश्री ब्रजभूषण सिंह गौतम 'अनुराग', ओमकार सिंह 'ओंकार', अजय 'अनुपम' कैफी, शिशुपाल 'मधुकर', आनंद 'गौरव' ने अपने विचार व्यक्त किए। आभार श्री वागीश विवेक ने व्यक्त किया। ☐

विचार-गोष्ठी संपन्न

२६ फरवरी को देहरादून में 'विश्व संवाद केंद्र' एवं 'विद्योत्तमा विचार मंथन' द्वारा सुदर्शन कुंज, धर्मपुर में 'राजनीति में महिलाओं की भूमिका : क्या, क्यों, कैसे?' विषय पर विचार गोष्ठी आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री देवेंद्र भसीन, रजनी कुकरेती, रश्मि त्यागी रावत, विनोद उनियाल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्रीमती नेहा गुप्ता ने किया तथा आभार श्रीमती विनोद उनियाल ने व्यक्त किया। ☐

संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह संपन्न

३ मार्च को हैदराबाद में होटल कतरिया में डॉ. दिनेश कुमार लेखी की अध्यक्षता में राजभाषा संगोष्ठी एवं सम्मान समारोह आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि प्रो. अरुण तिवारी एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. श्रीनारायण सिंह थे। इस अवसर पर सर्वश्री एन.के. राजू, राजीव कुमार श्रीवास्तव, उदय भास्कर ने अपने विचार व्यक्त किए। प्रो. अरुण तिवारी को रक्षा एवं चिकित्सा क्षेत्र में दिए गए उनके योगदान और समय-समय पर इन विषयों की जानकारी हिंदी में देकर भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सबको प्रेरित करने के लिए समिति की ओर से २१,००० की राशि एवं प्रशस्ति-पत्र से सम्मानित किया गया। संचालन श्री होमनिधि शर्मा ने किया। ☐

राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों मंडला में भारत सांस्कृतिक निधि द्वारा आयोजित राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी में सर्वश्री सुरेश मिश्र, ओम मालवीय, कैलाश पांडे, छाया राय, अनिल पांडे, शरद नारायण खरे, नरेश ज्योतिषी, प्रशांत श्रीवास्तव, राजीव मिश्रा, नीलम खरे, गिरिजाशंकर अग्रवाल व रमेशचंद्र पाठक ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए। संचालन श्री विनोद सुरेश्वर ने किया। ☐

गोइन्का पुरस्कार घोषित

श्री श्यामसुंदर गोइन्का के अनुसार कमला गोइन्का फाउंडेशन द्वारा इस वर्ष बँगला से हिंदी अनुवाद के लिए इकतीस हजार रुपए का 'श्री प्रभात रंजन सरकार स्मृति पुरस्कार' सुश्री अमृता बेरी को उनके द्वारा अनूदित कृति 'दोजखनामा' के लिए दिया जाएगा। साथ ही फाउंडेशन द्वारा प्रवास राजस्थानी साहित्यकारों के लिए 'कन्हैयालाल सेठिया प्रवासी सारस्वत सम्मान' से सुश्री शर्मिला बोहरा जालान को सम्मानित करने का निर्णय लिया गया। ☐

'व्यास सम्मान' घोषित

विगत दिनों साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष श्री विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में चयन समिति ने श्री सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष : पद्मपंखुरी की धार से' को साढ़े तीन लाख रुपए के 'व्यास सम्मान २०१६' से सम्मानित करने की घोषणा की गई। ☐

'आहटें बदले समय की' कृति लोकार्पित

२६ फरवरी को भोपाल में हिंदी भवन के श्री नरेश मेहता गोष्ठी कक्ष में डॉ. उमेशकुमार सिंह की अध्यक्षता में श्रीमती मधु शुक्ला के गीत संग्रह 'आहटें बदले समय की' का लोकार्पण सर्वश्री बुद्धिनाथ मिश्र, संतोष चौबे, कृष्णगोपाल मिश्र द्वारा किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री शिवकुमार अर्चन, रमेश यादव, मधु शुक्ला द्वारा गीतों का पाठ किया गया। संचालन श्री नरेंद्र दीपक ने किया। ☐

कृतियाँ लोकार्पित

विगत दिनों उदयपुर की मासिक सृजन विविधा संगोष्ठी में आकाशवाणी के उद्‌बोधक श्री विष्णु भट्ट की दो कृतियों 'थपेड़े-दर-थपेड़े' एवं 'सीख भरी बाल कहानियाँ' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर डॉ. ज्योतिपुंज व श्री पर्जन्य ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

डॉ. मालती शर्मा पुरस्कृत

विगत दिनों महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा डॉ. मालती शर्मा को उनके लोक साहित्यिक ग्रंथ 'परंपरा का लोक' के लिए 'फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार-२०१६' से सम्मानित किया गया। ☐

प्रवासी मंच का कार्यक्रम संपन्न

१७ मार्च को साहित्य अकादेमी सभागार में प्रवासी मंच कार्यक्रम में प्रसिद्ध विदुषी डॉ. मृदुल कीर्ति ने आर्ष साहित्य और पतंजलि योग-दर्शन पर अपना उद्‌बोधन दिया। उन्होंने बहुत ही सरल-सुबोध भाषा में सामवेद, ईशादि नौ उपनिषद्, श्रीभगवद्‌गीता (ब्रजभाषा में काव्यानुवाद) के अंश सुनाकर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

२२ फरवरी को नई दिल्ली के डिप्टी स्पीकर हॉल में केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री मान. श्री प्रकाश जावड़ेकर के मुख्य आतिथ्य में भारतीय संस्कृति के अध्येता और संस्कृत भाषा के विद्वान् डॉ. सूर्यकांत बाली की सद्य:प्रकाशित पुस्तकों 'भारत को समझने की शर्तें' एवं 'भारत गाथा' का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-सरकार्यवाह द्वय मान. श्री दत्तात्रेय होसबाले एवं मान. डॉ. कृष्ण गोपाल के करकमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ. चंद्रप्रकाश द्विवेदी व डॉ. अवनिजेश अवस्थी ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐